भाग - 1

भौतिक भूगोल-स्व-अध्ययन सामग्री

(भूगोल प्रवक्ताओं के लिए)

कक्षा - 11

2018 - 19

स्वाध्यायान्मा प्रमदः

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

डिफेन्स कालोनी, वरूण मार्ग, नई दिल्ली - 110024

© रा.शै.अनु.एवं प्र. परिषद, दिल्ली
150 प्रतियाँ (2018) पुनः प्रकाशित
ISBN : 978-93-85943-15-7

मार्गदर्शन व परामर्श

डॉ. सुनीता एस. कौशिक, *निदेशक, रा.शै.अनु. एवं प्र. परिषद, दिल्ली*
डॉ. नाहर सिंह, *संयुक्त निदेशक, रा.शै. अनु. एवं. प्र. परिषद, दिल्ली*

नोड्ल अधिकारी एवं समन्वयक

डॉ. राजकुमार श्रीवास्तव, *प्रवक्ता, डाईट (उत्तर-पूर्व) दिलशाद गार्डन, दिल्ली*
डॉ. सुनील कुमार नागर, *वरिष्ठ प्रवक्ता, डाईट, कड़कड़डूमा, दिल्ली*

लेखन

डॉ. रामाश्रय प्रसाद, *एसोशियट प्रोफेसर, डा. भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय*
डॉ. सुरेन्द्र सिंह, *एसोशियट प्रोफेसर, शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय*
डॉ. नेम सिंह, *उप-प्रधानाचार्य (से.नि.), शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*
डॉ. सतनाम सिंह, *वरिष्ठ प्रवक्ता, डाईट (उत्तर-पूर्व) दिलशाद गार्डन, दिल्ली*
डॉ. राजकुमार श्रीवास्तव, *प्रवक्ता, डाईट (उत्तर-पूर्व) दिलशाद गार्डन, दिल्ली*
अबरार अहमद, *प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*
निर्मल अरोड़ा, *प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*
पुष्पा त्रिपाठी, *प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*
हरीश कुमार, *प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*
राजपाल सिंह, *प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली*

विषय वस्तु सम्पादन

डॉ. राजकुमार श्रीवास्तव, *प्रवक्ता, डाइट (उत्तर-पूर्व), दिलशाद गार्डन, दिल्ली*
डॉ. रामाश्रय प्रसाद, *एसोशियट प्रोफेसर, डा. भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय*

पुनरीक्षण

डॉ. इन्दिरा सिंह, एशोशियेट प्रोफेसर, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, टेहरी, उत्तराखंड
डॉ. वसीम अहमद खान, प्रोफेसर, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रकाशन अधिकारी
मुकेश यादव

प्रकाशन मंडल
नवीन कुमार, राधा एवं जय भगवान

आभार : एन.सी.ई.असा.टी. भूगोल की पाठ्यपुस्तकें

मुद्रक : ग्राफिक प्रिंटर्स, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

''आमुख''

दस वर्ष की सामान्य शिक्षा प्राप्त कर जब विद्यार्थी उच्चतर माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में प्रवेश लेता है तब उसका सामना पूर्ण रूप से विभाजित स्वतन्त्र विषयों के रूप में होता है। इस स्तर पर सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषय इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र और मनोविज्ञान आदि विषयों के रूप में अलग-अलग पढ़ाए जाते है। शिक्षा का यह स्तर विद्यार्थियों को उनकी रुचि व अभिवृति के अनुसार अपने विषय चुनने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। इस स्तर की शिक्षा का महत्व इस लिए भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि इस स्तर की शिक्षा के बाद विद्यार्थी या तो उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में प्रवेशों के लिए जाते हैं या अपना कोई व्यवसायिक कार्य चुनकर उसका प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इस स्तर की शिक्षा विद्यार्थियों को अपना भविष्य बनाने व उनकी शैक्षिक रुचियों को बढावा देने के लिए एक मंच का कार्य करती है। इस मंच पर ही वे अपने भविष्य की नींव का निर्माण करते है।

उच्चतर शिक्षा के प्रवेश द्वार पर खड़े ये विद्यार्थी अपनी शैक्षिक रुचियों को बढावा देने तथा अपना उज्जवल भविष्य बनाने के उद्देश्य से ही भूगोल विषय का चुनाव अपने शिक्षण कार्यक्रम में करते है। उनको आशा होती है कि यह विषय उनको अपनी रुचियों, अभिवृतियों को विकसित करने में मदद करेगा तथा उनके कैरियर को एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर भूगोल का पाठ्यक्रम बड़ा व्यवस्थित और श्रृखंलाबद्ध है। यह पृथ्वी के भौतिक पर्यावरण के साथ-साथ मानव के साथ पर्यावरण के संबंधों को भी समझनें में सहायक होता है। इस स्तर पर भूगोल विषय में भौतिक तथा मानव पर्यावरणों तथा स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर अन्योन्य क्रियाओं के वितरण एवं अंतर्संबंधों के अध्ययन पर जोर देता है। जब विद्यार्थी इस स्तर पर भूगोल विषय का अध्ययन करते हैं तो उनको विषय की वास्तविक कठिनाई का आभास होता है। हालांकि विद्यार्थी भूगोल विषय का अध्ययन लगभग सभी स्तरों पर किसी न किसी रूप में करते हुए आते है, उन्हें इस विषय की प्रारंभिक समझ होती है परन्तु विषय की गहराई व मूलभूत संकल्पनाओं की समझ का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि इस विषय को छात्र सामाजिक विज्ञान के एक भाग के रूप में पढ़ कर आते है। इस स्तर पर विद्यार्थियों की इस विषय में जिज्ञासा तो बहुत होती है, परन्तु उनका इन मूलभूत संकल्पनाओं को समझने में थोड़ी कठिनाई आती है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में जब हमारे शिक्षक साथी अपना शिक्षण कार्य करते है तो उनको सबसे पहले अपने इन विद्यार्थियों के साथ ताल-मेल बनाना पड़ता है। उनके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि इस वैज्ञानिक विषय की मूलभूत संकल्पना की समझ अपने इन विद्यार्थियों में कैसे विकसित करे। यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अगर हमारा कोई शिक्षक अपनी शिक्षण विधि में विविधता नहीं ला पाता है तो छात्र उसके शिक्षण से उबने लगते है और विषय के प्रति रूचि को विकसित नहीं कर पाते । जिससे यह विषय बहुत कठिन व नीरस बन जाता है।

भूगोल शिक्षक की इन कठिनाईयों को ध्यान में रखकर ही एस.सी.ई.आर.टी. दिल्ली ने इस बार शिक्षकों लिए भूगोल विषय की एक स्व-अध्ययन मोड्यूल के निर्माण का निर्णय लिया। इस मोड्यूल का उद्देश्य हमारे भूगोल के सभी शिक्षकों को अपने विषय की मूलभूत संकल्पनाओं का रूचिकर बनाने व उनको सरल रूप में प्रस्तुत करने में सहायता करना है।

यह 'स्व-अध्ययन मोड्यूल' भूगोल के उच्चतर माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम को आधार मानकर तैयार की गई है। इसमें पाठ्यक्रम को बहुत ही सरल व संक्षिप्त तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ताकि शिक्षक उनको पढ़कर विषय की मूलभूत भौगोलिक अवधारणाओं को समझ सके और अपनी कक्षाओं में सही तरीके से छात्रों को समझा सके।

शिक्षकों से अनुरोध है कि इस स्व-अध्ययन शिक्षण सामग्री को केवल एक मार्ग दर्शिका के रूप में समझें तथा इसमें दी गई पाठ्यवस्तु को समझकर पढ़ाने में योगदान दें। उम्मीद है कि इस शिक्षण सामग्री की उपयोगिता से भूगोल के विद्यार्थियों में सीखने की क्षमता में सुधार होगा और परीक्षा परिणाम बेहतर होगा। शिक्षकों को यह सलाह दी जाती है कि विषय-वस्तु की अवधारणा से सम्बन्धित यदि कोई त्रुटियाँ हैं, उसे सुधार करके पढ़ाएँ।

अन्तत: इस शिक्षण सामग्री के लेखन कार्य में सम्मिलित सभी भूगोल के शिक्षकों और विषय विशेषज्ञों के प्रति आभार प्रकट करते हैं। इस सामग्री के निर्माण में लेखकों, विद्वानों, एन.सी.ई.आर.टी. की भूगोल पुस्तकों एवं अन्य पुस्तकों एवं विषय वस्तु से सम्बन्धित बेबसाइटों के प्रति आभारी है जिनकें विचारों से इस शिक्षण सामग्री में गुणात्मक सुधार लाया गया है। यह पुस्तक शिक्षकों के लिए मार्गदर्शिका के रूप में तैयार की गई है। ौगोलिक अवधारणाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करें। शिक्षकों के सुझावों का स्वागत है।

नोडल अधिकारी

डा. राजकुमार श्रीवास्तव

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

इकाई – I भू–आकृति विज्ञान

अध्याय – 1 : भूगोल एक विषय के रूप में 2 – 8

अध्याय – 2 : पृथ्वी की आन्तरिक संरचना 9 – 13

अध्याय – 3 : महासागरों और महाद्वीपों का वितरण 14 – 18

अध्याय – 4 : भू–आकृतिक प्रक्रियाएँ 19 – 25

अध्याय – 5 : भू–आकृतियाँ तथा उनका विकास 26 – 36

इकाई – II जलवायु एवम् जलमण्डल

अध्याय – 1 : सौर विकिरण और तापमान 38 – 43

अध्याय – 2 : वायुमण्डलीय परिसंचरण और मौसम प्रणालियाँ 44 – 48

अध्याय – 3 : आर्द्रता एवं वर्षण 49 – 53

अध्याय – 4 : जलवायु परिवर्तन 54 – 56

अध्याय – 5 : महासागरीय जल अध:स्थल 57 – 60

अध्याय – 6 : महासागरीय जल संचलन 61 – 66

इकाई – III भारत का भौतिक भूगोल

अध्याय – 1 : भारत की संरचना व भू–आकृति 68 – 79

अध्याय – 2 : अपवाह तन्त्र 80 – 85

अध्याय – 3 : जलवायु 86 – 96

अध्याय – 4 : प्राकृतिक वनस्पति 97 – 103

अध्याय – 5 : मृदा 104 – 108

अध्याय – 6 : प्राकृतिक संकट तथा आपदाएँ 109 – 127

इकाई – I भू–आकृति विज्ञान

अध्याय – 1 : भूगोल एक विषय के रूप में

अध्याय – 2 : पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

अध्याय – 3 : महासागरों और महाद्वीपों का वितरण

अध्याय – 4 : भू–आकृतिक प्रक्रियाएँ

अध्याय – 5 : भू–आकृतियाँ तथा उनका विकास

अध्याय - 1
पाठ : भूगोल एक विषय के रूप में

सामान्य शब्दों में कहा जाए तो भूगोल भूसतह का अध्ययन है। भूसतह मानव का निवास स्थान है। इसका अध्ययन भी मानव केंद्रित है। अत: मानव के उद्भव के साथ ही भूगोल विषय का उद्भव माना जाना चाहिए है। मानव के उद्भव का इतिहास भी काफी पुराना है। उद्भव की कड़ी में अनेकानेक पड़ाव भी रहे है। इन पड़ावों के दृष्टिकोण से भूसतह पर होने वाले बदलाव ने बहुत कुछ प्रभावित किया है।

प्रारम्भिक मानव आदिमानव का सा जीवन व्यतीत करता था। जीवन में अस्थिरता थी। आखेट और संग्रहण के द्वारा ही जीवन व्यतीत करता था। बाद में पशुपालन एवं कृषि की जानकारी हुई। जीवन व्यवस्थिति होने लगा। बाद में उद्योग-धंधों की शुरूआत हुई। समय बीतने के साथ ही ज्ञान, विज्ञान, उच्च प्रौद्योगिकी में विस्तार हुआ। विकास के विविध चरणों के माध्यम से मूल प्राकृतिक वातावरण में विविध आयाम जुड़े। इससे सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय विविधताओं का जन्म हुआ। इन विविधताओं के अध्ययन करने के दो तरीके हो सकते है- स्थानिक (Spatial) तथा कालिक (Temporal)। आइये इन दोनों तरीकों को संक्षेप में समझें।

1. स्थानिक (Spatial)

- यह स्थाान विशेष से सम्बन्धित है।
- स्थान का अभिप्राय भूसतह से है।
- भूसतह का विविध स्थान विविधता लिए हुए है।
- उनकी विविधताओं का अनेकानेक कारण होते है।
- भूसतह पर पाये जाने वाले विविधताओं का अध्ययन ही भूगोल है।
- इसे क्षेत्रीय विविधता (Areal Differentiation) कहते है।
- एक क्षेत्र के विविध भौगोलिक कारक दूसरे क्षेत्र के भौगोलिक कारक से भिन्न होते है।
- कारकों की भिन्नता के कारण क्षेत्रीय विविधता पायी जाती है।
- उदाहरण के लिए भारत को ही लिया जाय। भारत के विभिन्न भाग एक दूसरे से भिन्न है।
- यह विभिन्नता तापमान, वर्षा, मृदा, फसल, खान-पान, वेश-भूषा, पहनावा, रंग-रूप आदि के संदर्भ में देखी जा सकती है।

2. कालिक (Temporal)

- यह काल या समय से सम्बन्धित है।
- समय के अनुसार होने वाले बदलावों को इसके अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

- विभिन्न कालों में धरताल एवं मानवीय क्रियाएं भिन्न रही है।
- आज हमारी प्रौद्योगिकी पहले की तुलना में काफी विकसित है।
- हमारी विकसित प्रौद्योगिकी ने हमारे आस-पास के पर्यावरण को काफी प्रभावित किया है।
- इन प्रभावों के लिए हम सभी उत्तरदायी है।
- इस तरह के होने वाले परिवर्तनों को समयांतर के आधार पर अध्ययन किया जाये तो उसे कालिक अध्ययन कहा जाता है।
- उदाहरण के लिए-इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले सभी शिक्षकगण दिल्ली में रहते/कार्य करते है। यहाँ पर होने वाले बदलाव को भलीभाँति जानते है।
- आप स्वयं याद कीजिए 10,15 या 20 वर्षों पूर्व आपके आस-पास की स्थिति कैसी थी ?
- समय बीतने के साथ होने वाले बदलाव को स्वयं ही आंक सकते है।

• इसके लिए थोड़ा सा संकेत जैसे - भूमि, मकान, गलियाँ, पेड़-पौधे, खेतीहर जमीन, खेल के मैदान, वायु व जल की स्थिति, बिजली, सड़कें, प्रदूषण, मलिन बस्तियाँ आदि।

- यानी स्थान एक ही रहा, पर बीतते समय के साथ विभिन्न पक्षों में बदलाव होता रहा।

स्थानिक-कालिक (Spatio-Temporal)

- इसके अन्तर्गत होने वाले बदलावों को केवल एक ही मापक पर नहीं बल्कि दोनों ही मापकों - स्थान तथा समय - पर देखा जाता है।
- उदाहरण के लिए -आज जनसंख्या ज्यादा हो गई है। खेती करने के लिए सम्भवत: जितनी जमीने आज उपलब्ध है, उसे खेती जोत में बदल दिया गया है।
- यह बात केवल एक स्थान ही नहीं, वरन् पूरे देश पर लागू होती है।
- यहाँ तक कि पिछले 50 वर्ष पूर्व की स्थिति आज से काफी भिन्न थी।
- पहले मैदानी इलाकों में भी जंगल मिला करते थे, आज यह जंगल विहिन मैदान है।
- अत: बड़े भूभाग पर होने वाले धरातलीय एवं कालिक दोनों विभिन्नताओं का एक साथ अध्ययन किया जाता है उसे स्थानिक-कालिक विभिन्नता कहते है।

स्थानिक तथा कालिक अध्ययन/चित्रण करने के लिए काफी समय एवं धन का व्यय होता है। आज समय और धन को बचाने में भौगोलिक सूचना तंत्र (Geographical Information System, GIS), संगणक मानचित्र (Computer Cartography) तथा वैश्विक स्थितीक तंत्र (Global Positioning System, GPS) ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यद्यपि इन सबों के बारे में आप प्रयोगात्मक इकाई (Practical Module) में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। परन्तु यहाँ संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण बातें निम्न है :-

भौगोलिक सूचना तंत्र (Geographical Information System, GIS)

- यह कम्प्यूटर आधारित तकनीक है।
- भूतल और पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाओं में वृहत् वृद्धि हुई है।
- इन सूचनाओं का आसानी से उपयोग में लाने के लिए यह तंत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।
- यह आँकड़ों का एकत्रण, प्रबंधन, विश्लेषण, संरक्षण और प्रदर्शन से सम्बन्धित है।
- इसे तीन प्रकार से उपयोग में लाया जाता है :-

डेटाबेस (Data Base)

- आँकड़े विभिन्न परतों (File) के रूप में कम्प्यूटर में एकत्रित किया जाता है।
- इन परतों को आसानी से बढ़ाया या घटाया जा सकता है।
- सभी-परतें एक ही क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होते है।

मानचित्र (Map)

- डेटाबेस से किसी भी परत/परतों के आधार पर मानचित्र तुरन्त बनाया जा सकता है।
- बने मानचित्र को कम्प्यूटर में इकट्ठा किया जा सकता है या उसका प्रिंट लिया जा सकता है।
- विभिन्न प्रकार के आँकड़ों/परतों के आधार पर स्थानिक जानकारी बड़ी ही आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

प्रतिरूप (Pattern)

- विभिन्न प्रकार के परतों/आँकड़ों के बीच सह-सम्बन्ध (Correlation) स्थापित किया जा सकता है।
- आसानी से बने मानचित्रों का अध्ययन सरल हो जाता है।
- मानचित्रों के आधार पर क्षेत्रीय प्रतिरूप आसानी से विकसित हो जाता है।

संगणक मानचित्र (Computer Cartography)

- यह मानचित्र बनाने की सरल एवं आसान विधि है।
- यह कम्प्यूटर की मदद से बनाया जाता है। अत: कम्प्यूटर का अच्छा ज्ञान आवश्यक है।
- गणितीय विधि द्वारा कम्प्यूटर के प्रोग्राम के साथ ही गणना की गई होती है।
- कम्प्यूटर की मदद से मानचित्र बनाया जाता है। तथापि गणितीय जानकारी एवं उससे सम्बन्धित विशेषताएं जानना आवश्यक होता है, तभी उचित विकल्प चुना जा सकता है।

- भौगोलिक सूचना तंत्र की तरह ही इसमें भी धरातल की जानकारी प्रक्षेपों के अनुरूप विकसित किया गया रहता है।
- इसकी मदद से मानचित्र अपने उद्देश्य के अनुरूप बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आँकड़ों या प्रदर्शन भी आसान होता है।

वैश्विक स्थितीक तंत्र (Global Positioning System, GPS)

- यह धरातल पर विभिन्न स्थानों की सही स्थिति बताता है।
- यह तंत्र कृत्रिम उपग्रहों द्वारा प्राप्त संदेशों के आधार पर काम करता है।
- इसमें एक तरह का ऐसा संवेदी चिप लगा होता है जो उपग्रह से आने वाले सिग्नल को पकड़ता है।
- गणितीय विधि से यह जानकारी होती है कि उपग्रह की स्थिति क्या है। उसी के आधार पर सिग्नल पकड़ने वाले यंत्र की स्थिति का भी आकलन कर लिया जाता है।
- इसके लिए विश्व में बिल्कुल सही स्थिति जानने के लिए एक ही समय में कम से कम चार उपग्रह का सिग्नल जरूरी होता है।
- इन उपग्रहों से अक्षांश, देशांतर एवं ऊँचाई (समुद्रतल से) सटीक प्राप्त कर ली जाती है।
- अत: इन तीनों विधियों का प्रयोग करके मानचित्रण आसान हो जाता है।
- इन मानचित्रों द्वारा स्थानिक एवं कालिक विश्लेषण करके सटीक जानकारी के माध्यम से भूतल का चित्रण/वर्णन हो पाता है।

आइये पहले देखें कि वास्तव में भूगोल क्या है:-

भूगोल क्या है? What is Geography?

भूगोल (Geography) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द Geo (पृथ्वी) तथा Graphos (वर्णन) से बना है जिसका अर्थ है-पृथ्वी की सतह का वर्णन। सामान्यतया भूसतह का वर्णन मानव के निवास के रूप में किया जाता है। इस वर्णन के कुछ महत्वपूर्ण दृष्टिकोण इस प्रकार है :-

- भूगोल स्थानिक (Spatial) विभिन्नताओं का अध्ययन है।
- ये विभिन्नताएँ भौतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है।
- यह विभिन्नताओं को लाने वाले कारकों का अध्ययन है।
- इसमें कार्य-कारण सम्बन्धों (Causal relationships) की विवचेना होती है।
- सम्बन्धों के विश्लेषण के आधार पर पूर्वानुमान लगाया जाता है।
- भूसतह एवं मानवीय क्रियाओं के आधार पर परिवर्तनशीलता का अध्ययन है।

- परिवर्तनशीलता का सम्बन्ध मानवीय प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में होता है।

प्राकृतिक अंकुश एवं मानवीय विकास के साथ एक सामंजस्य/अनुकूलन (Adaptation) या आपरिवर्तन (Modification)

- विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय अंकुश मानव पर प्रारम्भ से ही लगते आ रहे है।
- प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने अपने आप को प्रकृति के अनुसार ढ़ाल लिया था।
- उत्तरोत्तर विकास के साथ मानव के हाथों अनेकों प्रकार की तकनीकी आई।
- इन तकनीकियों ने उनके आराम तलब जींदगी बनाने में मदद की।
- इन तकनीकियों के पूर्व की स्थिति को पर्यावरणवाद (Environmentalism) का नाम दिया गया। अर्थात् मानव अपने पर्यावरण के दास के रूप में था। इसे निश्चयवाद (Determinism) के नाम से भी जाना गया।
- तकनीकी के विकास के साथ पर्यावरण में बदलाव लाने की क्षमता विकसित हो गई।
- अपने अनुकूल घर बनाना, बिजली का प्रयोग, विभिन्न प्रकार के औजारों की खोज, जैव तकनीकी में बदलाव आदि के कारण लगा कि मानव अपनी इच्छा अनुरूप जो चाहे कर सकता है। इससे सम्भववाद (Possibilism) का जन्म हुआ।
- पर्यावरण में कुछ हद तक मानव द्वारा परिवर्तन कर पाना सम्भव हो गया।
- परन्तु ये सभी एक निश्चित सीमा तक ही सम्भव था। पूरे वातावरण या आस पास के क्षेत्रों को मानव की इच्छा के अनुरूप बदल पाना असम्भव था/है। इसीलिए नवनिश्चयवाद (Neo-determinism or Stop and go determinism) का जन्म हुआ।
- इस प्रकार मानव द्वारा लाये गये परिवर्त्तनों से भूसतह का भी रूपांतरण होता है। इन सभी का अध्ययन भूगोल में किया जाता है।
- भूगोल एक वैज्ञानिक विषय के रूप में तीन प्रमुख प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के रूप में देखा जाता है।
- क्या - भूसतह से जुड़ी विशेषताएँ (Earth Surface Features)
- कहाँ - अवस्थिति (Locations)
- क्यों - कारण ढूढ़ने का प्रयास (Cause)

भूगोल एक समाकलन (Integrating) विषय के रूप में

- भूगोल एक संश्लेष्णात्मक (Synthesis) विषय है।

- इसमें क्षेत्रीय संश्लेषण या जुड़ाव का प्रयास होता है।
- इसमें समग्र का अध्ययन किया जाता है।
- संश्लेषण करने में श्रव्य-दृश्य माध्यमों (Audio-visual medium) एवं सूचना तकनीकी अहम भूमिका निभाते है।
- भूगोल की विविध विधियाँ इसके लिए सहायक है।
- भूगोल एक अंतर विषयक (Inter-disciplinary) अध्ययन है।
- विविध प्राकृतिक, सामाजिक एवं जैविक विज्ञान के साथ भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध है।
- विविध विषयों के बारे में जानकारी रखने के कारण भूगोल सभी को जोड़ने का कार्य करता है।
- इन सम्बन्ध को दिए गये चित्र के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

प्राकृतिक विज्ञान एवं भूगोल की शाखाएं

प्राकृतिक विज्ञान		**भूगोल की शाखाएं**
1. भूविज्ञान	–	भू-आकृतिक विज्ञान
2. मौसम विज्ञान	–	जलवायु विज्ञान
3. जल विज्ञान	–	समुद्र विज्ञान
4. मृदा विज्ञान	–	मृदा भूगोल
5. जीव विज्ञान	–	जैव भूगोल

सामाजिक विज्ञान एवं भूगोल की शाखाएं

सामाजिक विज्ञान	–	**भूगोल की शाखाएँ**
6. आर्थिक सांख्यिकी	–	भूगोल में परिमाणात्मक प्रविधि
7. अर्थशास्त्र	–	आर्थिक भूगोल
8. जनांकिकी	–	जनसंख्या भूगोल
9. इतिहास	–	एतिहासिक भूगोल
10. समाजशास्त्र	–	सामाजिक भूगोल
11. दर्शन शास्त्र	–	भौगोलिक चिन्तन
12. राजनीति शास्त्र	–	राजनीतिक भूगोल
13. मानव शास्त्र	–	सांस्कृतिक भूगोल

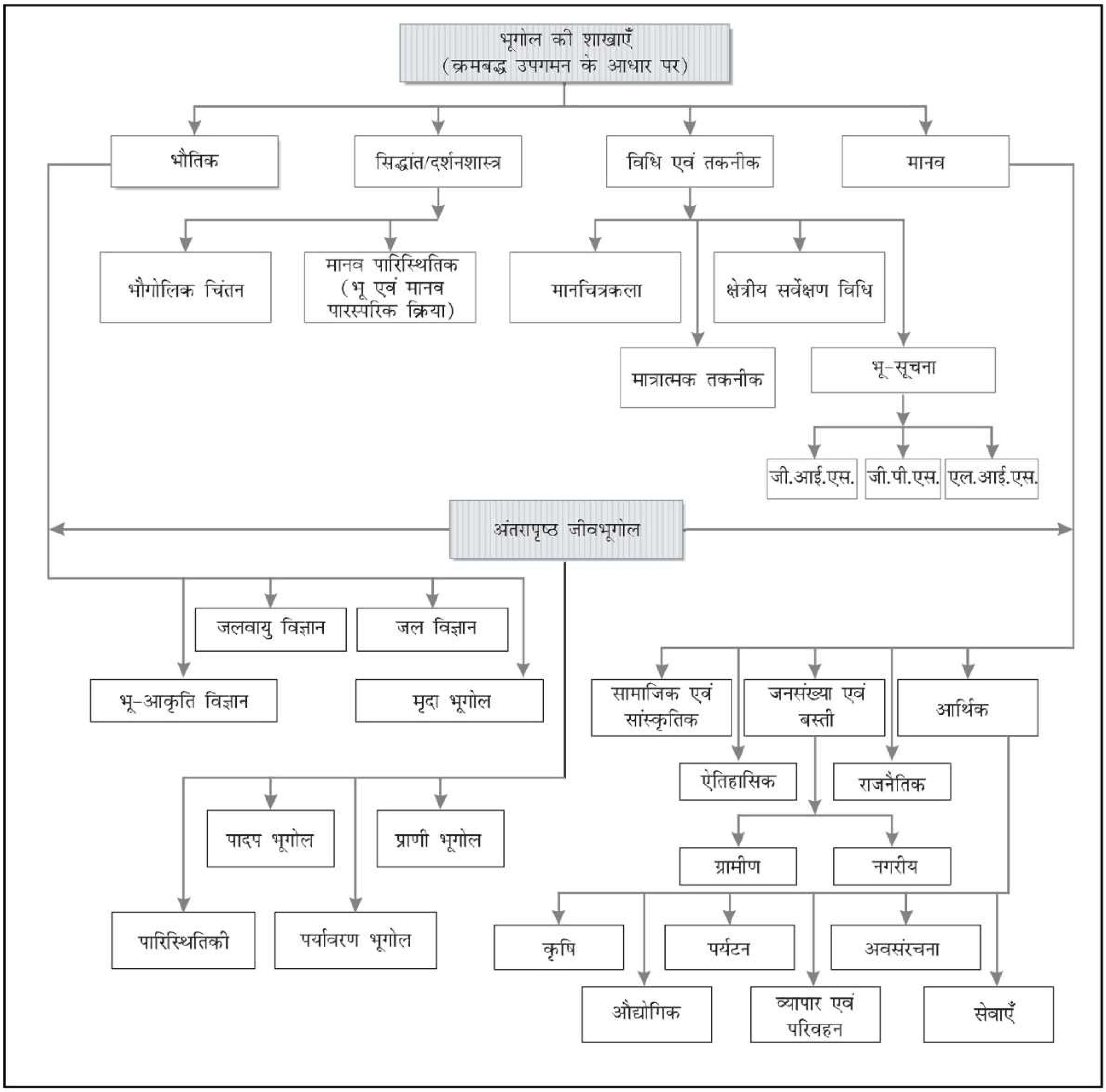

क्रियाकलाप

भूगोल का दूसरे विषयों के संबंधों की चर्चा कराइए। इसे पढ़ने से भविष्य में होने वाले फायदे को भी बताइए।

अध्याय - 2

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी के आंतरिक भाग के अंतर्गत भूपटल से पृथ्वी के केन्द्र तक की परिस्थितियों का अध्ययन करते है। भूगर्भ में मानव की प्रत्यक्ष पहुँच लगभग 4 किमी. तक ही सीमित है। पृथ्वी का केन्द्र लगभग 6371 कि.मी. गहराई पर है। पृथ्वी के आंतरिक भाग का नमूना (Sample) मिल पाना सम्भव नहीं है। अत: पृथ्वी के आंतरिक भाग के बारे में जानकारी प्राप्त करना थोड़ा कठिन है। प्रत्यक्ष तौर पर भले ही ज्यादा जानकारी नहीं मिल पाती है, परन्तु परोक्ष तरीके से विस्तृत जानकारी मिल जाती है। जानकारी प्राप्त करने के स्रोत के आधार पर हम दो वर्गों में विभाजित करते है:-

प्रत्यक्ष स्रोत (Direct Sources)

अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Sources)

प्रत्यक्ष स्रोत (Direct Sources)

- पृथ्वी का सतह एवं ऊपरी परत ठोस है।
- खदानों में गहराई बढ़ने के साथ तापमान में वृद्धि होती पायी जाती है।
- इसी प्रकार आर्कटिक महासागर की तलहटी के नीचे लगभग 12 कि.मी. की गहराई तक हुए प्रभेदन (Drilling) से भी यही जानकारी प्राप्त हुई है।
- ज्वालामुखी उद्गार द्वारा भी आंतरिक भाग की चट्टानें सतह पर आ जाती है जिससे भूगर्भ के बारे में जानकारी मिलती है।

अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Sources)

- खनन से पता है कि बढ़ती गहराई के साथ तापमान में वृद्धि होती है।
- चूंकि नीचे की चट्टानें ऊपरी परत से दबती है अतएव नीचे की ओर दबाव तथा तापमान का बढ़ना स्वाभाविक है।
- बढ़ती गहराई के साथ चट्ानों का घनत्व भी बढ़ता जाता है।
- गुरूत्वाकर्षण, चुम्बकीय क्षेत्र एवं भूकम्प अध्ययन से पृथ्वी के आंतरिक भाग के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।
- इनमें भूकम्पीय तरंगों का अध्ययन सबसे महत्वपूर्ण है।

भूकम्प (Earthquake)

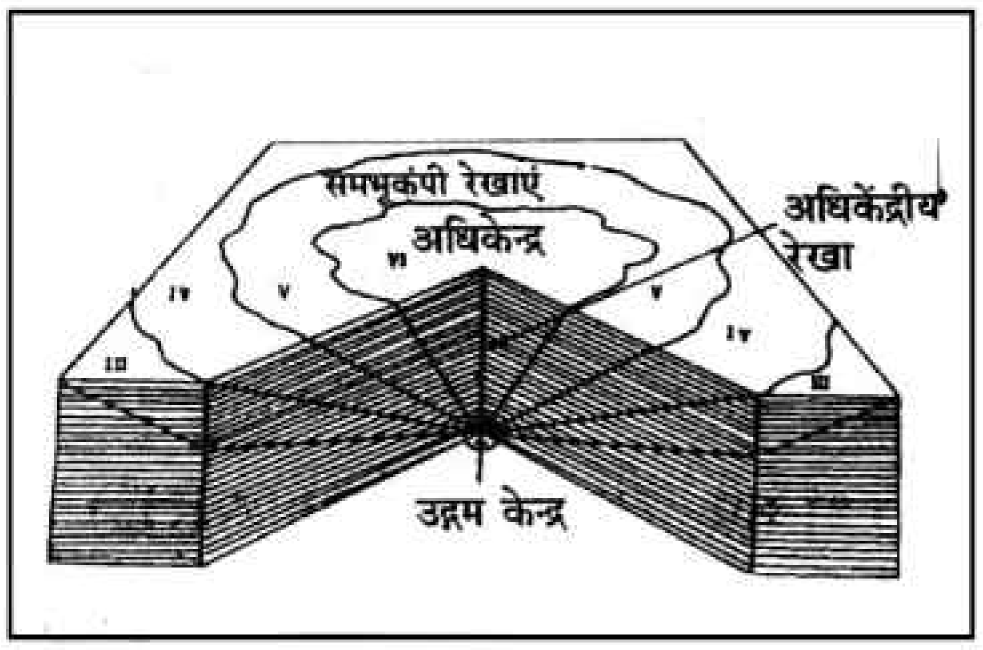

भूकम्प की उत्पत्ति

- भूकम्प जहाँ से उत्पन्न होता है उसे भूकम्प उद्गम केन्द्र कहते है।
- भूकम्प उद्गम केन्द्र के ठीक ऊपर यानी भू सतह पर जो स्थान होता है उसे भूकम्प का अधिकेन्द्र (epi-centre) कहते है।
- अन्य स्थानों पर भूकम्प का प्रभाव भूकम्पीय तरंगों के माध्यम से पहुँचता है।
- इन भूकम्पीय तरंगों का अध्ययन भूकम्पमापी (Seismograph) की सहायता किया जाता है।
- भूकम्पमापी द्वारा अंकित तरंगों को निम्न चित्र से स्पष्टत: देख सकते है कि तीन प्रकार की तरंगे अलग-अलग समय पर अंकित हो रही है।

भूकम्पीय तरंगे (Earthquake waves)

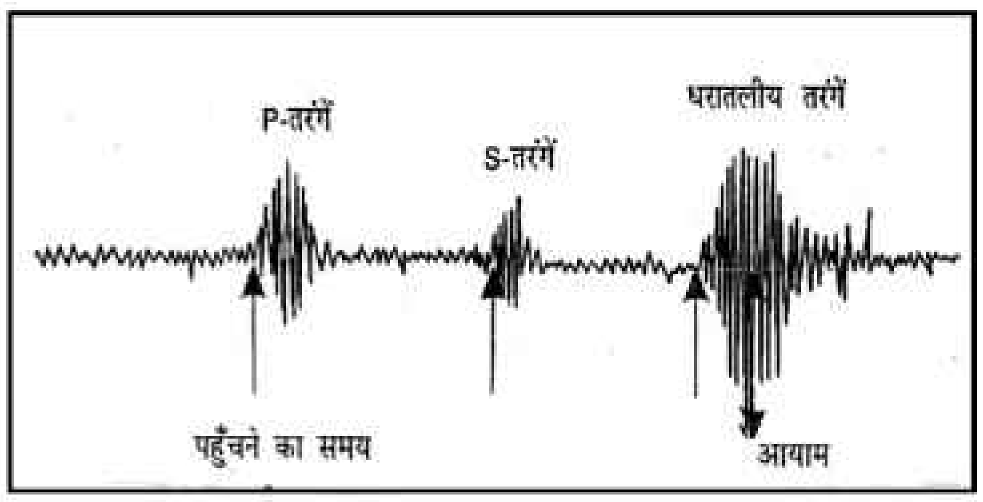

भूकम्पीय तरंगों के प्रकार

- अधिकांश भूकम्प धरातल से 200 कि.मी. से कम गहराई पर ही उत्पन्न होते है।
- भूकम्पीय तरंगों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।
- भूगर्भिक तरंगें (Body waves) - P और S तरंगें
- धरातलीय तरंगें (Surface waves)- L तरंग
- भूगर्भिक तरंगें पृथ्वी के आंतरिक (भूगर्भ) भाग में ही चलती है।

धरातलीय तरंगे केवल धरातल के साथ-साथ चलती है।

- तरंगों (P,S और L) की गति में विविधता होती है। इसीलिए किसी दूरस्थ स्थान पर ये तरंगे विभिन्न समय पर पहुँचती है।
- इनमें P तरंगें सबसे तीव्र गति से चलती है।
- यह पदार्थ के तीनो अवस्थाओं - ठोस, तरल तथा गैस - से गुजरती है।
- ठोस पदार्थ से सबसे तेज, तरल में मध्यम तथा गैस में गति मंद हो जाती है।
- पदार्थ के बढ़ते घनत्व के साथ इनकी गति में वृद्धि होती है।
- S तरंगें केवल ठोस माध्यम से ही चलती है। तरल एवं गैस पदार्थ के माध्यम से नहीं चल पाती है।
- L तरंगों की गति सबसे मंद होती तथा ये केवल सतह पर ही चलती है।
- जब तरंगें विभिन्न घनत्व वाली चट्टानों से गुजरती हैं तो उनके मार्ग में परावर्त्तन (Reflection) एवं

आवर्त्तन (Refraction) होता है। यही कारण है कि विभिन्न गहराइयों में प्रवेश करने के साथ उनका मार्ग सीधा न होकर वक्राकार हो जाता है।

भूकम्पीय तरंगों का संचरण (Propagation of Earthquake waves)

- P तरंगे ध्वनि तरंगों की भांति होती है तथा इनके द्वारा कम्पन उसी दिशा में होता है जिस दिशा में संचरण होता है।
- इसमें संचरण की गति की दिशा में दबाव तथा खिंचाव पड़ता है।
- इसके कारण चट्टानों में क्षणिक भिन्नता आती है। अत: शैलों में संकुचन तथा विस्तार की प्रक्रिया होती हैं।
- इसे और अधिक सुस्पट तरीके से समझने के लिए दिए गए चित्र में स्प्रिंग पर होने वाले बदलाव पर गौर करें।
- S तरंगे प्रकाश तरंगों की भांति होती है जिनके द्वारा कम्पन तरंगों की दिशा से समकोण पर होता है।
- L तरंगे केवल भूतल पर चलती है तथा सबसे ज्यादा विनाशकारी होती है।
- L तरंगें मूलत: P तथा S तरंगों से ही उत्पन्न होती है।

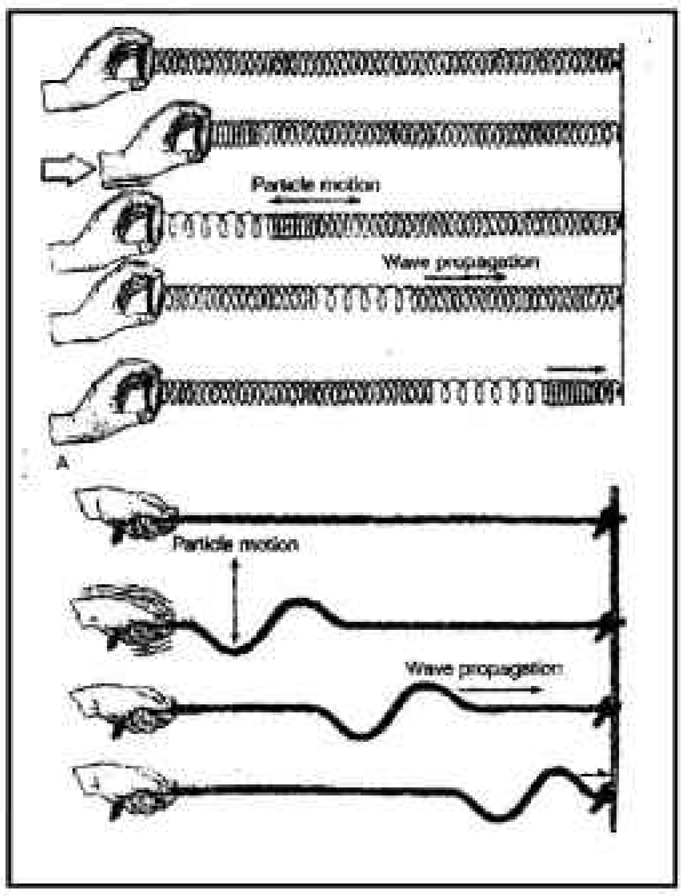

भूकम्पीय तरंगों का छाया चित्र

- भूकम्पीय तरंगों के पृथ्वी के आंतरिक भागों मे प्रवेश एवं उनके परावर्त्तन (Reflection) एवं आवर्त्तन (Refraction) की चर्चा पहले भी की गयी है।
- भूगर्भ में विभिन्न घनत्व वाली परतों से गुजरने के कारण भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन तथा दिशा में परावर्त्तन एवं आवर्त्तन होता है।
- जब भूकम्प घटित होता है तो उसके अधिकेन्द्र (Epicenter) से 105° तथा 145° के कोणों के बीच कोई भी भूकम्पीय तरंग नहीं पहुँच पाती है।
- इसलिए इसे P तथा S तरंगों का छाया क्षेत्र कहा जाता है।
- 145° से 180° के कोणों के मध्य के क्षेत्र में P तरंग ही पहुँचती है।
- दूसरे शब्दों में S तरंग का छाया क्षेत्र 105° से 180° के कोणों के मध्य के सम्पूर्ण क्षेत्र पर होता है।

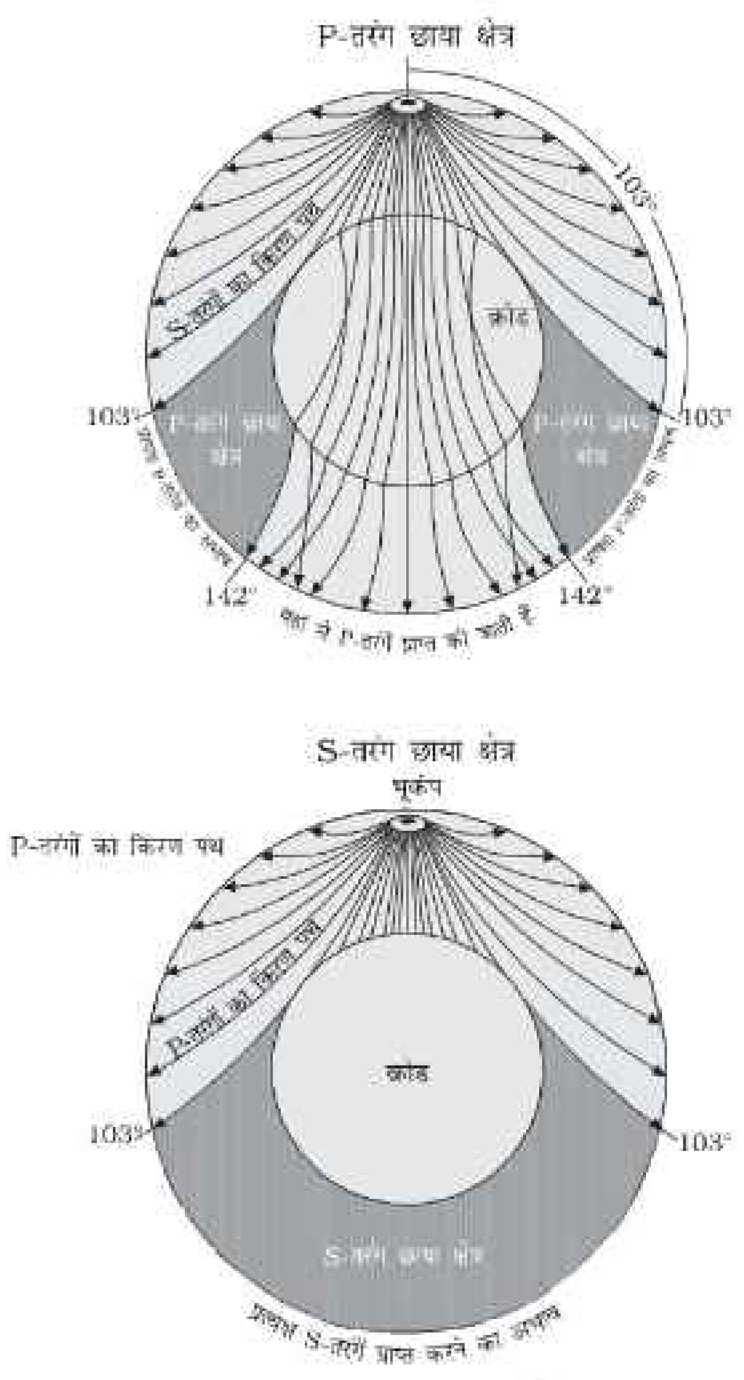

भूकंपीय छाया क्षेत्र

पृथ्वी की संरचना (Structure of Earth)

पृथ्वी के आंतरिक भाग से संचरण करती भूकम्पीय तरंगो के अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर इसे तीन परतों में विभाजित किया जाता है।

- भूपर्पटी (Crust)
- मैंटल (Mantle)
- क्रोड (Core)

भूपर्पटी (Crust)

- भूपर्पटी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जिसकी औसत मोटाई महाद्वीपों के नीचे 30 कि.मी. तथा महासागरों के नीचे 5 कि.मी. है।
- हिमालय के नीचे गहराई सबसे ज्यादा लगभग 70 कि.मी. है
- यह सबसे हल्की घनत्व वाली चट्टानों (SIAL) से निर्मित है।
- स्थल की चट्टानों का औसत घनत्व 2.7 ग्राम प्रति घन सें.मी. है जबकि समुद्र के नीचे की चट्टानों का घनत्व 3.0 ग्राम प्रतिघन सें.मी. है।

मैंटल (Mantle)

- भूगर्म में भूपर्पटी के नीचे का भाग मैंटल कहलाता है।
- यह मोहो असंगति (Moho-discontinuity) से लगभग 2900 कि.मी. की गहराई तक पाया जाता है।
- मोहो असंगति लगभग 200-400 कि.मी. की गहराई तक है।
- इस भाग के चट्टानो का औसत घनत्व 3.4 ग्राम प्रति घन सें.मी. है।
- लगभग 200 कि.मी. के ऊपर का भाग ठोस है। इसे स्थलमण्डल (Lithosphere) कहते है। अर्थात् भूपर्पटी तथा मैंटल का ऊपरी ठोस भाग स्थलमण्डल है।
- लगभग 700 कि.मी. की गहराई से भूपर्पटी के निचले स्तर तक का भाग बाह्य मैटल कहलाता है।
- 700 कि.मी. से 2900 कि.मी. की गहराई तक का भाग आंतरिक मैंटल है। यह ठोस अवस्था में है। इसका औसत घनत्व 5.0 ग्राम प्रति घन सें.मी. है।

क्रोड

- मैंटल की निम्न सीमा लगभग 2900 कि.मी. की गहराई से पृथ्वी के केन्द्र (Centre) तक का भाग क्रोड कहलाता है।
- 2900 कि.मी. की गहराई के बाद S तरंग नहीं पायी जाती है जिसका अर्थ है इस गहराई पर पदार्थ तरल है। उसी गहराई पर P तरंग की गति में भी कमी आती है।

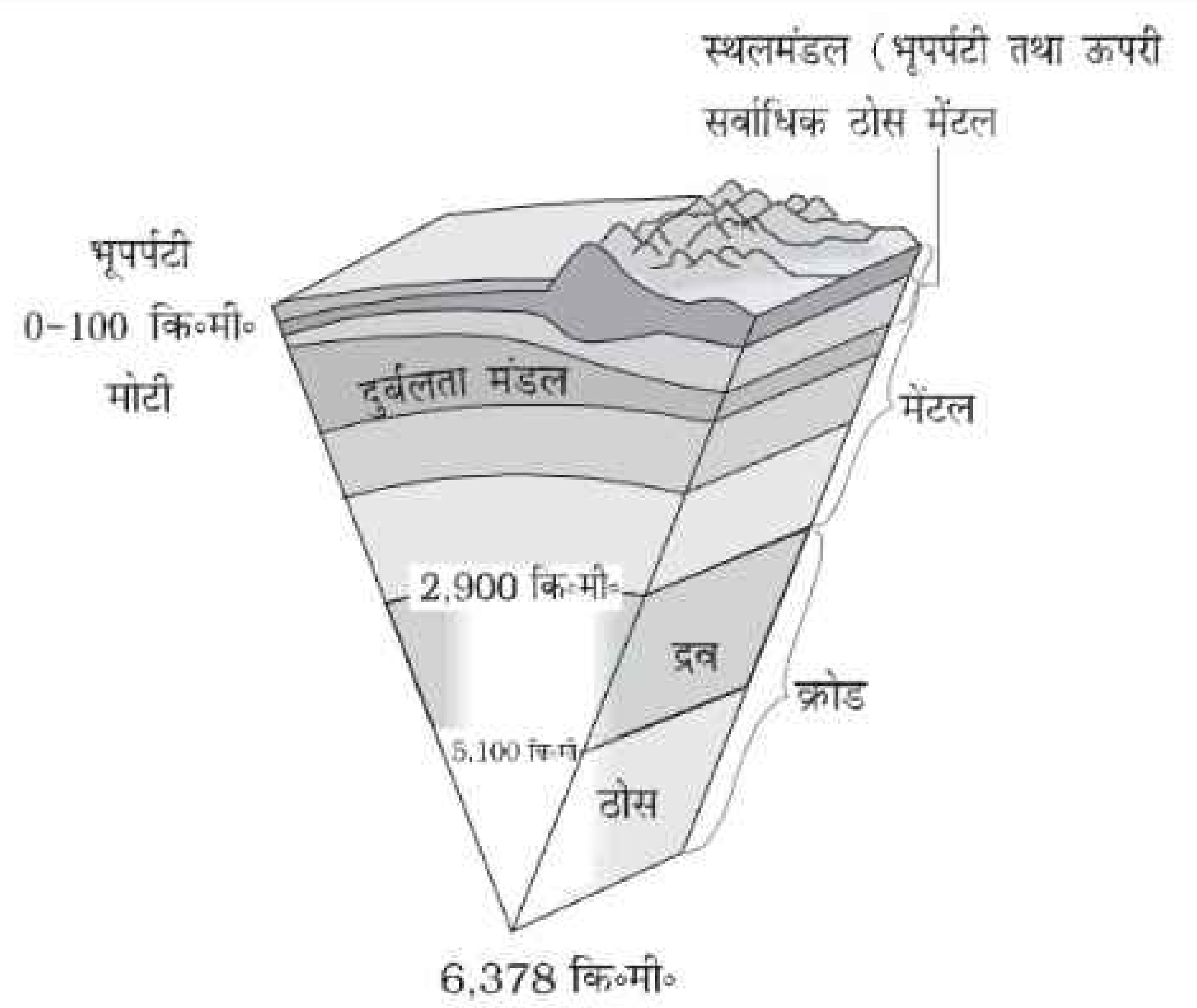

पृथ्वी का आंतरिक भाग

- मैंटल तथा क्रोड की सीमा पर घनत्व में भी अचानक परिवर्तन होता है।
- मैंटल का घनत्व 5.0 ग्राम प्रति घन से.मी. है जबकि क्रोड का घनत्व इसी सीमा के पास लगभग 10.0 ग्राम प्रति घन सें.मी. हो जाता है।
- लगभग 5100 कि.मी. की गहराई पर P तरंग की गति बढ़ जाती है जो यह प्रमाणित करता है कि अंदर का पदार्थ ठोस अवस्था में है।
- 2900 कि.मी. से 5100 कि.मी. पट्टी को बाह्य क्रोड़ तथा 5100 कि.मी. से पृथ्वी के केन्द्र तक के भाग को आंतरिक क्रोड कहा जाता है।
- संक्षेप में आंतरिक भाग की परतों को एक उबले अंडे की तरह का होता है।
- उसकी उपरी कठोर भाग पृथ्वी की भूपर्पटी की तरह से है।
- सफेद रंग का पदार्थ मैंटल का द्योतक है।
- आंतरिक पीला भाग पृथ्वी के क्रोड का प्रतिनिधित्व करता है।

परियोजना कार्य –

1. पिछले 5 वर्षों में भारत और आस–पास के देशों में आए हुए विनाशकारी भूकम्प से सम्बन्धित तथ्यों से निम्नलिखित शीर्षक में करवायें–

1. भूकम्प आने का वर्ष और मानचित्र में भूकम्प प्रभावित क्षेत्र
2. भूकम्प आने के कारण
3. भूकम्प से होने वाला नुकसान
4. सामाजिक प्रभाव
5. विभिन्न संस्थाओं/देशों द्वारा दी गई सहायता का विवरण
6. भूकम्प के चित्र

अध्याय - 3

महासागरों और महाद्वीप का वितरण

पृथ्वी के सतह का 29% क्षेत्र पर स्थल भाग है तथा शेष 71% भाग पर जल का विस्तार है। महाद्वीपों की स्थिति सदा एक सी कभी नहीं रही। इनकी अवस्थिति में हमेशा ही परिवर्तन होते रहे है। यह परिवर्तन अत्यन्त मंद गति से हुए है। इस तरह के परिवर्तनों की गणना वैज्ञानिक विधियों द्वारा की जाती है। महाद्वीपों एवं महासागरों के पारस्परिक वितरण के सम्बन्ध में दो सिद्धांत अधिक महत्वपूर्ण रहे है–

1. महाद्वीपीय प्रवाह (Continental Drift)
2. प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics)

महाद्वीपीय प्रवाह (Continental Drift)

- महाद्वीपीय प्रवाह से अभिप्राय है महाद्वीपों का क्षैतिज विस्थापन।
- महाद्वीपीय प्रवाह के बारे में विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी राय रखी है जिनमें वेगनर का विचार सबसे महत्वपूर्ण है।
- महाद्वीपों का सम्मिलित एक भूखण्ड लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व तक था जिसको वेगनर ने पैंजिया (PANGIA) नाम दिया।
- पैंजिया चारो ओर एक विशाल पैंथालासा (PANTHALASA) नामक सागर से घिरा था।
- पैंजिया का विभंजन लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व शुरू हुआ।
- यह दो महाद्वीपों में बंट गया-उत्तर वाले भाग को लारेशिया तथा दक्षिण वाले भाग को गोंडवानालैण्ड कहा गया।
- बाद में लारेशिया तथा गोंडवानालैण्ड अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बंट गए जिससे विभिन्न महाद्वीपों का जन्म हुआ।

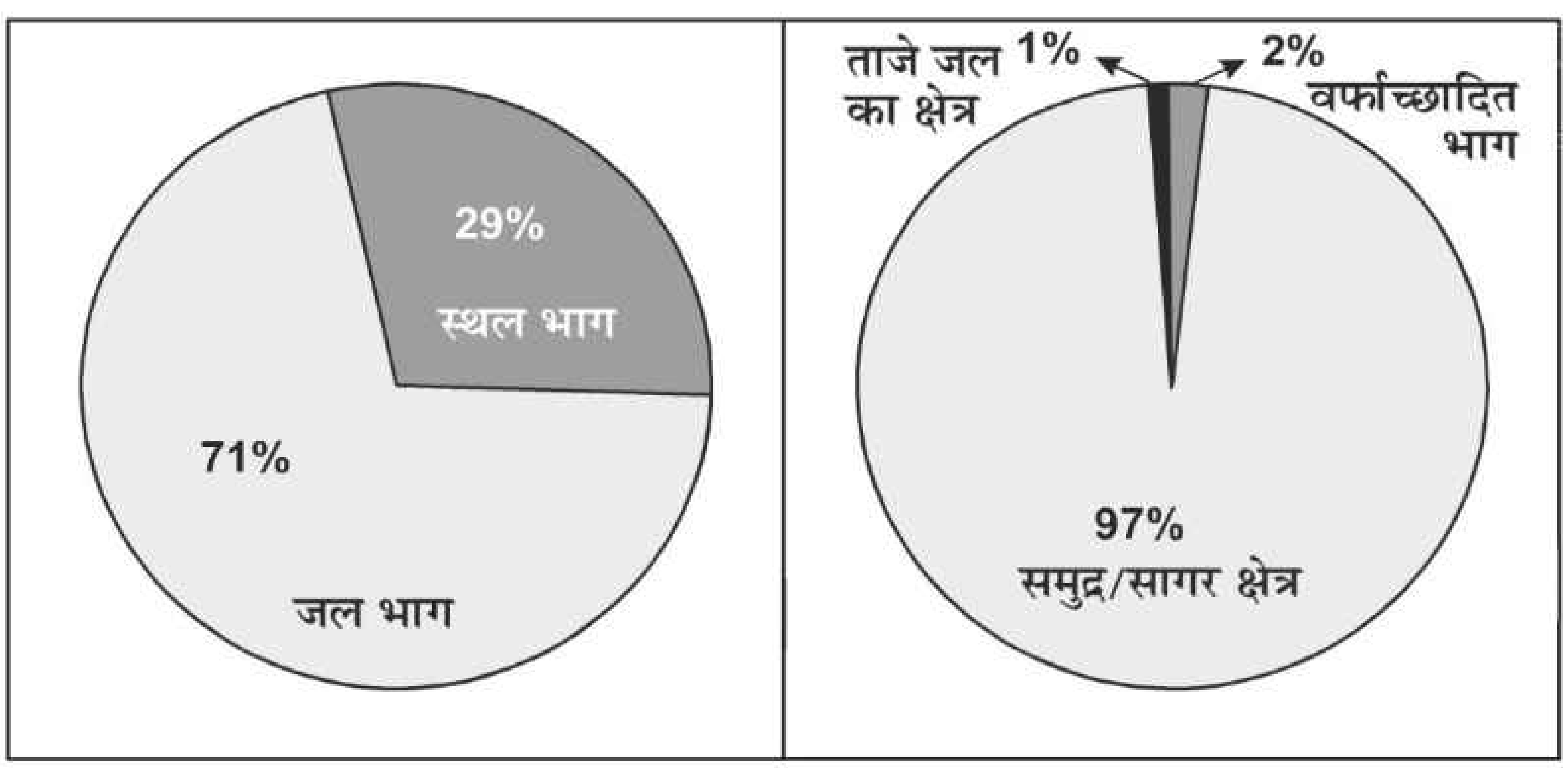

स्थल एवं जल भाग

महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of Continental Drift)

- दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका को आमने-सामने लाया जाय तो वे दोनों एक दूसरे के साथ फिट हो जाते है।
- इसे Jig-saw-fit कहते है, यानी जिस तरह आरी से आड़े तीरछे काटे गये लकड़ी के टुकड़ों को परस्पर पुनः मिलाया जा सकता है। उसी तरह से महाद्वीपों के भागों को आपस में मिलाया जा सकता है।

जिग-सा फिट (Jig-saw-Fit)

- रेडियोमिट्रिक विधि से चट्टानों की आयु का निर्धारण होता है। इस अध्ययन से पाया गया है कि ब्राजील तट और पश्चिमी अफ्रीकी तट की चट्टानों की आयु 20 करोड़ वर्ष है और उनमें समानता भी दिखाई देती है।
- हिमानी द्वारा निक्षेपित अवसादी चट्टान टिलाइट कहलाती है।
- ये चट्टानें भारत, अफ्रीका, फॉकलैण्ड द्वीप, मेडागास्कर, अंटार्कटिक और आस्ट्रेलिया में मिलती है।
- वर्तमान समय में अंटार्कटिक के अतिरिक्त इनमें से किसी जगह पर हिमानी नहीं है।
- इन सभी भूभागों पर टिलाइट का पाया जाना यह प्रमाणित करता है कि ये सभी भूखण्ड किसी समय एक साथ रहें होंगे जहां हिमानी क्रियाशील रही होगी।
- ये सारी बाते महाद्वीपों के विस्थापन की ओर इंगित करती है।
- अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित घाना में बड़ी मात्रा में सोने का निक्षेप है।
- जिन चट्टानों से सोना बनता है, वहाँ पर उनका अभाव है।

फैदम समुद्र की गहराई मापने की इकाई है। 1 फैदम=6 फीट या 1.8 मीटर

- सोनायुक्त शिराएँ (Gold bearing veins) ब्राजील के पूर्वी तट पर पायी जाती है।
- यह प्रमाण भी दोनों तटों के जुड़े हुए होने की ओर संकेत करता है।
- गोण्डवाना लैण्ड के विभिन्न महाद्वीप आज अलग-अलग पाये जाते है परन्तु उन पर पाये जाने वाले जीवाश्मों के अध्ययन से एकरूपता और समानता प्रतित होती है।

प्रवाह के लिए बल (Force for Drifting)

- वेगनर के अनुसार महाद्वीपीय विस्थापन के दो कारण थे-ध्रुवीय फ्लीइंग बल और सूर्य और चन्द्रमा का ज्वारीय बल।

- यद्यपि वेगनर के सिद्धांत में लोगों ने काफी रूचि दिखाई परन्तु व्यावहारिक मॉडलों के आधार पर उनके द्वारा बताए गए बल को इस प्रकार के विस्थापन के लिए समुचित नहीं पाया गया।

संवहनीय धारा सिद्धांत (Convectional Current Theory)

- इस सिद्धांत की विस्तृत चर्चा आर्थर होम्स ने 1928 में की।
- इन्होंने बताया कि रेडियो धर्मी पदार्थों (यूरेनियम और थोरियम) के क्षयन से ताप की उत्पत्ति होती है और चट्टानें गर्म होकर पिघल जाती है।
- इस प्रकार आंतरिक भाग में संवाहनिक तरंगें उत्पन्न होती है।

महासागरीय अद्यस्तल का मानचित्रण (Mapping of Ocean Floors)

- 1950 के दशक में महासागर के अद्यस्तल के बारे में अनेकों अध्ययन किए गये।
- इस अध्ययन से पता चला कि महासागरीय तली पर नवनिर्मित कटक, गहरी खाई एवं मैदान जैसे चौरस भाग भी पाये जाते है।

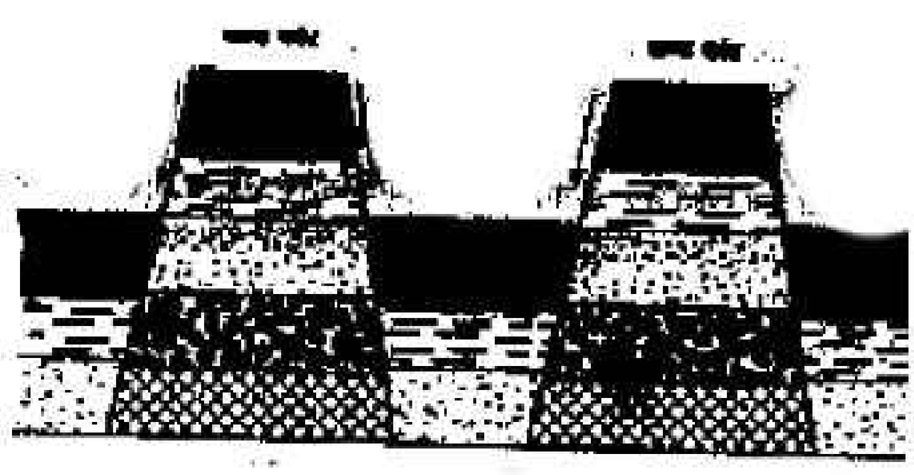

- मध्य महासागरीय कटकों से समुद्र तट की ओर जाते हुए चट्टानों की आयु मे वृद्धि होती जाती है।
- कटक के मध्यवर्ती भाग से निकलने वाला मैग्मा दोनों ओर के भागों को धकेलता है। फिर वह ठंडा होकर ठोस रूप धारण कर लेता है। अगले उद्गार के साथ फिर इसमें फैलाव होता है और इस तरह अनरवत धकेलने का कार्य जारी रहता है। इससे भूखण्डों में गति आती है और सरकाव होते रहता है।

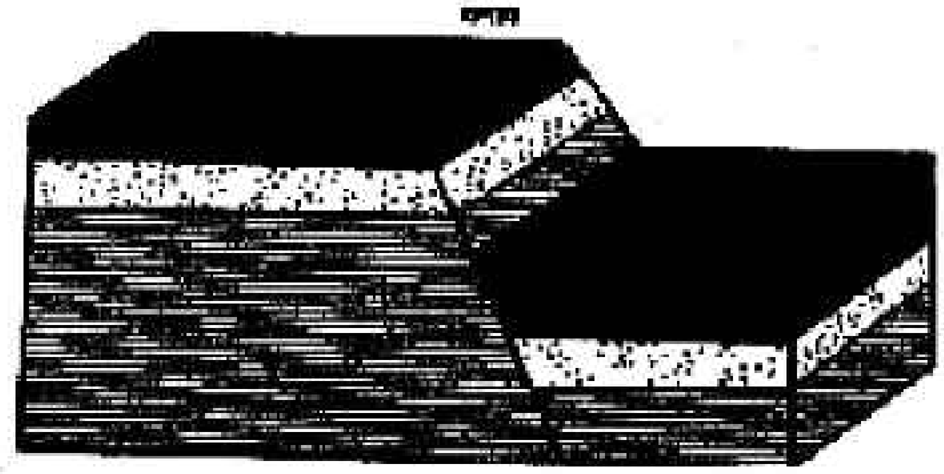

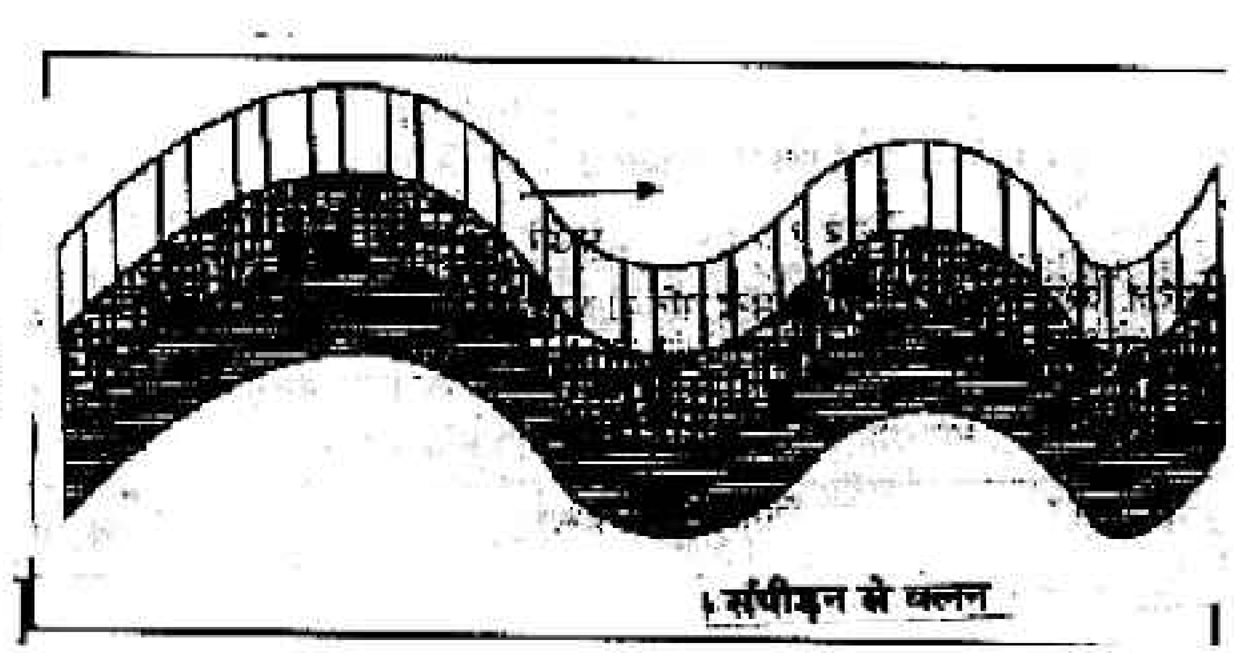

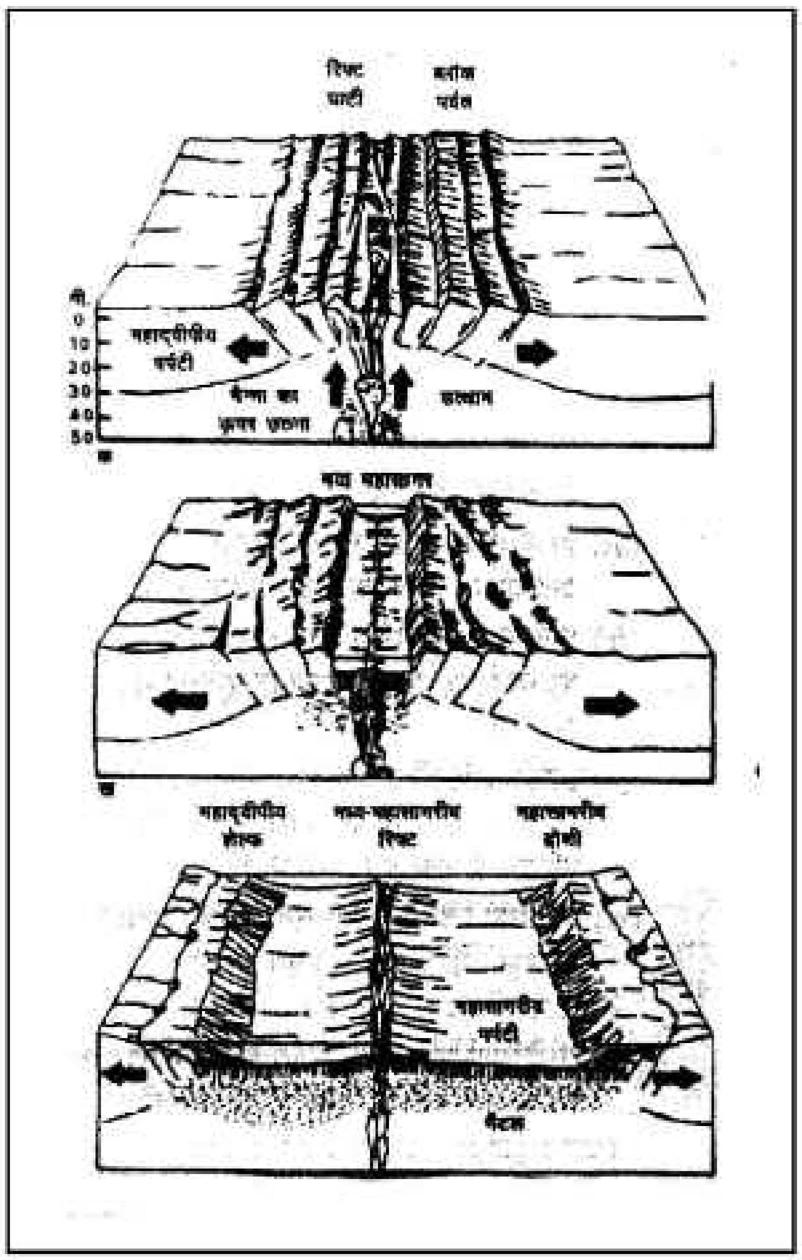

प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics)

- 1967 में मैक्कैन्जी और पारकर ने प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
- स्थलखण्ड विभिन्न प्लेटों से मिलकर बना है।
- प्लेटों की मोटाई समुद्र सतह के नीचे 100 से 150 कि.मी. तथा महाद्वीपों के नीचे 200 से 250 कि.मी. है।
- इसके नीचे दुर्बलता मण्डल (Asthenosphere) है जो न तो पूरी तरह से ठोस है न ही तरल।
- ऊपरी भूखण्ड (प्लेट) दुर्बलता मण्डल पर खिसकता है।
- खिसकाव का कारण संवहनीय तरंगें है।
- विभिन्न प्लेट केवल, महाद्वीपों या केवल महासागरों या दोनों से बने हो सकते है।
- महासागरीय कटक एवं महासागरीय गर्त प्लेट की सीमाओं पर होते है।
- महाद्वीपीय भागों में दो प्लेटों के अभिरणा से बनने वाली पर्वत श्रृंखलाएँ भी प्लेट सीमांतों से सम्बन्धित होते है।
- विशाल प्रमुख प्लेटों की संख्या सात तथा छोटे गौण प्लेटों की कुल संख्या 22 है।

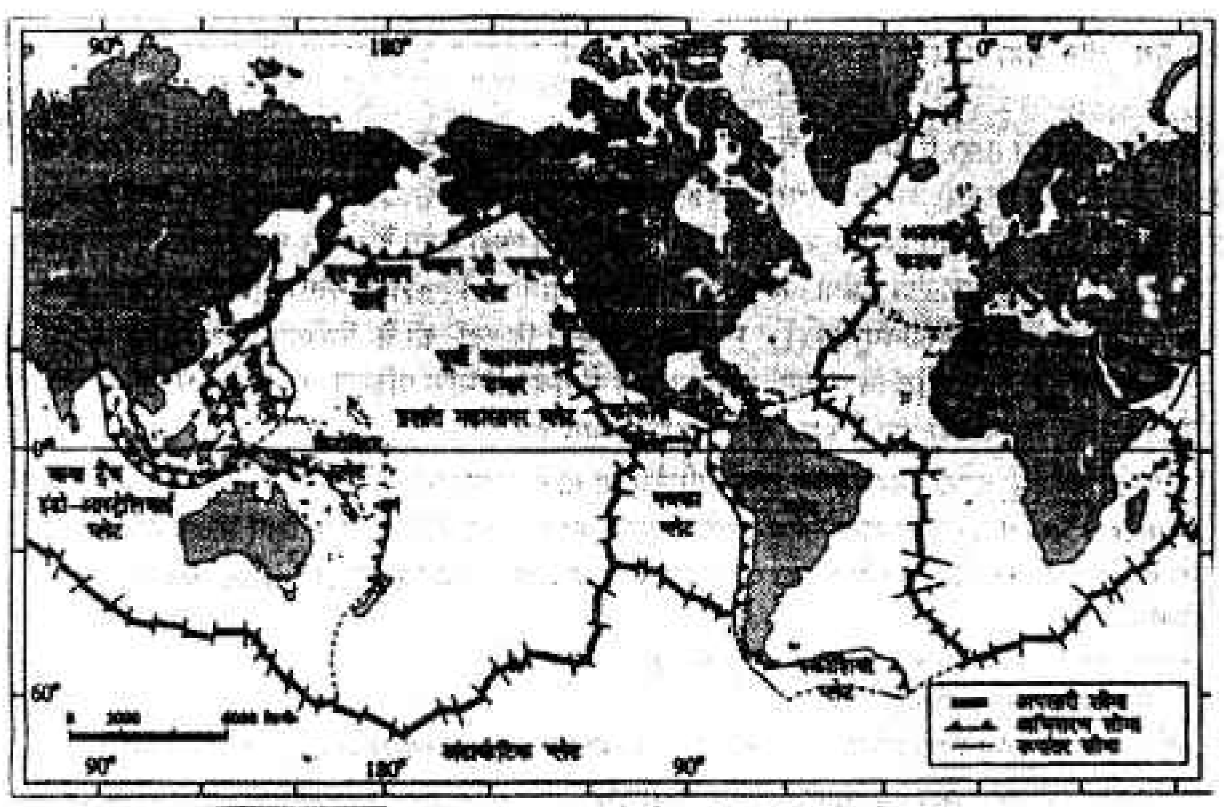

संसार की प्रमुख बड़ी व छोटी प्लेटों का वितरण

विशाल प्रमुख प्लेटें है :

1. अंटार्कटिक प्लेट
2. उत्तरी अमेरिका प्लेट
3. दक्षिणी अमेरिकी प्लेट
4. प्रशांत महासागरीय प्लेट
5. इण्डो-आस्ट्रेलिया-न्यूजीलैण्ड प्लेट
6. अफ्रीकी प्लेट
7. यूरेशियाई प्लेट

गौण प्लेटों में प्रमुख है :

कोकोस, नजका, अरेबियन, फिलिपीन, कैरोलिन, फ्यूजी आदि।

- सभी प्लेटों में संचरण होता है। संचरण के फलस्वरूप तीन प्रकार के सीमान्त पहचाने जा सकते है।

अपसारी सीमान्त (Divergent Margine)

- अपसारी सीमान्तों के क्षेत्र से दो प्लेटें एक दूसरे से दूर जाती है तथा यहाँ पर नये भूपर्पटी का निर्माण होता है।
- मध्य अटलांटिक कटक इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।
- यहाँ से अमेरिकी (उत्तरी तथा दक्षिणी) प्लेंटे तथा यूरेशियाई व अफ्रीकी प्लेटें एक दूसरे से दूर हट रही है।

अभिसरण सीमान्त (Convergent Margine)

- इन सीमान्तों पर दो प्लेटें एक दूसरे के नजदीक आ रही होती है जिससे सीमांत क्षेत्र में प्राचीन भूपर्पटी का विनाश होता है। यानी, क्षैतिज विस्तार में ह्रास होता है।
- प्लेट के अभिसारी सीमांत पर प्रविष्ठनन क्षेत्र (Subduction zone) होता है जहाँ प्लेट का अग्रभाग भूगर्भ में समाकर पिघल जाता है।
- अभिसारी सीमा पर प्लेटों की विशेषता के आधार पर इसे तीन वर्गों में रखा जाता हैं।
- महासागरीय और महाद्वीपीय सीमांत के अभिसरण से महासागरीय प्लेट नीचे धंसती है और महाद्वीपीय सीमांत पर वलित पर्वतों का निर्माण होता है।
- दो महासागरीय प्लेट सीमांतों के अभिसरण से दोनों सीमांतों का प्रविष्ठन होता है।
- दो महाद्वीपीय प्लेटों के अभिसरण से वलित पर्वतों का निर्माण होता है जैसे भारत का हिमालय पर्वत।

रूपांतर सीमांत (Transform Margine)

- इन सीमांतों पर न तो कोई भूपर्पटी का निर्माण होता है और न हीं विनाश।
- यहाँ प्लेटें एक दूसरे के साथ-साथ क्षैतिज दिशा में सरकती है।
- इनको संरक्षी सीमांत भी कहा जाता है।

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत न केवल महाद्वीपों एवं महासागरों के वितरण की व्याख्या करता है बल्कि भूकम्प, ज्वालामुखी तथा वलित पर्वन श्रृंखलाओं के निर्माण जैसे प्रक्रमों पर भी प्रकाश डालता है।

क्रियाकलाप-

1. विश्व के कौन-कौन सा क्षेत्र आपस में JIG-SAW-FIT किए जा सकते हैं? पहचान कीजिए।
2. महाद्वीपों के विस्थापन का एक क्रम से विश्व का मानचित्र बनाइए।
3. महाद्वीपों के विस्थापन को YOU TUBE पर VIDEO डाऊन लोड करके दिखाऐं।

अध्याय - 4

भू आकृतिक प्रक्रियाएँ

हम सभी जानते हैं कि धरातल पर विविध प्रकार की स्थलाकृतियाँ पायी जाती है। कहीं पर पर्वत है तो कहीं पठार, कहीं मैदान है तो कहीं विशाल समुद्र। इन पर्वतों, पठारों, मैदानों एवं समुद्रों आदि में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ विकसित हुई है। सूक्ष्मतम से विशालतम स्थलाकृतियों के निर्माण के अवश्य ही कोई कारण है। इन कारणों एवं उनकों विकसित करने वाले माध्यमों द्वारा ही उनका निर्माण होता है। अत: प्रक्रियाओं से अभिप्राय उन बलों एवं प्रक्रमों से है जिनसे विविध प्रकार की स्थलाकृतियों का जन्म होता है। आइए, हम सभी उन प्रक्रियाओं पर चर्चा करें।

हम सभी यह अच्छी तरह जानते है कि:-

- धरातल परिवर्त्तनशील है।
- यह परिवर्तन दो प्रकार के बलों-अंतर्जनित (Endogenic) और बहिर्जनित (Exogenic)- के कारण होता है।
- अंतर्जनित बलों के कारण सामान्यतया विशाल भूखण्ड का निर्माण होता है।
- वहिर्जनित बल धरातल पर आए विसंगतियों को दूर करने का प्रयास करते है।
- किसी स्थलाकृति का निर्माण इन दोनों बलों के बीच का प्रतिफल (Resultant) होता है। अर्थात् दोनों बलों के बीच में आने वाले अंतर से ही स्थलाकृतियों का निर्माण होता है।

अंतर्जनित बल/प्रक्रिया (Endogenic Force/Process)

- रेडियोधर्मी क्रियाओं तथा आंतरिक ताप के कारण अंतर्जनित बल का जन्म होता है।
- इससे ऊपरी भाग (प्लेंटे) चलायमान हो जाते है। इसका प्रभाव सतह पर क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर (Horizontal and vertical) संचालन दिखाई देता है।
- इनसे सामान्यतया पटलविरूपणी बल (Diastrophic Force) का कार्यान्वयन होता है।

पटल विरूपण (Diastrophism)

- अंतर्जात बलों के कारण सभी प्रकार के संचालनों के पटल विरूपण के अंतर्गत रखा जाता है।
- इसमें दोनों गतियाँ-क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर- शामिल होती है।
- इनसे वृहत् स्थल स्वरूपों का सृजन होता है।
- सामान्यतया ये गतियाँ मंद होती है जिनका प्रभाव लम्बें समय में देखा जाता है।
- इन प्रकार की गतियों से पर्वत निर्माण, महाद्वीप निर्माण, उत्तलन, अवतलन, भूपर्पटी विभंजन, भ्रंमन आदि होता है।
- ज्वालामुखी, विस्फोट एवं लावा का निकलना आंतरिक प्रक्रियाओं का ही परिणाम है।

बहिर्जनित बल/प्रक्रिया (Exogenic Force/Process)

- बहिर्जनित बल सामान्यतया भूतल के ऊपर जनित होते हैं।
- इनमे गत्यात्मकता का प्रमुख स्रोत सूर्य से प्राप्त ऊर्जा है।
- पृथ्वी के आंतरिक भाग से गुरूत्वकर्षण बल लगता है। गुरूत्व बल सतह पर प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। इसी बल के कारण सभी चीजें/वस्तुएँ नीचे (पृथ्वी के केन्द्र की ओर) खींची जाती है।
- खिंचाव के समय लगने वाला प्रतिबल (Stress) चीजों/वस्तुओं को स्थिर बनाने में प्रयासरत होता है। इन दोनों के बीच असंतुलन के कारण पदार्थों का विस्थापन होता है।
- पदार्थों के विस्थापन की प्रक्रिया में सतह पर बदलाव आता है और विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ बनती है।
- स्थलाकृतियों के निर्माण में विभिन्न सहयोगी कार्यविधियाँ होती है जो मूलत: बाह्य प्रक्रियाओं द्वारा नियन्त्रित होती है। दूसरे शब्दों में स्थलाकृति निर्माण प्रक्रिया में उनकी अहम भूमिका होती है।

सौर ऊर्जा की विविधता

- भूतल पर सौर ऊर्जा विभिन्न अक्षांशों में अलग-अलग है।
- सौर ऊर्जा एवं जल उपलब्धता के आधार पर जलवायु में भी विविधता पायी जाती है।
- सौर ऊर्जा एवं जलवायु विविधता के साथ ही बाह्य प्रक्रियाओं में अंतर आता है। अतएव भूतल पर विभिन्न भागों में विभिन्न प्रक्रियाएँ पायी जाती है।
- कुछ बाह्य प्रक्रियाओं के बारे में विस्तार से समझे:-

अपक्षय (Weathering)

- भौतिक, रासायनिक तथा जैविक कारणों से शैल के अपने ही स्थान पर टूटने-फूटने एवं कमजोर होने की क्रिया को अपक्षय कहते है।
- अपक्षय में भाग लेने वाले कारकों के आधार पर तीन वर्गों के अंतर्गत रखा जाता है-
  - भौतिक या यान्त्रिक अपक्षय
  - रासायनिक अपक्षय
  - जैविक अपक्षय

भौतिक या यान्त्रिक अपक्षय (Physical or Mechanical Weathering)

- जब शैल बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के ही विघटित हों तो उस क्रिया को भौतिक अपक्षय कहते है।
- इस तरह की अपक्षय की क्रियाएँ सूर्यातप, तुषार, वर्षा द्वारा सम्पादित होते है।

- शैले विभिन्न प्रकार के खनिजों से बने होते है और विभिन्न खनिजों पर ताप का प्रभाव भिन्न होता है। अत: बार बार ताप बढ़ने एवं घटने से शैलों में दरार पड़ती है। वे कमजोर होकर टूटने लग जाते है।
- तुषार के कारण भी शैलें टूटती है क्योंकि पानी की तुलना में बर्फ का आयतन ज्यादा होता है। अत: दरारों में पानी के बर्फ बनने से शैलों पर दबाव पडता है, कमजोर होती है। बार–बार यह क्रिया होने से शैलों का अपक्षय होता है।
- दिन में सूर्यातप के कारण शैलों में प्रसार हुआ रहता है। जब वर्षा होती है तो तापांतर ज्यादा होने के कारण पानी की बूंदों के पड़ने के साथ ही शैलें टूटने लगती है। इस प्रक्रिया के बार–बार होने से भौतिक अपक्षय होता है।
- ऊपर के शैलों के अपक्षय एवं उनके भार के कम होने से बीच की शैलों का ऊपर की फैलाव होता है जिससे शैलों में दरारे पडने लगती है और वे कमजोर होने लगती है।

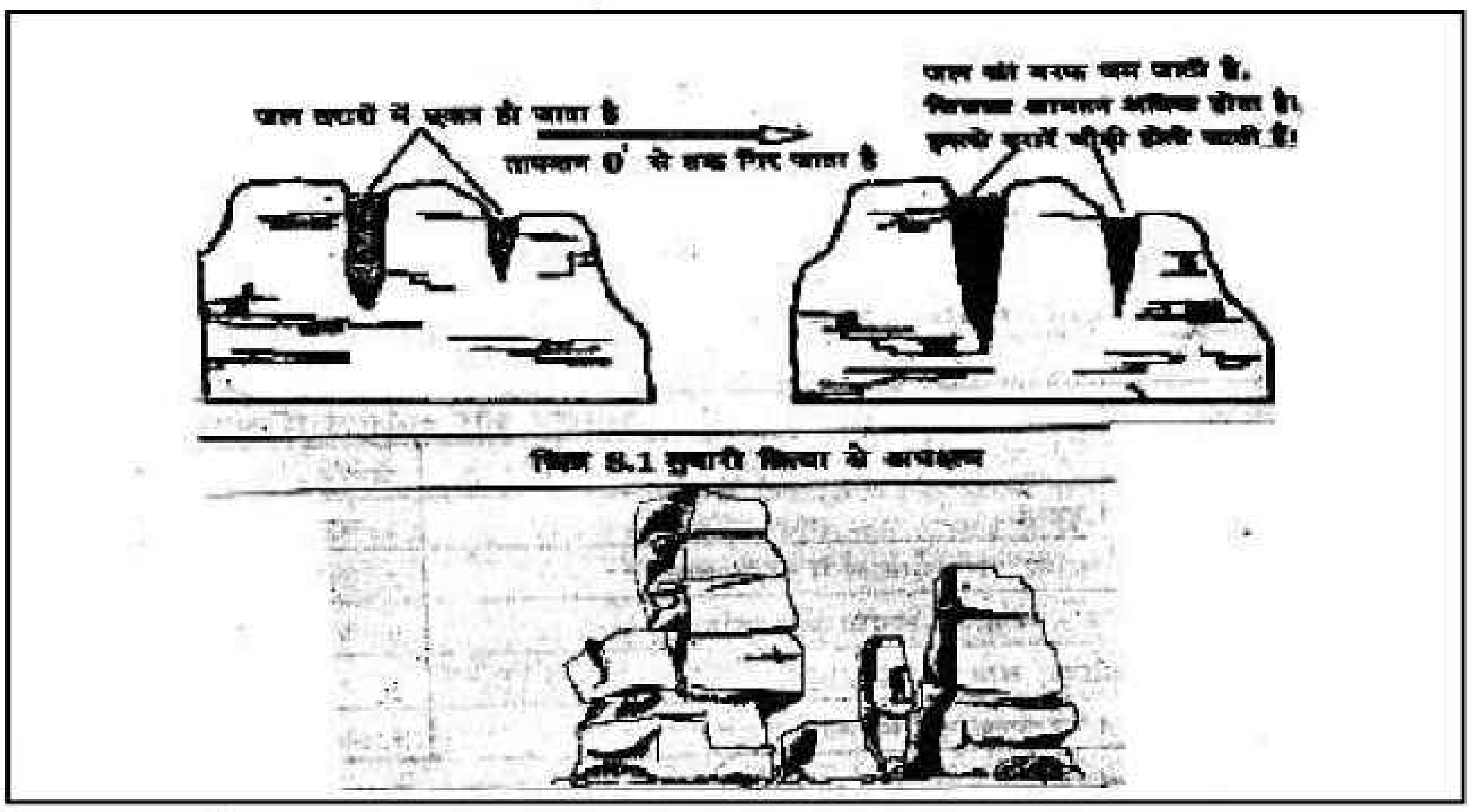

अपक्षय

रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering)

- रासायनिक अपक्षय द्वारा चट्टानों के नये प्रकार के पदार्थ बनने लगते है।
- इस तरह मूलशैल में विघटन हो जाता है। इस प्रकार के विघटन को चार वर्गों में रखा जाता है।
    - ऑक्सीकरण (Oxidation)
    - कार्बोनेशन (Carbonation)
    - जलयोजन (Hydration)
    - घोलीकरण (Solution)
- लौह खनिजों से युक्त शैलों पर जल/आर्द्रता के साथ वायुमण्डलीय ऑक्सीजन सम्पर्क में आता है तो लौह ऑक्साइड में बदल जाता है और शैलें फैलने लगती हैं। फैलाव के कारण शैलें कमजोर होकर टूटने लगती हैं। जैसे– लोहे की वस्तुओं पर जंग लगना भी ऑक्सीकरण ही है।

- क्रियाशील शैलों के साथ जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड के संयोग से कार्बोनेशन की क्रिया होती है। इससे कोर्बोनेट का निर्माण होता है। चूने की चट्टान/शैल से कैल्सियम कार्बोनेट बनता है। कार्बोनेट आसानी से जल में घुलने लगता है। इस तरह से कार्बोनेशन की क्रिया होती है।

- कुछ शैल खनिजों का आयतन जल संपर्क में आने के कारण बढ़ जाता है। आयतन बढ़ने से उनपर दबाव पड़ता है और ढ़ीली होकर बिखरने लगती है। फैल्सपार खनिज के जल योजन से मृतिका बन जाती है। मृतिका का आयतन जल शोषण से अधिक होकर टूट जाती है। इस प्रकार की क्रिया को जल योजन कहा जाता है।

- शैलों के विभिन्न खनिजों का पानी में घुल जाने की क्रिया को घोलीकरण कहते है। शुद्ध जल अच्छा घोलक (Solvent) नहीं है। परन्तु कार्बोनेशन हुए क्रिया के पश्चात शेष भाग जल में घुल जाता है और वहाँ से जल द्वारा बहा लिया जाता है। कुछ पदार्थ जैसे सेंधा नमक (Rock Salt) तथा जिप्सम वर्षा जल में आसानी से घुल जाते है। यह क्रिया घोलीकरण कहलाती है।

जैविक अपक्षय (Biological Weathering)

- मानव सहित विविध प्रकार के जीव-जन्तु और वनस्पति शैलों के अपक्षय में प्रभावी है।

- विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु जैसे-खरगोश, चूहें, केंचुए एवं अन्य प्रकार के कीड़े-मकोड़े भूमि को खोदकर बिल बनाते है और शैलों को कमजोर कर देते है। कुत्ते व बिल्ली भी जमीन को खरोंच कर कमजोर बनाते है।

- पेड़-पौधों की जड़े भी शैलों में प्रवेश कर उन्हें तोड़ते है। जैसे-जैसे जड़ें मोटी होती जाती है, आस-पास की शैलों पर दबाव डालती है। इससे शैलों के बंधन ढीले पड़ते है एवं टूट कर अलग होने लगते है।

- शैलों के अपक्षय में मानव का योगदान बहुत बड़ा है। शैलों को तोड़ना, खेतों को जोतना, खनन, रेल-सड़क मार्ग का निर्माण आदि क्रियाएँ सतह पर पायी जाने वाली शैलों को प्रभावित करते है और शैले कमजोर हो जाती है।

वृहत् संचलन (Mass Movement)

- बृहत् संचलन से अभिप्राय है ढ़ाल के सहारे गुरूत्वाकर्षण बल के कारण विशाल भूभाग का सरकना। अर्थात् स्थानीय स्तर पर शैलों का बृहत् मलवा का स्थानान्तरण।

- बृहत् संचलन के लिए अपक्षय आवश्यक तो नहीं है पर अपक्षय बृहत् संचालन में सहायक होता है।

- बृहत् संचलन को प्रभावित करने वाले विविध कारक होते है-
  - ढ़ाल के सहारे टिके पदार्थों के आधार का हटना
  - ढ़ाल प्रवणता एवं ऊँचाई में वृद्धि
  - ढ़ाल पर पदार्थों/शैलों का जल आपूर्ति द्वारा स्नेहन (Lubrication)
  - वनस्पति का विनाश
  - बृहत् संचलन में गति अलग-अलग होती है।

गति के आधार पर बृहत् संचलन को निम्नलिखित दो वर्गों में रखा जाता है।

- मंद संचलन (Slow Movement)
- तीव्र संचलन (Rapid Movement)

- मध्यम तीव्र (Moderately Steep) ढ़ाल पर अवस्थित मृदा मंद गति से नीचे की ओर सरकती है तो उसे मृदा सर्पण (Soil Creep) कहते है। इसमें मृदा जल से संतृप्त हो जाती है और धीरे-धीरे फिसलने लगती है। यह उच्च अक्षांओं में या अधिक ऊचाई पर हिम पिघलने से भी घटित होता है।
- इसमें गति इतनी मंद होती है कि इसका अनुभव नहीं हो पाता है। बिजली/टेलिफोन के स्तम्भ या बाड़ (Boundary Poles) जो स्थापित करते समय बिल्कुल लम्बवत होते है। समय बीतने के साथ निम्न ढ़ाल की ओर झुक जाते है। यह मृदा सर्पण के कारण ही होता है।

तीव्र संचलन

- मध्यम तीव्र (Moderately Steep) से तीव्र (Steep) ढ़ालों पर आर्द्र प्रदेशों में तीव्रता के साथ पदार्थों/शैलों का सरकाव होता है।
- आर्द्र प्रदेशों में संतृप्त मृदा या गाद व्यापक मात्रा में तीव्र ढ़ाल के साथ नीचे तेजी से आता है जिसे मृदा प्रवाह (Soil flow) कहते है।
- पर्वतीय भागों में भारी वर्षा या हिम द्रवणन के कारण पर्याप्त मात्रा मे नमी से ढ़ाल के किनारे का मलवा, मृदा, वनस्पति सरककर नीचे आ जाते है। इसे भूस्खलन (Land Slide) कहते है। इसमें प्रधानतः शैलों के सरकाव को शैल स्खलन (Rock Slide) एवं मिश्रित पदर्थों का नीचे की ओर रूक-रूक कर सरकना अवसर्पण (Slump) कहलाता है।
- शैलपात (Rock Fall) में शैलें ऊपर से सीधी नीचे की ओर गिरती है। अर्थात् शैलपात विशेषत: उस ढ़ाल पर होता है जहाँ वह बिल्कुल खड़ी ढ़ाल हो। एक तरह से भृग (Cliff) के साथ शैलपात होता है।

मृदा निर्माण (Soil Formation)

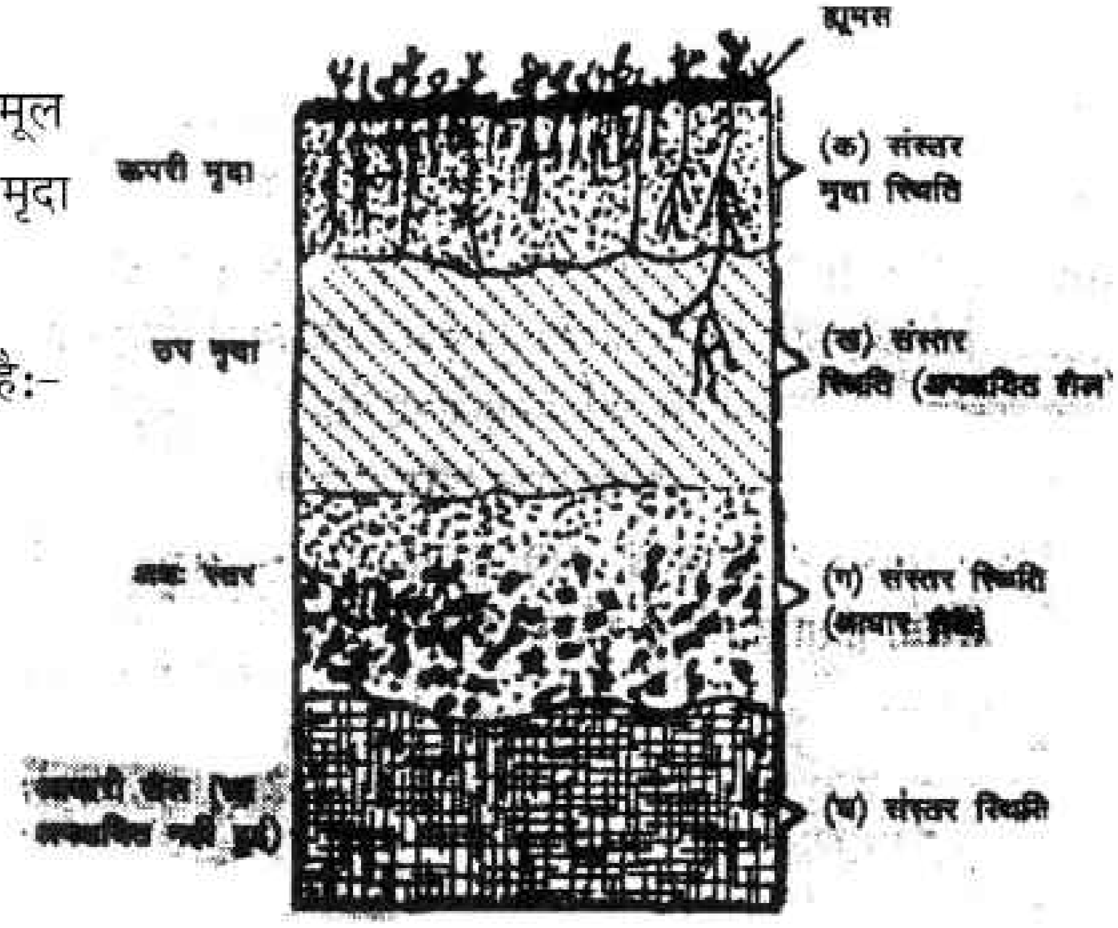

- धरातल के असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी परत जो मूल शैलों तथा सड़ी-गली वनस्पतियों के योग से बनती है मृदा कही जाती है।
- मृदा निर्माण निम्नलिखित कारकों द्वारा नियंत्रित होता है:-
  - मूल शैल (Parent Material)
  - स्थलाकृति (Topography)
  - जलवायु (Climate)
  - जैविक कारक (Biological Faotors)
  - समय (Time)

मूल शैल (Parent material)

- मृदा का निर्माण स्थान विशेष पर अपक्षयित शैल अथवा बाह्य कारकों द्वारा निक्षेपित पदार्थों के एकत्रीकरण से होता है।
- मृदा का गठन, संरचना एवं खनिजों का संयोजन उसके मूल शैलों पर निर्भर करता है क्योंकि वे ही उनके जनक होती है।
- मूल शैल को निष्क्रय नियंत्रण वाले कारक के रूप में जाना जाता है क्योंकि समान किस्म की मूल शैल होने के बावजूद भी जलवायु में अंतर होने के कारण मृदा के विकास में अंतर आ जाता है।

स्थलाकृति (Topography)

- स्थलाकृति घटक जैसे ऊँचाई, उच्चावच और भूमि का ढ़ाल अपरदन एवं निक्षेपण को प्रभावित करता है जो मृदा निर्माण के लिए आवश्यक है।
- तीव्र ढ़ालों पर मृदा, पतली या छिछली (Thin) होती है जबकि सपाढ़ मैदानी भागों में गहरी या मोटी होती है। सामान्य ढ़ाल वाले भागों पर मृदा का विकास भी सामान्य ही रहता है।
- सूर्योन्मुख ढ़ाल पर मृदा का विकास अच्छा रहता है जबकि सूर्य से विपरीत ढ़ाल पर मृदा सुविकसित नहीं होती है।
- स्थलाकृति को भी मृदा निर्माण का निष्क्रिय कारक माना जाता है।

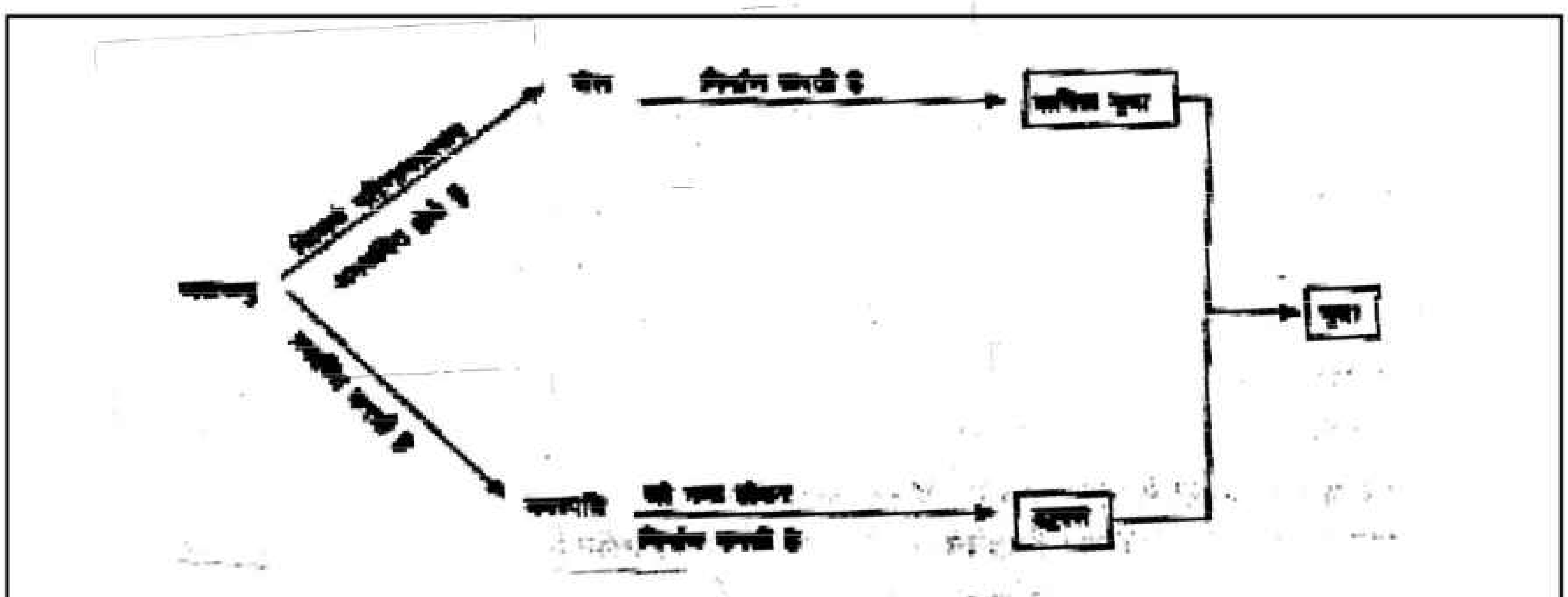

मृदा निर्माण के कारक

जैविक कारक (Biological Factors)

- विभिन्न प्रकार के जैव स्रोतों जैसे पेड़-पौधों, घासें, लताएँ, झाड़ियाँ मृदा को विकसित करने में अहम भूमिका निभाते है।
- इनकी उपस्थिति से ही मृदा में उर्शवता आती है। अत: पूर्ण विकसित मृदा के लिए जैविक कारक बहुत ही महत्वपूर्ण है।
- जैविक कारक मृदा निर्माण का सक्रिय कारक है।

जलवायु (Climate)

- मृदा निर्माण में जलवायु एक सक्रिय कारक है।
- वर्षा एवं इसकी गहनता/कमी, आर्द्रता, तापमान एवं मौसमी दशाएँ क्षेत्र विशेष की मृदा के विकास को प्रभावित करती है।

समय (Time)

- मृदा विकास के लिए लम्बा समय आवश्यक होता है।
- कम समय में अपक्षय, अपरदन, निक्षेप पूर्ण नहीं होता और न हीं है ह्यूमस का विकास हो पाता है। अतः समयावधि के अनुसार तीन प्रकार की मृदा होती है–युवा, प्रौढ़ एवं पूर्ण विकसित है।

क्रियाकलाप–

1. तीव्र संचलन (Mass Movement) के कोई 5 बड़े उदाहरण बताइए तथा इसका VIDEO भी दिखाने का प्रयास कीजिए।
2. अपक्षय से होने वाले स्थल रूपों में परिवर्तनों पर चर्चा कराऐं

अध्याय - 5

भूआकृतियाँ तथा उनका विकास

सामान्यतया छोटे या मध्यम आकार के भूखण्ड को भूआकृति (Landform) कहते है तथा बृहत् क्षेत्र जिसपर विविध स्थलाकृतियाँ होती है उसे भूदृश्य (Landscape) कहते है। आंतरिक बलों के सम्बन्ध में पहले चर्चा की गई है। अभी हम बाह्य बलों/प्रक्रिया की चर्चा एवं उनसे बनने वाली आकृतियों की क्रियाविधि समझेंगे। जैसा कि हम सभी जानते है, विभिन्न प्रकार की बाह्य प्रक्रियाएँ है। उनमे से महत्वपूर्ण है प्रवाहित जल, भूमिगत जल, वायु के कार्य, हिमनद तथा समुद्री तरंगे। इन सभी को सामान्य रूप से सतह पर कार्य करने वाले प्रक्रम (Process) के रूप में भी जानते है। इन प्रक्रमों के कार्य अलग-अलग होते है। अत: स्वाभाविक है कि इनसे बनने वाले विविध आकृतियों की क्रियाविधि भी अलग-अलग होती है। आइये इनके द्वारा बनाई जाने वाली कुछ प्रमुख स्थलाकृतियाँ के बारे में अध्ययन करें।

प्रवाहित जल (Running Water)

- जल की प्रचुरता एवं प्रवाह उष्णार्द्र जलवायु वाले प्रदेशों में ही होता है।
- प्रवाहित जल सतह पर अपक्षयित एवं अपरदित पदार्थ का परिवहन कर दूसरे स्थान पर निक्षेप करता है।
- जल प्रवाह एवं उसके कार्य करने की क्षमता जल की मात्रा, ढाल, सतही विशेषता, उपलब्ध ढ़ोने के भार आदि पर निर्भर करता है।
- सामान्यत: वर्षा जल प्रथमावस्था में स्थलगत प्रवाह (Overland flow) के रूप में आगे बढ़ता है।
- बहते जल के साथ छोटी सरिताएँ बनती है। ये धीरे-धीरे लम्बी एवं विस्तृत अवनलिकाओं में विकसित होती है। उनका उत्तरोत्तर विकास नदी के घाटियों का जाल बनाती है।
- इस तरह नदी घाटी के विकास के दृष्टिकोण से इसे तीन अवस्थाओं में बाँटा जाता है। - (क) युवावस्था (ख) प्रौढ़ावस्था (ग) वृद्धावस्था

युवावस्था (Youth)

- नदियों की कम संख्या, उथली V आकार की घाटी, जल विभाजक अत्यधिक विस्तृत, ऊँचे धरातल, कठोर चट्टानों के साथ जल प्राप्त आदि युवावस्था के लक्षण होते है।

प्रौढ़ावस्था (Mature)

- नदियों की संख्या ज्यादा, जल का ज्यादा एकत्रीकरण, गहरी V आकार की घाटी, व्यापक एवं विस्तृत बाढ़ का मैदान, विसर्प का बनाना, जल विभाजक पतले एवं स्पष्ट, धीरे-धीरे जल प्राप्त समाप्ति की ओर अग्रसर आदि विशेषताएँ प्रौढ़ावस्था की है।

वृद्धावस्था (Old)

- सहायक नदियों की संख्या कम, ढ़ाल मंद, उच्चावच कम, जल विभाजक प्राय: समाप्त, क्षेत्र लगभग समतल, झील, दलदल आदि वृद्धावस्था की विशेषताएँ है।

- बाह्य प्रक्रमों द्वारा अपरदन, परिवहन एवं निक्षेप तीनों कार्य सम्पादित किए जाते है। वस्तुत: ये तीनों कार्य भी एक तरह से कड़ी के रूप में होते है। अर्थात् अपरदन होगा तभी परिवहन भी होगा और जब परिवहित पदार्थ आगे बढ़ेगा तभी निक्षेपण भी होगा। इस लिए ये तीनों कार्य का सम्पादन साथ-साथ होता है।

- स्थलाकृतियों का विकास अपरदन एवं निक्षेप दोनों से ही होता है।

अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ (Erosional landforms)

घाटियाँ (Valleys)

- प्रारम्भ मे उथली घाटी का निर्माण होता है। समय बीतने के साथ घाटी गहरी होने लगती है और V का आकार ले लेती है।

- यही V आकार की घाटी तीव्र ढ़ाल के कारण और अधिक गहरी होने लगती है और यह गहरे गार्ज का रूप धारण कर लेती है। इसे I आकार की घाटी का भी नाम दिया जाता है।

- जब घाटी ऊपर की और चौड़ो, काफी गहरी एवं नीचे का भाग पतला हो जाता है तो उसे कैनियन कहते है।

जलगर्तिका (Potholes) और अवनमित कुंड (Plunge pools)

- नदी की तली में अगर कोई छोटा छिद्रनुमा आकृति बन जाती है तो उसमें छोटे टुकड़े फंस जाते है। बहते जल के कारण वह चक्कर (Eddies) लगाने लगता है। इससे उसका आकार बड़ा होकर जल गर्तिका का निर्माण करता है।

- जल प्रपात में जल ऊँचाई से गिरने के कारण एक बड़े गहरे जल गर्तिका का निर्माण करता है। इसे ही अवनमित कुंड (Plunge Pools) का नाम दिया जाता है।

अध: कर्तित विसर्प (Incised or entrenched meander)

- मध्यवर्ती भाग या प्रौढ़ावस्था में ढ़ाल के मंद होने के कारण नदी पार्श्व अपरदन कर विसर्प बनाती है। ये विसर्प गहरे नहीं होते है क्योंकि ढ़ाल की कमी होती है।

- विसर्प बने वाले भाग का आंतरिक बल के कारण धीरे-धीरे उत्थान होता है तो नदी अपने मार्ग में अपने घाटी को गहरा बनाने लगाती है। अत: विसर्प वाला भाग ज्यादा गहरा हो जाता है। इस गहरे विस्तृत बने विसर्प को हो अध:कर्तित विसर्प कहा जाता है।

नदी वेदिकाएँ (River Terraces)

- नदी के दोनों ओर सोपानाकार वेदिकाएँ मिलती है। प्रारम्भिक नदी वेदिका बाढ़ के अवशिष्ट चिह्न होते है। वे बाढ़ के मैदान में लम्बवत अपरदन के कारण बनती है।

- जब नदी के दोनों और समान ऊँचाई वाले वेदिकाएँ होती है तो इन्हें युग्म वेदिकाएँ कहते है। जब नदी के मात्र एक ओर ही वेदिकाएँ होती है तो उन्हें अयुग्मित वेदिका कहा जाता है।

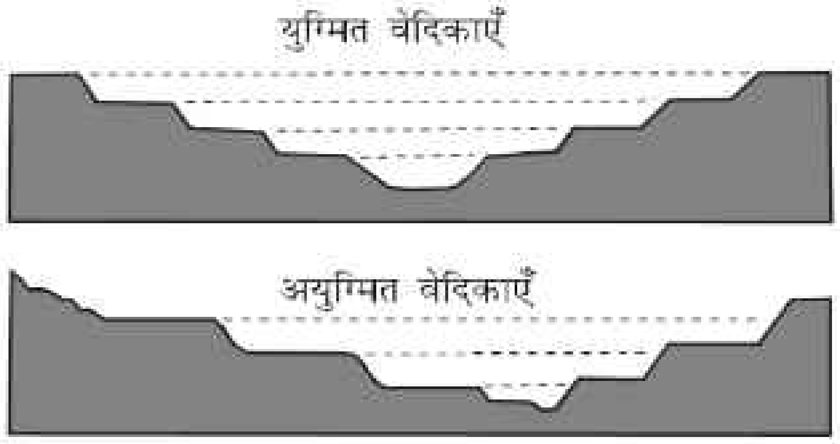

युग्मित एवं अयुग्मित वेदिकाएँ

- नदी वेदिकाओं के उत्पत्ति के मुख्य कारण है-
- जल प्रवाह का कम होना
- जलवायु परिवर्तन
- विवर्तनिक कारणों से भू उत्थान
- समुद्र जल तल में परिवर्तन

निक्षेपित स्थलाकृतियाँ (Depositional Landforms)

जलोढ़ पंख (Alluvial Fan)

- पर्वतीय भाग से नदी जब अपने गिरिपदीय भाग पर उतरती है तो ढ़ाल में अचानक कमी आने के कारण परिवहन क्षमता घट जाती है। अत: वह अपना अधिकांश भार गिरिपद के साथ जमा कर देती है जो पंख के आकार का होता है।
- यहाँ पर नदी छोटे छोटे भाग में बंट जाती है और पतली पतली धाराओं से पानी आगे बहता हुआ जाने लगता है। आगे बढ़कर ये वितरिकाए मिल कर एक नदी का रूप ले लेती है।
- इस तरह से जमें हुए निक्षेपित मलवे को जलोढ़ पंख का नाम दिया जाता है।

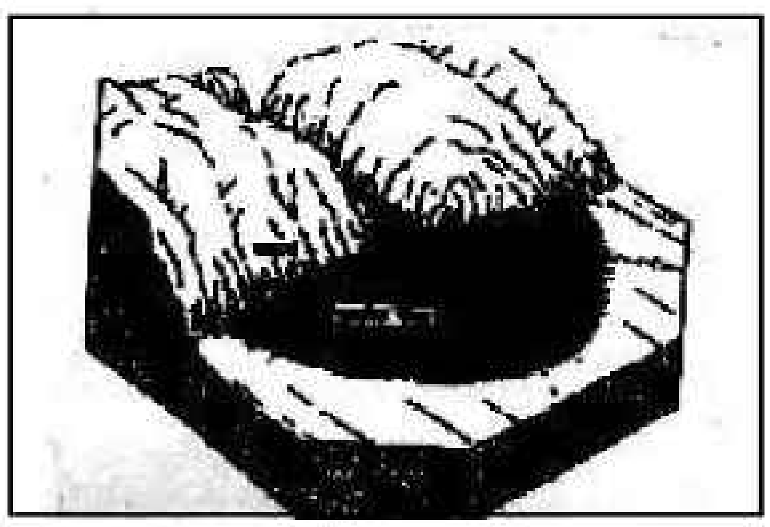

बाढ़ का मैदान (Flood Plain)

- जिस तरह अपरदन से घाटियाँ बनती है, उसी प्रकार निक्षेपण से बाढ़ का मैदान बनता है।
- जैसे-जैसे ढाल मंद होने लगती है, बहते हुए जल द्वारा लाये जाने वाले पदार्थ धीरे-धीरे जमाकर दिया जाता है। इस जमाव से विस्तृत मैदान का निर्माण होता है।

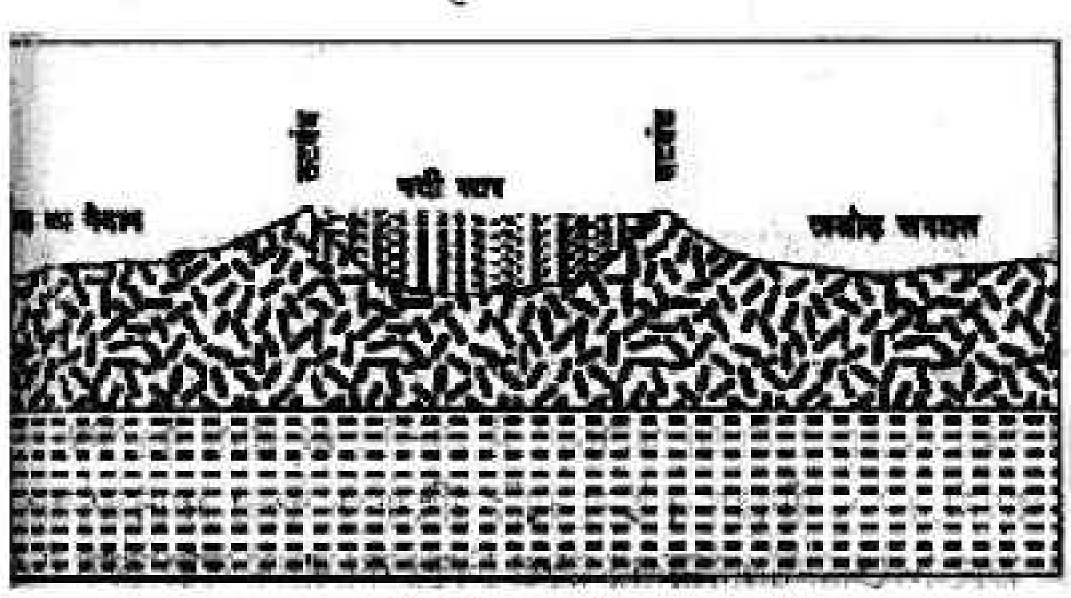

बाढ़ के मैदान और तट बंध

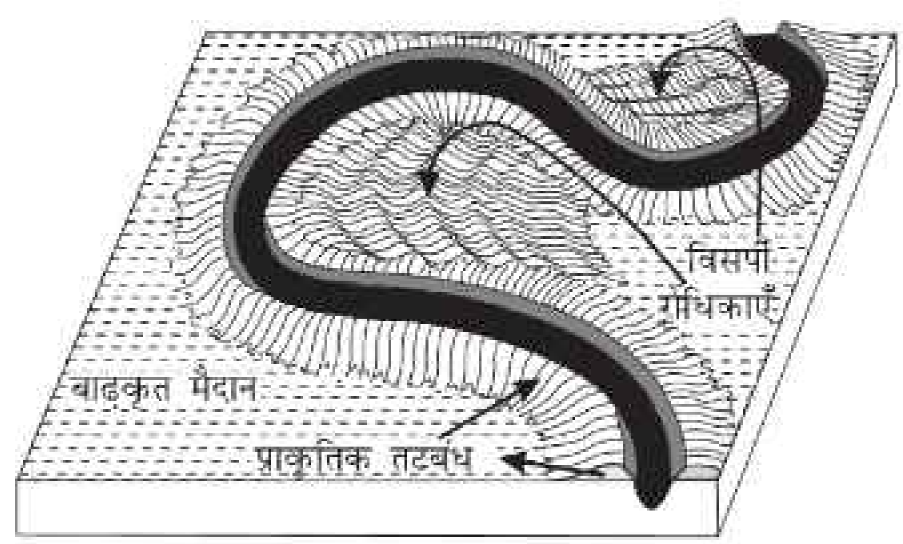

प्राकृतिक तटबंध एवं विसर्पी रोधिकाओं का चित्रण

- चूंकि मंद ढ़ाल के कारण वर्षा का ज्यादा पानी इस मैदानी भाग में फैल जाता है, पानी में आने वाला मलवा जमा होकर बाढ़ का मैदान बनाता है।
- इस तरह बार-बार बाढ़ आने से बाढ़ के मैदान का विस्तार होते जाता है।

प्राकृतिक तटबंध (Natural Levees)

- प्राकृतिक तटबंध मुख्य नदी के किनारे पाया जाता है। जब बाढ़ का पानी मुख्य नदी से दोनों ओर विस्तारित होता है तो बहते पानी का उपलब्ध गाद जमा होकर नदी के किनारे को ऊँचा कर देता है जिसे प्राकृतिक तटबंध कहा जाता है।

गुम्फित नदी (Braided channels)

- जब नदी जल में गाद की मात्रा पर्वतीय क्षेत्र से ज्यादा आता है या मार्ग में ज्यादा भार प्राप्त हो जाता है तो बहता हुआ जल सभी भार को आगे नहीं ले जाता पाता है। अत: नदी भार उसके मार्ग में ही जमा होने लगता है।

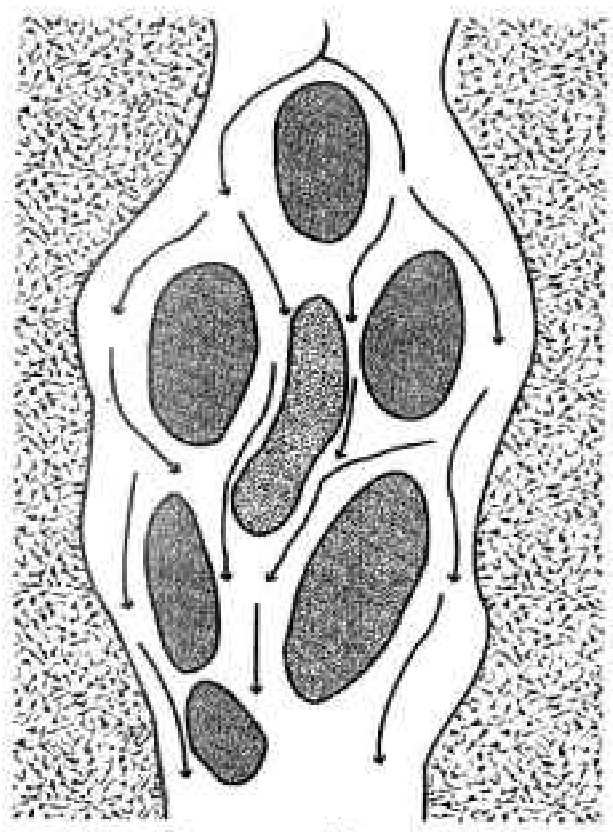

गुंफित नदी

- नदी भार के जमा होने के कारण अनेकों लंबी एवं टूटी-फूटी रोधिका बन जाती है। इससे नदी का जल विभिन्न मार्गों से होते हुए बहता है।
- जब नदी उफान पर होती है तो ये रोधिकाएँ जल के अंदर चली जाती है परन्तु जल की कमी होने पर अनेको द्वीप दिखाई देने लगते है।
- नदी जल का बार-बार विभिन्न शाखाओं में बँटना एवं मिलना गुम्फित नदी कहलाती है।

डेल्टा (Delta)

- नदी के मुहाने तक पहुँचते-पहुँचते ढ़ाल बिल्कुल ही मंद हो जाता है।
- जल की मात्रा ज्यादा हो जाता है। जल लगभग स्थिर हो जाता है।
- जल द्वारा लाया जाने वाला मलवा पूरी तरह से जमा हो जाता है।
- इसका आकार त्रिभुजाकार होता है, और समुद्र की ओर इसका विस्तार होते रहता है। इसे ही डेल्टा कहा जाता है।

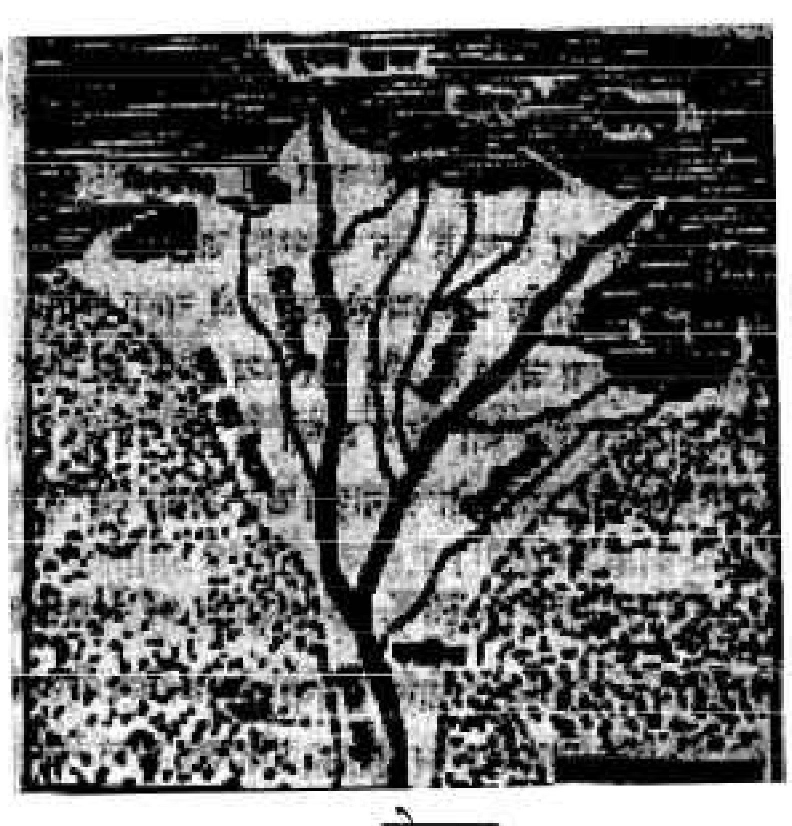

डेल्टा

भौम जल (Ground Water)

- जिन चट्टानों में चूना-पत्थर या डोलोमाइट होता है उनपर जल, ऑक्सीजन एवं कॉर्बनडाइ ऑक्साइट के सम्पर्क में आने पर रासायनिक प्रतिक्रिया होने लगती है और चट्टानों का क्षय होने लगता है।
- जिन प्रदेशो में इस प्रकार का क्षयन होता है उन्हें कार्स्ट स्थलाकृति (Karst topography) कहा जाता है।
- चट्टानों के क्षय से विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ विकसित होती है। उन्हें दो वर्गों-अपरदनात्मक तथा निक्षेपणात्मक में रखा जाता है।

अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ (Erosional Landforms)

- चूना-पत्थर या डोलोमाइट पाये जाने वाले क्षेत्रों में जल के साथ संपर्क होने से रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण सतह पर छोटे-छोटे घोल रंध्र (Sink holes) बन जाते है। इनकी संख्या अधिक होती है। ये कीप की आकृति के होते है। इनका आकार कुछ वर्ग मीटर से हेक्टेयर तथा गहराई आधा मीटर से 30 मीटर तक होता है।

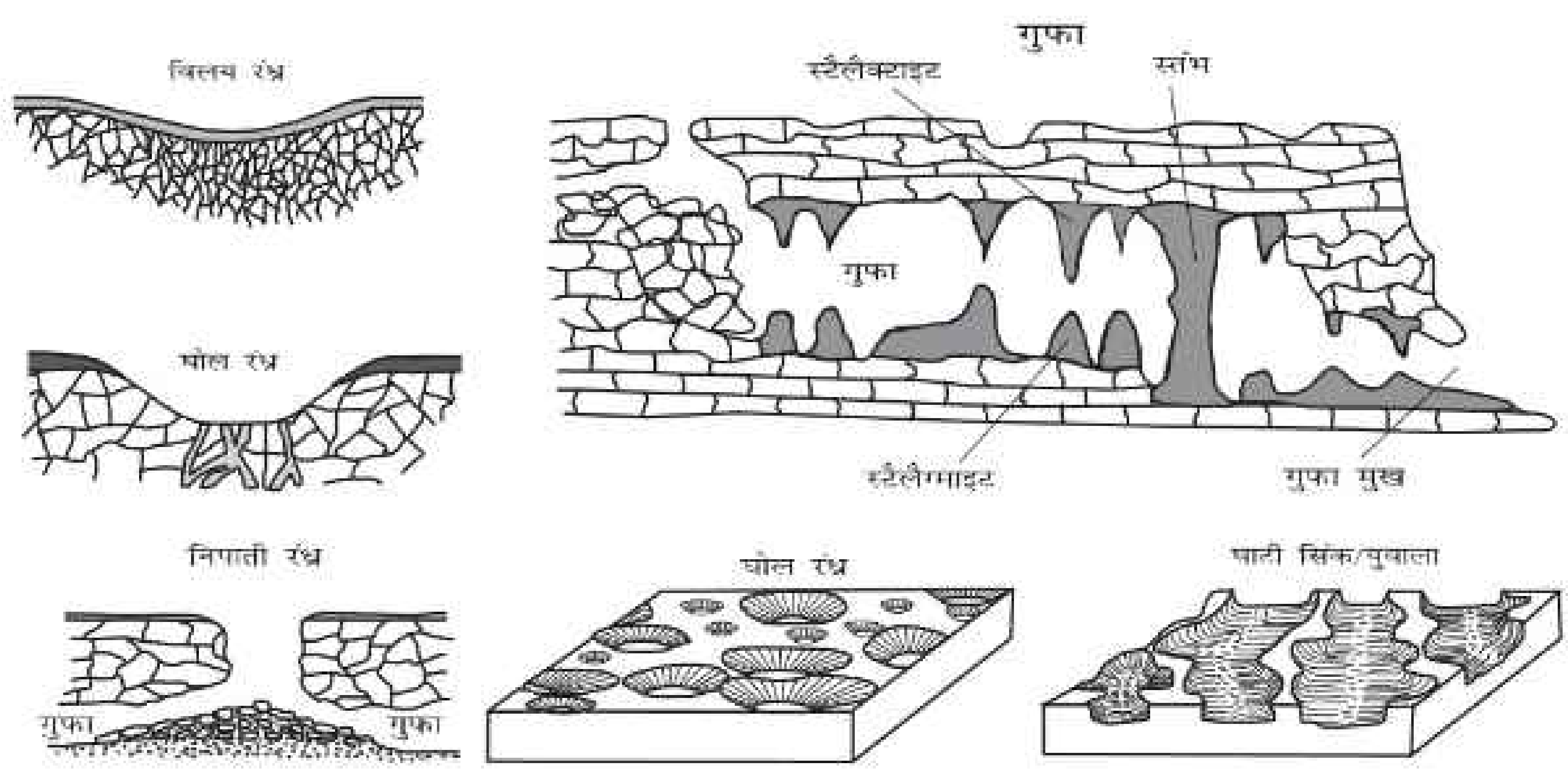

कार्स्ट स्थलाकृति के विभिन्न रूपों का परिच्छेद चित्रण

- कई घोल रंध्रों के विलयन या जुड़ जाने से विलय रंध्र (Swallow holes) बन जाता है। इनका आकार इतना बड़ा होता है कि सतह का थोड़ा बहुत प्रवाहित जल इसमें लुप्त हो जाता है।
- कई विलय रंध्रों के मिलने से डोलाइन (Dolines) का निर्माण होता है। इसमें सतह की प्रवाहित छोटी नदी का जल समा जाता है। यह जल कुछ दूर बहने के बाद फिर सतह पर आ जाता है।
- जब कई विलय रंध्रों एवं घोल रंध्रों के मिलने से ऊपर का छत ध्वस्त हो जाता है तो घाटी रंध्र (Valley sinks) या युवाला (Uvalas) कहते है।

निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ (Depositional Landforms)

- जहाँ सघन चूना-पत्थर की चट्टानें होती हैं वहाँ कंदराओं का निर्माण हो जाता है जिससे पानी का निकास होता है। गली हुई चट्टानें बहते पानी से परिवहित हो जाती है।

- कंदराओं की छतों से रिसते जल में घुली चूने की चट्टान का कुछ भाग ठोस होकर चीने की ओर लटकने लगता है। समय के साथ इसकी लम्बाई बढ़ती जाती है। इसे स्टेलेक्टाइट (Stalactite) कहते है।
- स्टेलेक्टाइट के ठीक नीचे कंदरा की सतह पर ऊपर की ओर उठती आकृति बनती जाती है। इसे स्टेलेग्माइट (Stalagmite) करते है।
- जब दोनों स्टेलेक्टाइट और स्टेलेग्माइट एक साथ जुड़ जाते है तो उसे स्तम्भ (Pillar) कहते है।

हिमनद (Glacier)

- हिमनद से अभिप्राय है हिम की नदी। इसमें हिम का सरकाव बहुत ही मंद गति अर्थात् कुछ से.मी. ही प्रतिदिन होता है परन्तु इसमें प्रबल अपरदन क्षमता होती है।
- हिमनद द्वारा बने एवं विकसित स्थलाकृतियों अधिकांश पर्वतीय हिमानी वाले क्षेत्रों में ही मिलती है।
- हिमनद दो प्रकार के होते है, महाद्वीपीय तथा पर्वतीय जहाँ तापमान 0°C से कम होता है।
- हिमनद द्वारा बनने वाली आकृतियों को भी दो वर्गों में रखा जाता है।

अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ (Erosional Landforms)

- पर्वतीय हिम क्षेत्र के चोटियों से सरकती हिमानी ऊपरी भागों में अपने तलहटी पर अपरदन के कारण लम्बे गहरे गर्त बनाती है जिसे सर्क (cirque) कहा जाता है। यह आराम कुर्सी की तरह का होता है।

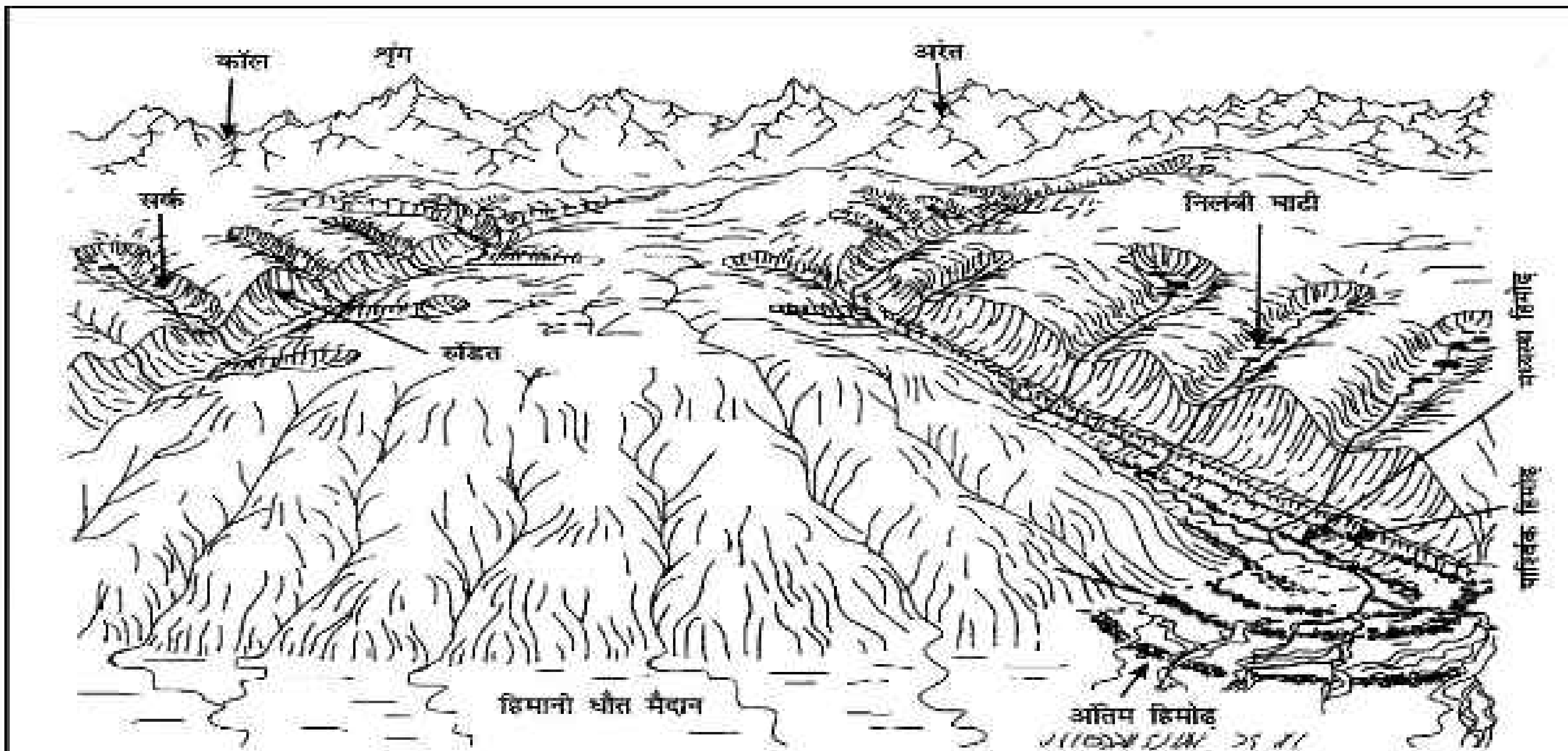

हिमनद द्वारा अपरदन एवं निक्षेपण के विभिन्न रूप (स्पेन्सर, 1962 से संकलित एवं संशोधित)

- जब हिमानी पिघल जाती है तो इस सर्क में जल इक्ट्ठा हो जाता है जिसे टार्न झील (Tarn Lake) कहा जाता है।
- जब एक ही पर्वत शिखर के तीन या उससे ज्यादा ओर से सर्क का निर्माण होता है और वह सर्क अपने शीर्ष की ओर अग्रसर होता है तो दो सर्कों के किनारे एक दूसरे से मिलकर कंधीनुमा या आरीनुमा किनारों का निर्माण करते है। उसे अरेत (Arets) कहा जाता है।

- सर्क के पीछे हटने के कारण चोटी का शीर्ष भाग नुकीला होकर हॉर्न या गिरिश्रृंग (Horn) बन जाता है।
- मुख्य हिमनद में ज्यादा हिम के सरकाव से अधिक एवं गहरा अपरदन होता और गहरी-U आकार की घाटी का निर्माण होता है।
- सहायक हिमनद में कम मात्रा में हिम के होने से कम अपरदन एवं कम गहरी घाटी बनती है। जब हिमानी पिघल जाती है तो मुख्य हिमनद की घाटी (U आकार) पर सहायक हिमनद की घाटी लटकती सी दिखती है जिसे लटकती घाटी (Hanging Valley) कहते है।

निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ (Depositional Landforms)

- हिमानी के साथ सरकते हुए छोटे-बड़े शिलाखण्ड आगे बढ़ते है। जहाँ हिम कम होने लगता है या हिम पिघलने लगता है तो मलवों का निक्षेपण होने लगता है जिससे प्रमुखत: हिमोढ़ का निर्माण होता है। हिमोढ़ (Moraine) चार प्रकार के होते है।

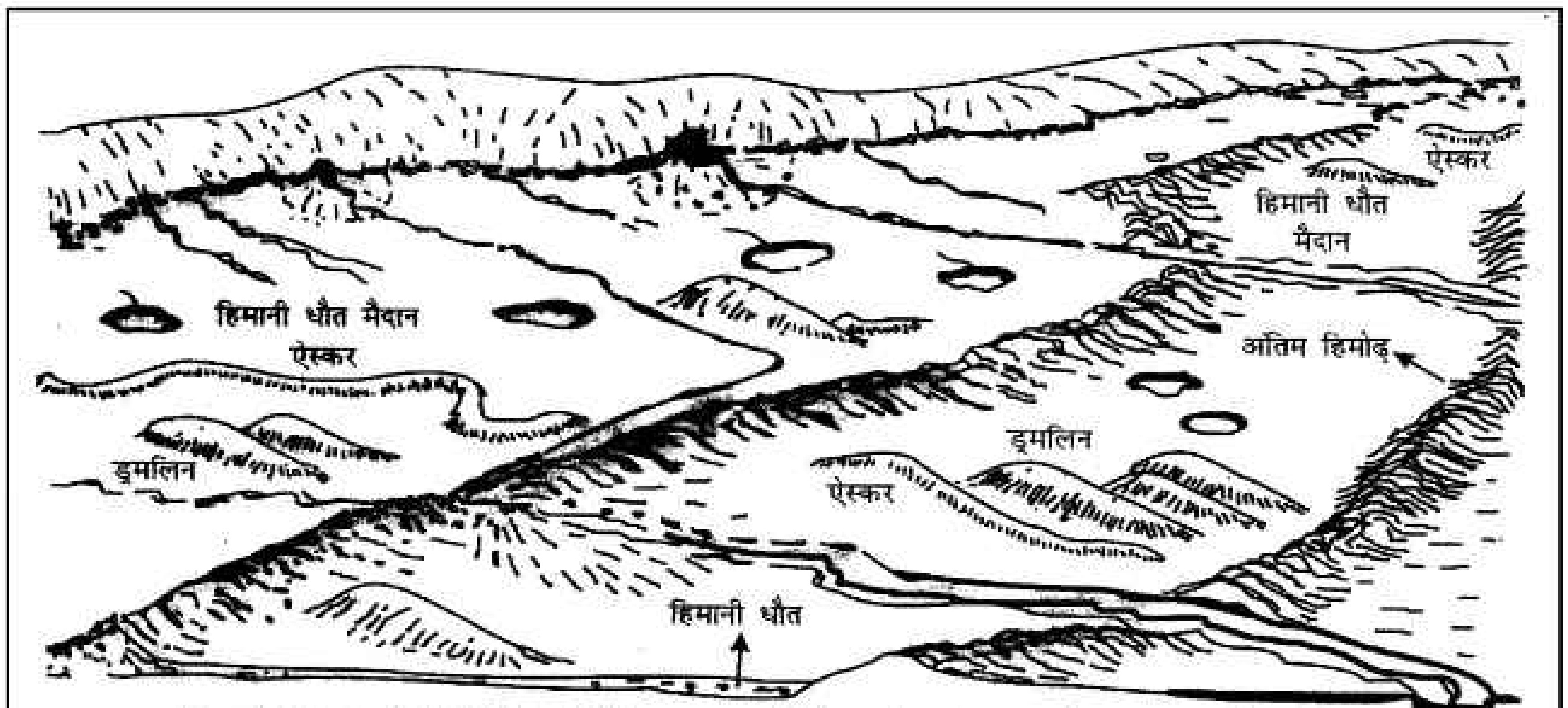

हिमनदीय स्थलाकृति के विभिन्न निक्षेपित भू-आकृतियों का सुंदर चित्रण (स्पेन्सर, 1962 से संकलित एवं संशोधित)

- हिमानी के अग्रभाग पर निक्षेपण अंतस्थ हिमोढ़ (Terminal Moraine) कहलाता है क्योंकि उसके आगे हिमानी का भाग/क्षेत्र खत्म हो जाता है।
- हिमानी के दोनों किनारों पर निक्षेपित मलवा को पार्श्विक (Lateral) हिमाढ़ कहते है।
- दो हिमानियों के मिलने से मिलने वाले पार्श्व हिमोढ़ आगे बढ़ते हुए मध्यवर्ती (Medial) हिमोढ़ बनाते है।
- हिमानी के पिघलने से उसके तली में निक्षेपित मलवों को धरातलीय (Ground) हिमोढ़ कहते है।
- हिमानी के अग्रभाग के नीचे हिम से पिघला जल आगे बहते हुए जाता है और हिमानी से प्राप्त तलछट को जमा करते हुए आगे बढ़ता है। इस तरह एक लम्बे कटकनुमा आकृति का निर्माण होता है जिसे एस्कर (Esker) कहते है।

- हिमानी के पिघलने के कारण ढोए जाने वाले मलवा के निक्षेप से हिमानी धौत मैदान (Outwash plains) की रचना होती है जिसमें बजरी, रेत एवं मृतिका होते है।

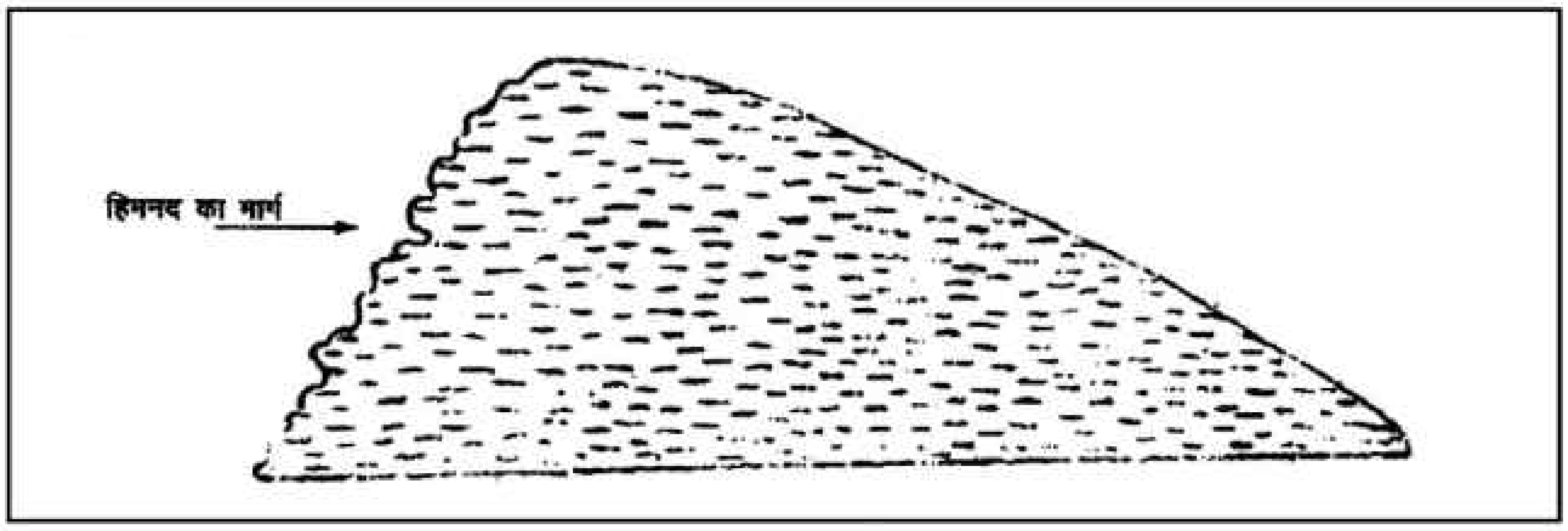

ड्रमलिन

- हिमनद द्वारा लाए गये मृतिका के अण्डाकार कटकनुमा आकृति में निक्षेप को ड्रमलिन (Drumlins) कहते है। इसमें सामान्यतया रेत एवं बजरी भी होती है।

समुद्री तरंगे (Oceanic Waves)

- महासागरीय जल समुद्री तटों पर बराबर टकराता है। ज्वार-भाटा भी आता है। इससे समुद्र तटों पर अपरदन एवं निक्षेप की क्रिया होते रहती है। इस क्रिया से विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण होता है। स्थलाकृतियों का निर्माण कई कारकों पर निर्भर करता है।
- समुद्री किनारों पर अपरदन के कारण दीवार की सी खड़ी आकृति बनती है तो उसे भृगु (Cliff) कहा जाता है। भृगु के आधार पर अपरदन बढ़ते जाता है। समय के साथ ऊपर वाला भाग टूट कर गिर जाता है। इस तरह भृगु भी पीछे की ओर सरकता है।
- भृगु के आधार पर अपरदन के कारण रिक्त स्थान बन जाता है। इस खोखले भाग को समुद्री कंदराएँ (Sea Caves) कहते है।
- समद्री कंदरा किसी भू-भाग के आर-पार बन जाती है तो छत वाले भाग को प्राकृतिक मेहराब (Natural Bridge) कहते है।

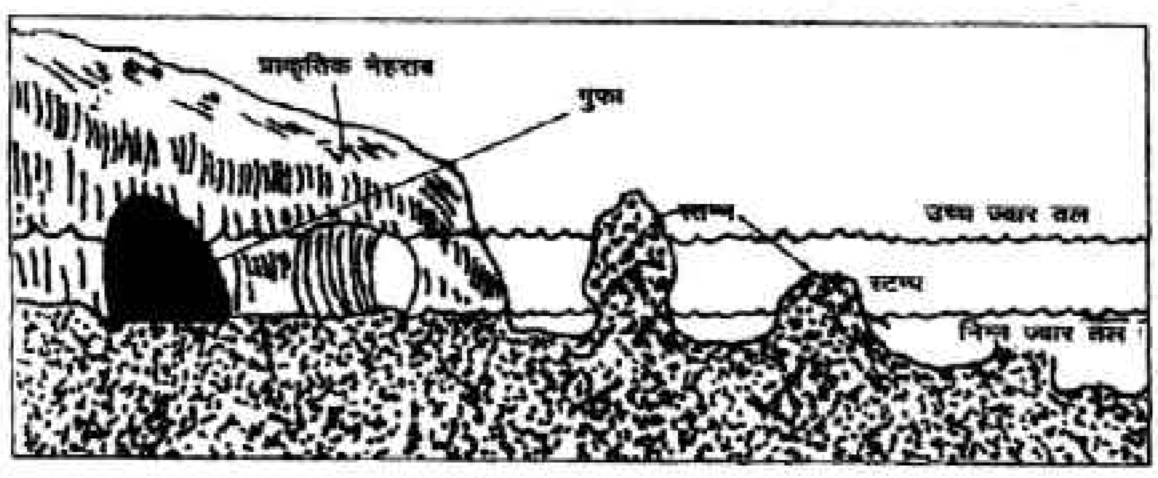

तरंगों के अपरदन द्वारा बनी स्थलाकृतियाँ

- प्राकृतिक मेहराब की छत ध्वस्त हो जाय तो समुद्री भाग की ओर का ऊँचा हिस्सा स्टेक या स्तम्भ (Stacks) कहलाता है।
- समुद्री किनारे पर रेत या बजरी का निक्षेप हो जाता है तो इसे रेत पुलिन (Sand Beaches) का विकास होता है।

- रेत पुलिन का रेत समुद्री तरंगों द्वारा अंदर की ओर बहा लिया जाता है। नीचे पथरीला आधार तक दिखाई देता है जिसे चट्टानी पुलिन (Rocky Beaches) कहते है।
- जब समुद्री तरंगे अवसाद को तट के साथ-साथ समानान्तर जमाकर देती है तो उसे रोधिका (Bars) कहते है।
- जब रोधिका की ऊँचाई इतनी हो जाती है कि समुद्र जल के ऊपर दिखाई देने लगे तो उसे रोध रोधिका (Barrier bars) कहते है।
- रोध रोधिका समुद्री किनारों से मिल जाए एवं एक पतले मार्ग से समुद्र से जुड़े रहे तो उसे लैगून (Lagoon) के नाम से जानते है।

पवने (Winds)

- पवनों का ज्यादा प्रभाव उष्ण मरूस्थलों से मिलता है। उष्ण मरूस्थलों में दैनिक तापांतर ज्यादा होने के कारण शैलों का भौतिक अपक्षय होता है। इससे शैले सुक्ष्म कणों में बदल जाती है जिसे पवने उड़ा ले जाती है। इससे अपरदन एवं निक्षेप दोनों प्रक्रियाएँ होती है। इससे विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ बनती है।
- उष्ण मरूस्थलीय भाग मे गिरीपाद क्षेत्रों पर मलवे के निक्षेपण से पेडीमेंट (Pediment) का विकास होता है। अपरदन एवं अपक्षय द्वारा पर्वतीय ढ़ाल कटता जाता है और पेडीमेंट का विस्तार होता जाता है।
- जब पर्वत कट जाता है तो वहाँ ऊँचे टिलेनुमाँ आकृतियो का भी विकास हो जाता है जिसे इंसेलबर्ग (Inselberg) कहते है।

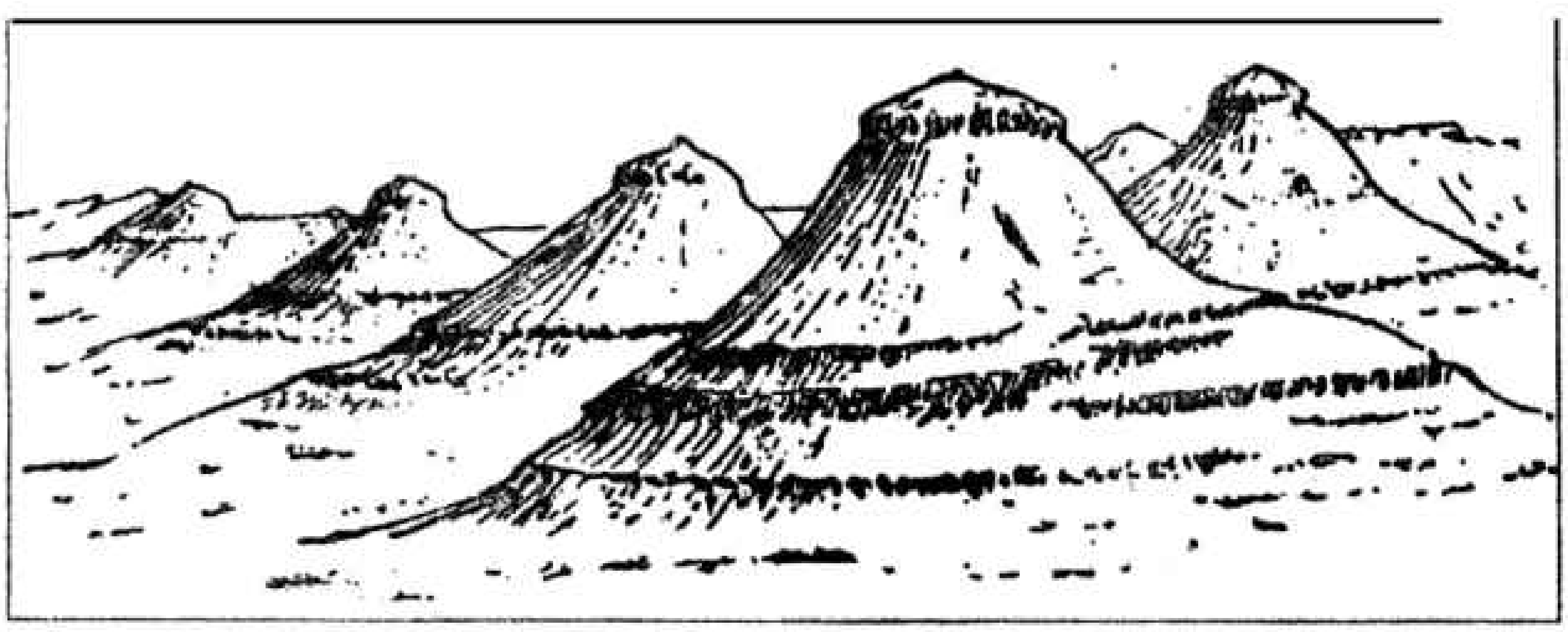

अपरदित इन्सेलबर्ग

- जब पवन प्रभावित मरूस्थलीय भागों में एक तरह से आकृतिविहीन चौरस मैदान का निर्माण होता हैं तो उसे पेडीप्लेन/पदस्थली (Pediplain) कहते है।
- चौरस एवं गड्ढेनुमा आकृति में वर्षा का जल जमा हो जाता है। इस तरह झील का निर्माण हो जाता है। झील का पानी ज्यादा गर्मी के कारण सूख जाता है और नमकीन लवणों का निक्षेप बच जाता है। इसे ही पलाया (Playa) कहते है।

- जब पवनों का मार्ग एक ही दिशा से होता है तो अपक्षय जनित असंगठित पदार्थ उड़ा लिए जाते है जिससे अपवाह गर्त (Deflation hollow) कहते है।

- तीव्र वेग से बहते पवन के साथ उड़ने वाले धूल कणों से सतही चट्टान पर अपघर्षण करके गहरा गड्ढानुमा आकृति बनाते है जिसे वात गर्त (Blowouts) कहते है।

- तीव्र पवनों में ज्यादा धूलकण की मात्रा निचले भागों में ही होती है अत: ज्यादा अपघर्षण नीचे होता है और ऊपरी भाग चौरस तथा बड़ा-सा होता है। इस तरह की आकृति को छत्रक शैल (Mushroom rock) कहते है।

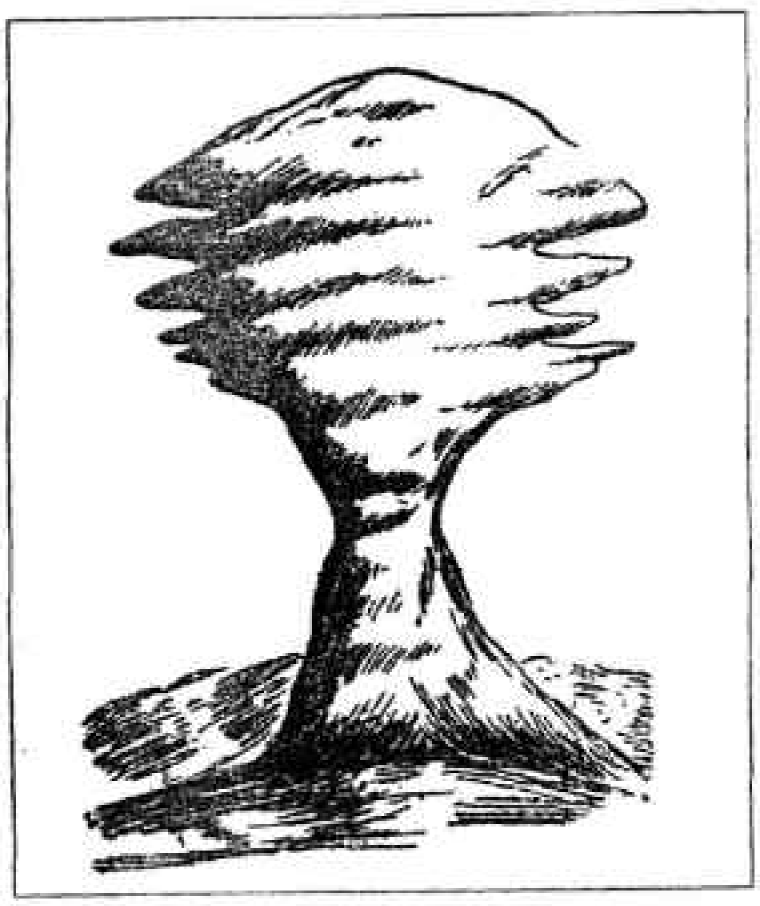

छत्रक शैल।

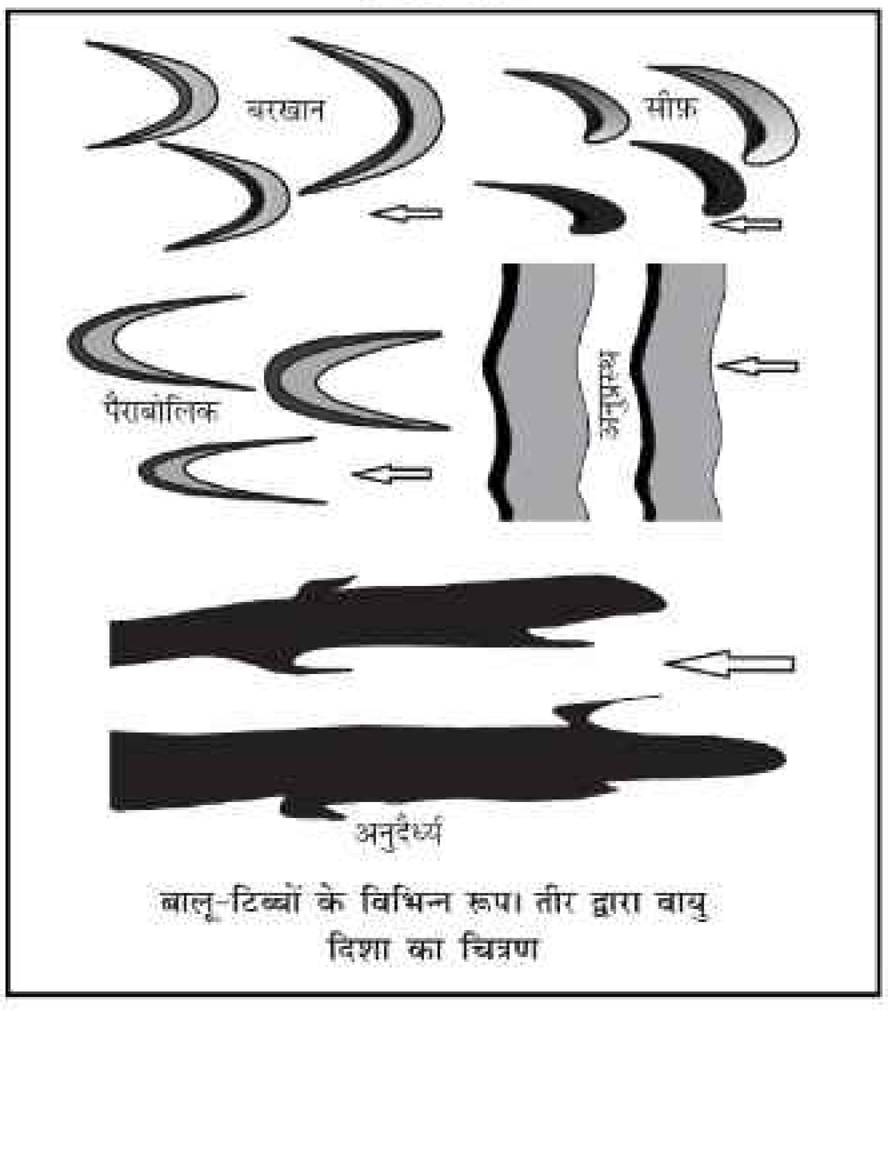

बालू-टिब्बों के विभिन्न रूप। तीर द्वारा वायु दिशा का चित्रण

- पवनों द्वारा धूल कणों को ढ़ोने की क्षमता पवनों के वेग एवं धूलकणों के आकार पर निर्भर करता है। सूक्ष्म कण ज्यादा ऊचाई तथा ज्यादा दूर तक ले जाए जा सकते है जबकि बड़े कण निम्न ऊँचाई एवं कम दूरी तय हो जा पाते है।

- पवनों की दिशा में अवरोध होने के कारण वहन क्षमता घटती है एवं निक्षेप होने लगता है। नव-चन्द्राकार टिब्बे जिनकी भुजाएँ पवनों की दिशा में निकली होती है, बरखान (Barkhans/Barchans) कहते है।

- जब छोटी झाडियाँ अवरोध के रूप में होती है तो परवलीय (Parabolic) बालू के टिब्बों का विकास होता है जो देखने में बरखान के ठीक विपरीत होते है।

- सीफ़ (Seif) बरखान की ही भाँति होते है पर इसमें एक ही भुजा होती है क्योंकि इसमें पवनों की दिशा में बदलाव होते रहता है।

- जब रेत की आपूर्ति कम, पवनों की दिशा एक जैसी हो तो अनुदैर्ध्य टिब्बे (Longitudinal dunes) विकसित होते है। ये ज्यादा लम्बे तथा कम ऊँचे होते है।

- अनुप्रस्थ टिब्बे (Transverse dunes) प्रचलित पवनों की दिशा के समकोण पर बनते है।

- सूक्ष्म आकार के धूलकणों का निक्षेप काफी दूरस्थ स्थान पर हो जाता है तो उसे लोयस (Loess) कहते है।

1. **परियोजना कार्य** – नीचे दिए शीर्षक के अनुसार तालिका में स्थालाकृतियों के नाम लिए

नदी	अपरदन	परिवहन	निक्षेपण
पवन			
हिमानी			
तरगें			

2. विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियों के माड्ल को दिखाऐं और बनवाइए।

इकाई – II : जलवायु एवं जलमण्डल

अध्याय – 1 : सौर विकिरण और तापमान

अध्याय – 2 : वायुमण्डलीय परिसंचरण एवं मौसम प्रणालियाँ

अध्याय – 3 : आर्द्रता एवं वर्षण

अध्याय – 4 : जलवायु परिवर्तन

अध्याय – 5 : महासागरीय जल : अध : स्थल

अध्याय – 6 : महासागरीय जल संचलन

अध्याय - 1

सौर विकिरण एवं तापमान

पृथ्वी पर प्राप्त सौर ऊर्जा ही पृथ्वी पर समस्त प्रकार के जीवन का आधार है। समस्त जलवायविक घटनायें जैसे तापमान, पवनों का चलना, समुद्री धाराओं का संचलन आदि घटनायें सौर ऊर्जा के कारण ही होती है। सौर विकिरण के रूप में प्राप्त सूर्यातप धरातल एवं वायुमंडल को गर्म करता है। फलस्वरूप वायुदाब प्रवणता में अन्तर आता है और पवनें उच्च वायु दाब से निम्न वायु दाब की ओर चलती है। इसी तरह सूर्यातप के कारण वाष्पीकरण होता है और जलचक्र सम्भव हो पाता है।

सूर्यातप : सूर्य से विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में ऊर्जा का विकिरण होता रहता है जो 300,000 कि.मी. प्रति सैंकेंड की गति से चलती है। पृथ्वी की सतह पर प्राप्त यही ऊर्जा सौरतप या सौर विकिरण कहलाती है।

- अधिकांश सौर ऊर्जा पृथ्वी पर लघु तरंगों के रूप में आती है।
- सौर विकिरण के तीन अंग है –

  i. दृश्य प्रकाश जो हम देखते है

  ii. पराबैंगनी किरणे और

  iii. इन्फ्रारेड किरणे
- पराबैंगनी किरणें यदि धरातल तक आ जाती है तो हमारे लिए विभिन्न प्रकार से हानिकारक होती है।
- Reflected Infrared Rays का प्रयोग Remote Sensing में होता है।
- वायुमंडल की ऊपर सतह पर 1.94 कैलोरी प्रति वर्ग से.मी. प्रति मिनट ऊर्जा प्राप्त होती है। इसका लगभग

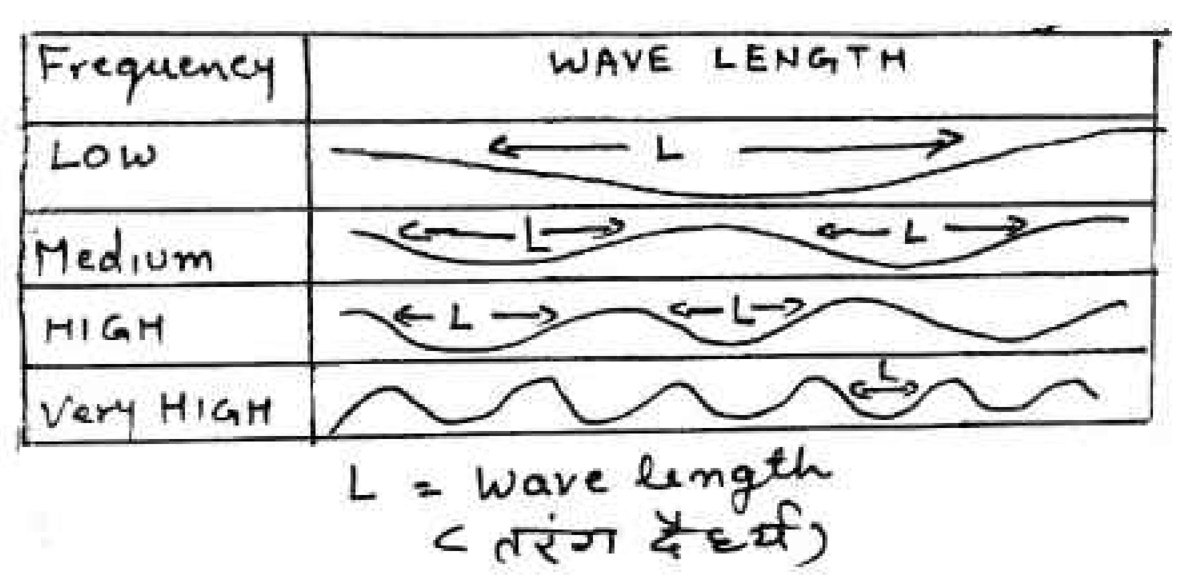

आधा भाग ही धरातल पर पहुँचता है।

- सूर्य के चारो ओर परिक्रमण के दौरान पृथ्वी लगभग 4 जुलाई को सूर्य से सबसे दूर तथा 3 जनवरी को सूर्य के सबसे पास होती है। इसे क्रमशः उपसौर तथा अपसौर कहते है।

सूर्यातप में भिन्नता के कारण

- धरातल पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं प्राप्त होती है।
- यह विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर कम होती जाती है।

- सूर्यातप प्राप्त करने की मात्रा मौसमी दशाओं से भी प्रभावित होती है।

सूर्यातप में भिन्नता के कारक

- पृथ्वी का अपनी कक्षा पर घूमना (परिक्रमण)
- सूर्य की किरणों का नति कोण – सूर्य की किरणों का नति कोण अक्षांशों पर निर्भर करता है। अक्षांश जितना उच्च होगा, नति कोण उतना ही कम होगा अर्थात् किरणें उतनी ही तिरछी होगी।
- सूर्य की तिरछी किरणों से कम सूर्यातप एवं लम्बवत् किरणों से अधिक सूर्यातप प्राप्त होता है।
- तिरछी किरणे वायुमंडल में अधिक दूरी तय करती है अत: वायुमंडल में परावर्तन, अवशोषण, प्रकीर्णन आदि से सूर्यातप में कमी आ जाती है।

(C) लंबवत किरणें धरातल के कम क्षेत्र पर पड़ती है जबकि तिरछी किरणें अधिक क्षेत्रफल पर फैल जाती है।

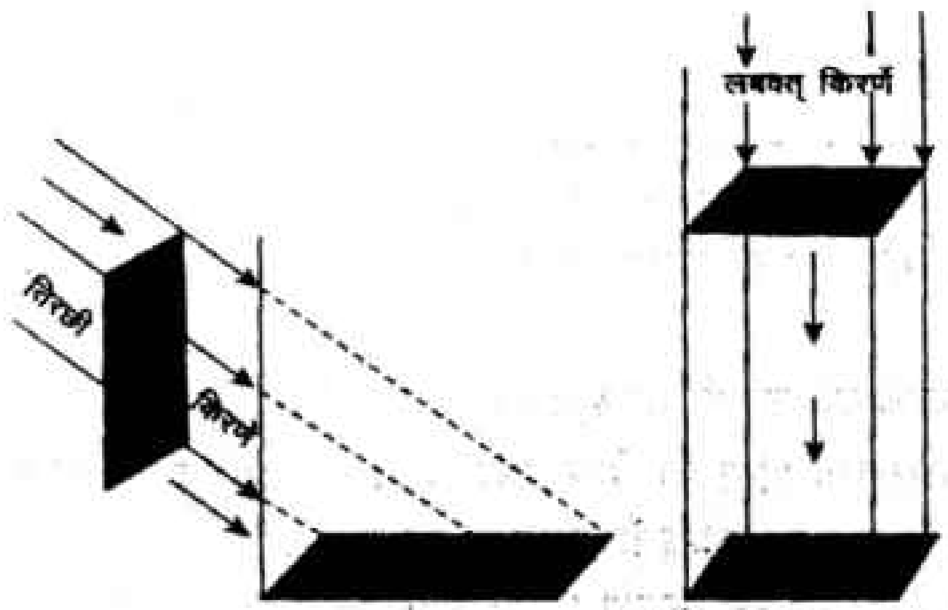

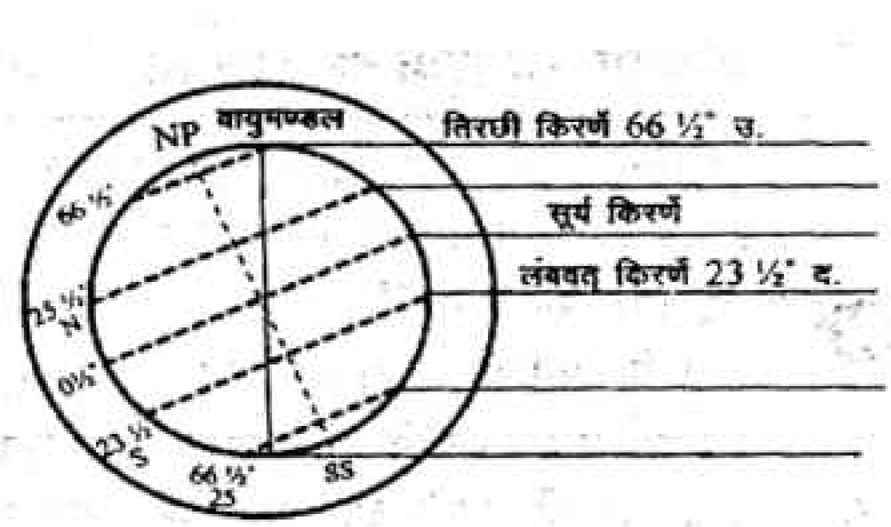

सूर्यातप की मात्रा पर किरणो के नति कोण का प्रभाव

- **दिन की अवधि :** पृथ्वी अपने कक्ष तल से झुकी है 66° 30' पर यह अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है। अत: पृथ्वी पर दिन की अवधि सर्वत्र समान नहीं है। विषुवत वृत्त से उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की ओर दिन की अवधि घटती बढ़ती रहती है जब कि विषुवत वृत्त पर वर्ष भर 12 घंटे का दिन होता है। अत: वहाँ सूर्यातप सबसे अधिक प्राप्त होता है।
- **वायुमंडल की पारदर्शिता :** धरातल पर पहुँचने से पहले सौर किरणे वायुमंडल से होकर गुजरती है। निचले मंडल यानी क्षोभमंडल में मौजूद जलवाष्प, धूलकण, धुआं सौर ऊर्जा को या तो अवशोषित कर लेते है या विकिरित कर देते है। अत: वायुमंडल की पारदर्शिता धरातल पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करती है।
- **भूतल के लक्षण :** पर्वतीय भागों में सूर्यातप सूर्योन्मुख ढालों पर विमुख ढालों की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है। जो भाग/ढ़ाल सूर्य के किरणों के सामने पड़ता है उसे सूर्योन्मुख ढाल कहते है।

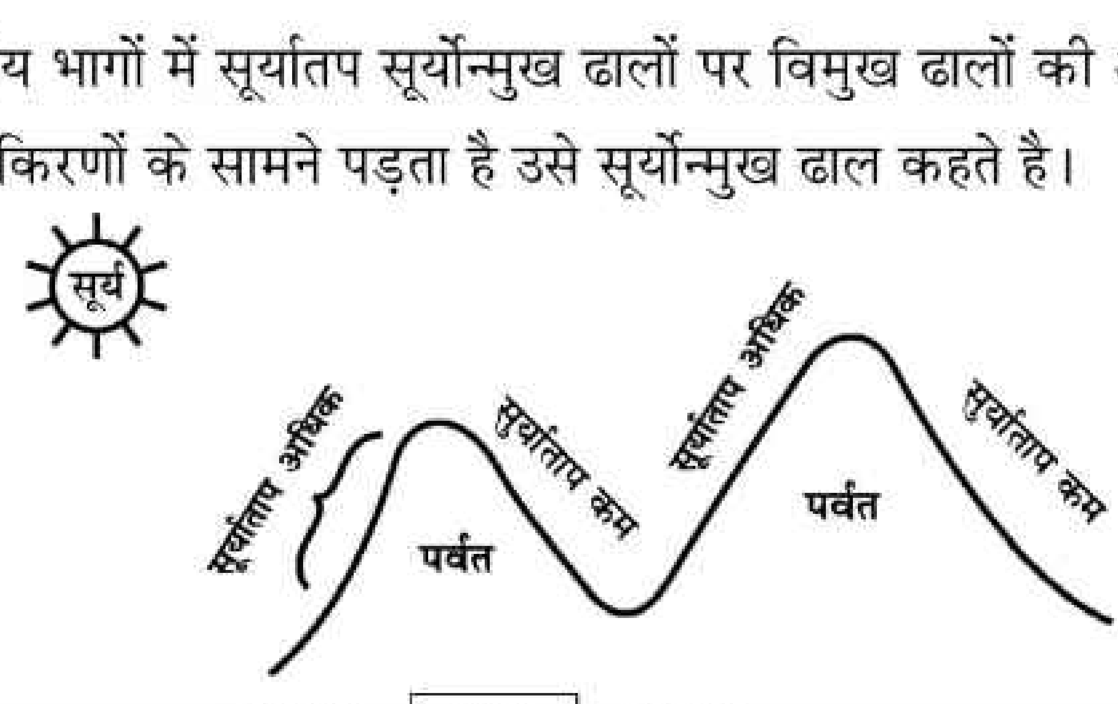

- **सौर कलंक :** सौर कलंकों की संख्या एवं आकार घटते बढ़ते रहते है। 11 वर्ष की चक्रीय अवधि में इन धब्बों की संख्या बदलाव होता है। उस समय सौर विकिरण कम होता है और पृथ्वी पर सूर्यालत अधिक प्राप्त होता है।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट

पार्थिव विकिरण :

- सौर विकिरण लघु तरंगों के रूप में पृथ्वी पर प्राप्त होता है। यह पृथ्वी की सतह को गर्म करता है। यह वायुमंडल को सीधे गर्म नहीं करता है। पृथ्वी का सतह गर्म होने के बाद वह दीर्घ तरंगों के रूप में ऊष्मा का विकिरण करती है इससे वायु मंडल गर्म होता है। यह प्रक्रिया पार्थिव विकिरण कहलाती है।

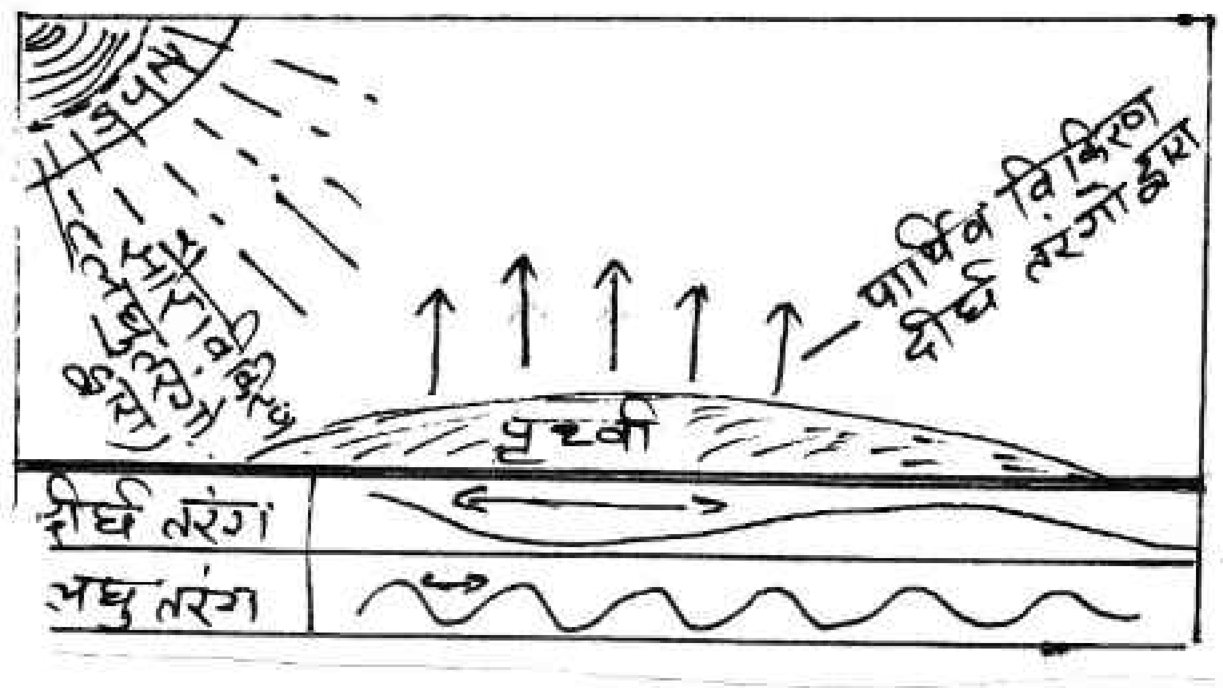

ऊष्मा बजट : पृथ्वी ऊष्मा का न तो संचय करती है और न ही ह्रास करती है। पृथ्वी जितनी ऊष्मा सूर्यातप के रूप में प्राप्त करती है, उसे पार्थिव विकिरण द्वारा अंतरिक्ष में वापस कर देती है। इसी संतुलन को ऊष्मा बजट कहते है।

पृथ्वी का एल्विडो : वायुमंडल की ऊपरी सतह पर प्राप्त सूर्यातप की 100 इकाइयों में 35 इकाईयाँ पृथ्वी के तल पर पहुँचने से पहले ही अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाती है। 27 इकाईयाँ बादलों के ऊपरी छोर से तथा 2 इकाईयाँ हिम क्षेत्रों द्वारा परावर्तित होती है। 6 इकाईयाँ वायुमंडल में प्रकीर्णन द्वारा परावर्तित होती है। सूर्य से प्राप्त ऊष्मा की यह मात्रा पृथ्वी या वायुमंडल को गर्म नहीं करती। सौर विकिरण की इस परावर्तित मात्रा को **पृथ्वी का एल्बिडो** कहते है।

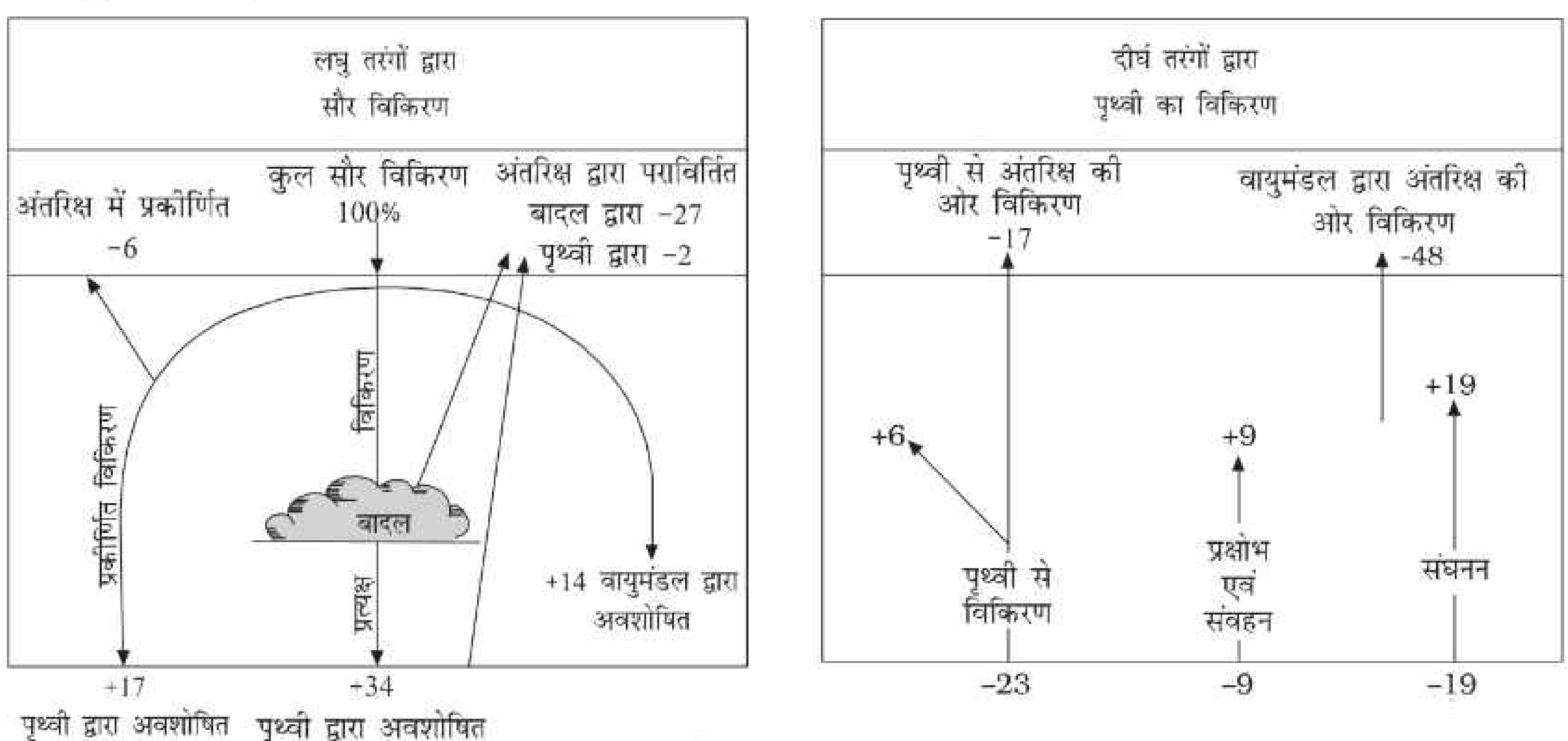

पृथ्वी का ऊष्मा बजट

वायुमंडल की ऊपरी सतह पर प्राप्त सूर्यातप : 100 इकाई

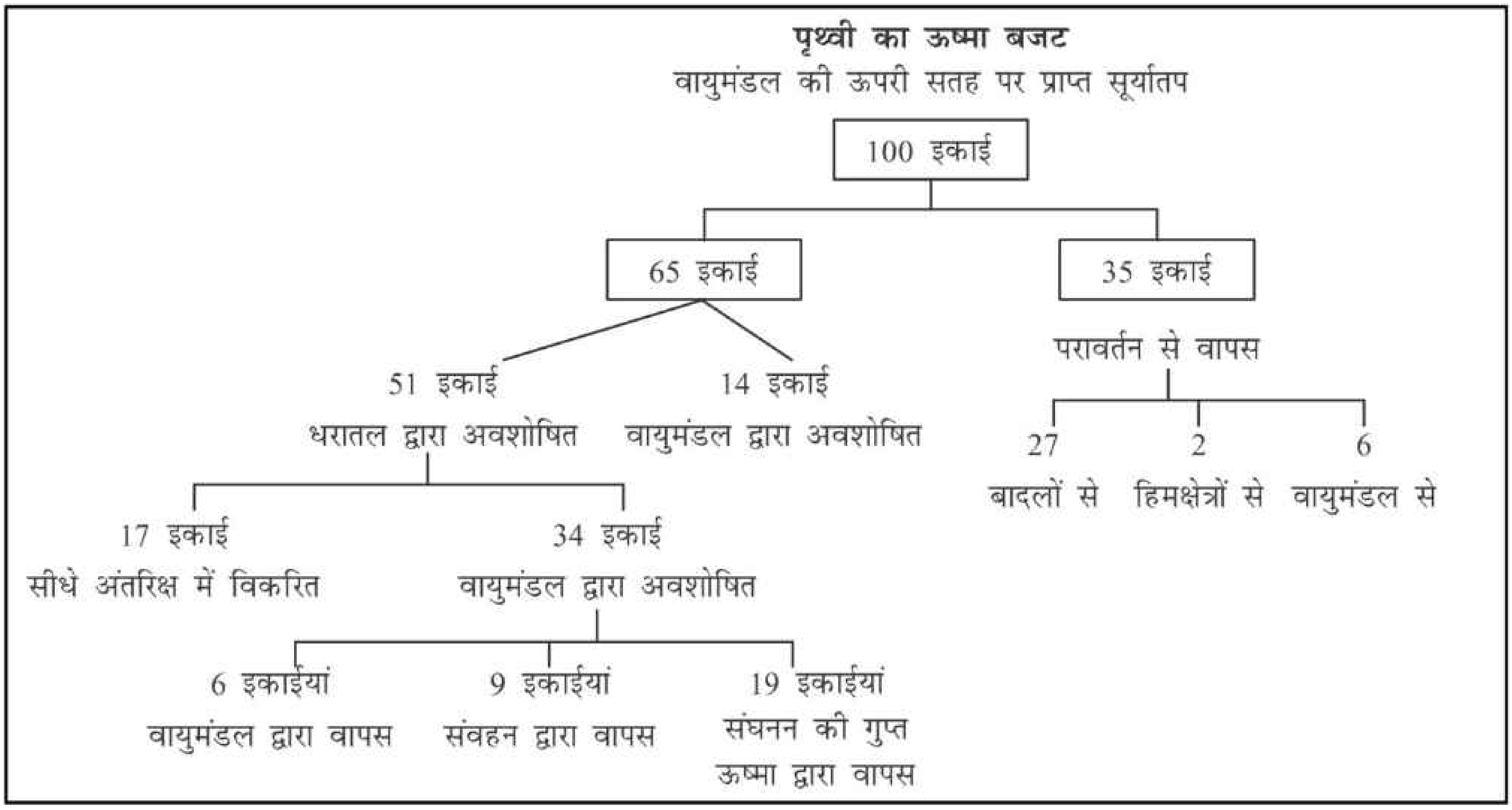

वायु मंडल कुल मिलाकर 48 इकाइयों का अवशोषण करता है ये इकाइयाँ भी अंतरिक्ष में वापस लौटा दी जाती है।

पृथ्वी के धरातल तथा वायुमंडल से अंतरिक्ष में वापस लौटने वाली विकिरण इकाइयों का योग 17 + 48 = 65 है। ये इकाइयाँ उन 65 इकाइयों को संतुलित करती है जो सूर्य से प्राप्त होती है। यही पृथ्वी का ऊष्मा बजट है।

अंक्षाशीय ऊष्मा संतुलन

- पृथ्वी के सभी भागों में ऊष्मा का वितरण समान नहीं है।
- 40° उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों के मध्य सूर्यातप की मात्रा की तुलना में विकिरण की मात्रा कम होती है।
- उच्च अक्षांशों अर्थात 40° से दोनों ध्रुवों के मध्य ऊष्मा कम प्राप्त कम होती है जबकि विकिरण अधिक होती है।
- पवनों एवं समुद्री धाराओं के द्वारा अधिक ऊष्मा वाले क्षेत्रों से कम ऊष्मा वाले क्षेत्रों में ऊष्मा का स्थानान्तरण होता है।

सौर विकिरण उष्मा संतुलन एवं तापमान

0°विषवत वृत्त या भूमध्य वृत	90°	12 घंटा	66½°	12 घंटा	66½°	12 घंटा
23½° S मकर वृत	66½°	12 घंटा	43°	10 घंटा 33 मिनट	90°	13 घंटा 27 मिनट
50°S	40°	12 घंटा	16½°	7 घंटा 42 मिनट	63½°	16 घंटा 18 मिनट
66½° अंटार्कटिक वृत्त	23½°	12 घंटा	0°	0	47°	24 घंटा
90° S दक्षिणी ध्रुव	0°	12 घंटा	0°	0	23½°	24 घंटा

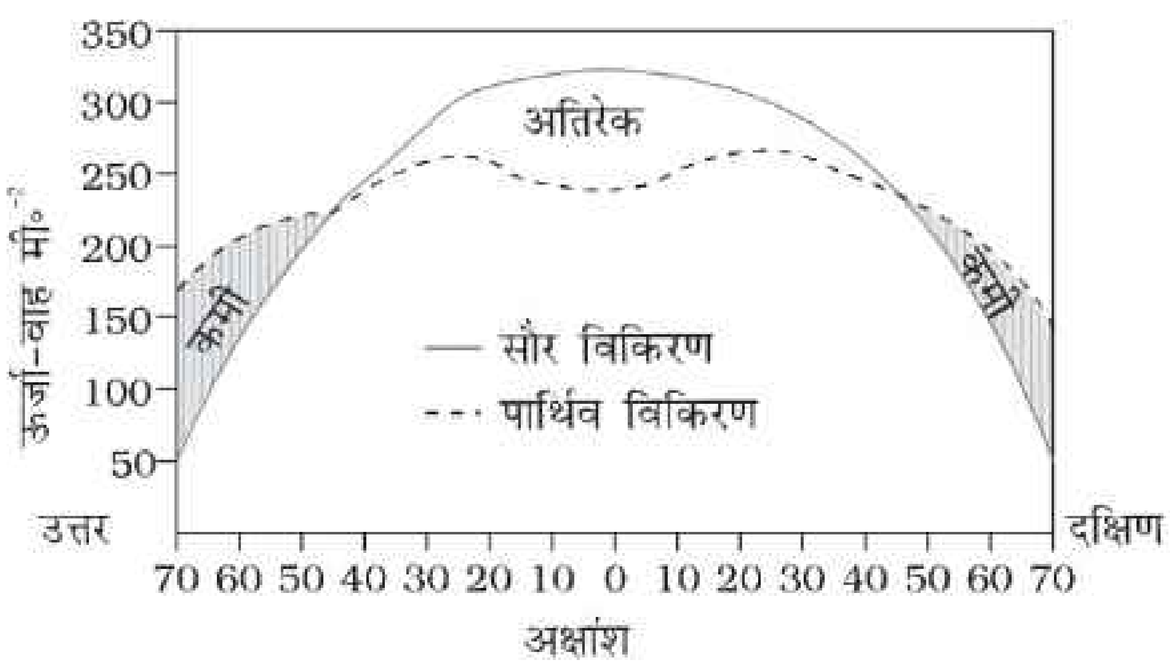

शुद्ध विकिरण संतुलन में अनुदैर्ध्य परिवर्तन

वायुमंडल का तापन

- **प्रत्यक्ष सूर्यातप से :** पृथ्वी पर सौर विकिरण लघु तरंगों के रूप में प्राप्त होता है इससे वायुमंडल प्रत्यक्ष रूप से गर्म नहीं होता है। ये लघु तरंगे सीधे पृथ्वीतल को गर्म करती है और फिर पार्थिव विकिरण से वायु मंडल गर्म होता है। वायुमंडल की कुछ गैसे जैसे CO_2 सौर विकिरण को आने देता है किन्तु पार्थिव विकिरण को रोक लेता है।
- **चालन (Conduction) :** पृथ्वी के संपर्क वाली वायु धीरे-धीरे गर्म होती है। इस गर्म वायु के संपर्क में आने वाली ऊपरी परत भी गर्म हो जाती है। इस प्रक्रिया को चालन कहते है।

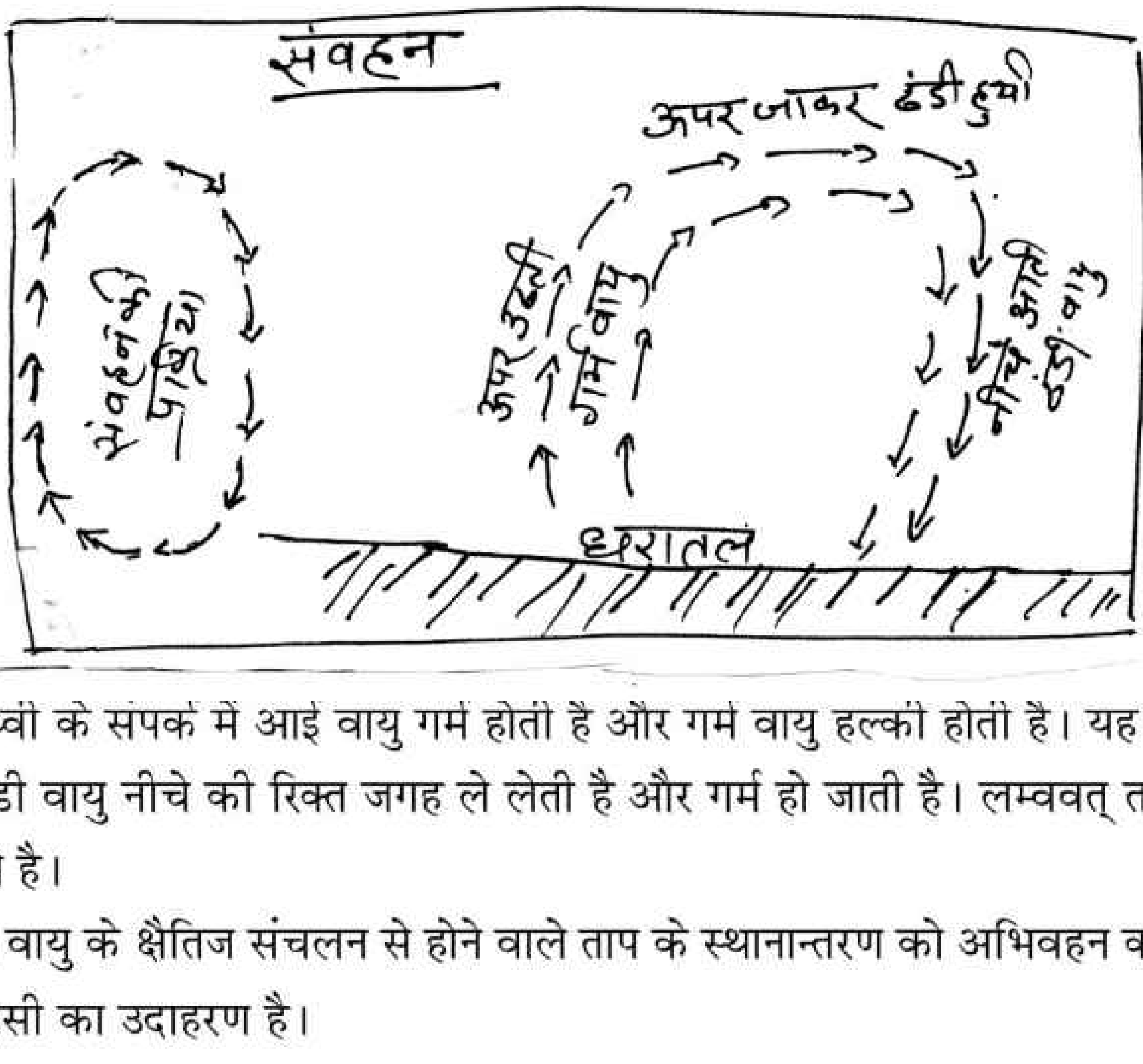

- **संवहन :** पृथ्वी के संपर्क में आई वायु गर्म होती है और गर्म वायु हल्की होती है। यह वायु ऊपर उठ जाती है। ऊपर की ठंडी वायु नीचे की रिक्त जगह ले लेती है और गर्म हो जाती है। लम्ववत् तापन की इस प्रक्रिया को संवहन कहते है।
- **अभिवहन :** वायु के क्षैतिज संचलन से होने वाले ताप के स्थानान्तरण को अभिवहन कहते है। गर्मियों में चलने वाली 'लू' इसी का उदाहरण है।

तापमान के वितरण को नियन्त्रित करने वाले कारक :-

- किसी पदार्थ या स्थान के गर्म या ठंडा होने का डिग्री में माप तापमान कहलाता है। पूरी पृथ्वी पर तापमान का वितरण समान नहीं है। तापमान का वितरण निम्नलिखित कारकों से नियन्त्रित होता है :

(i) अक्षांश (Latitude)/भूमध्य रेखा से दूरी

(ii) समुद्र तल से ऊँचाई (Altitude)

(iii) समुद्र तट से दूरी/महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्रभाव।

(iv) प्रचलित पवनें (Prevailing winds)

(v) समुद्री धाराये (ocean currents)

- **सामान्य ह्रास दर :** समुद्र तल से ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ तापमाान में गिरावट आती जाती है। तापमान कम होने की यह दर सामान्यत: 1000 मीटर पर 6.5° सेल्सियस है। इसे ही सामान्य ह्रास दर (Normal Laps Rate) कहते है।

- **तापमान का व्युत्क्रमण :** ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान का घटना समान्य ह्रास दर कहलाता है लेकिन कभी-कभी यह स्थिति उलट जाती है। इसे तापमान का व्युत्क्रमण कहा जाता है।

- सर्दियों की मेघ रहित लंबी रातों में वायु शांत रहती है। इस समय दिन में प्राप्त ऊष्मा रात के समय विकिरत हो जाती है और सुबह तक भूपृष्ठ के पास का वायुमंडल ऊपर की वायु से अधिक ठंडा हो जाता है। इसे तापमान का व्युत्क्रमण कहते है। ध्रुवीय क्षेत्र में यह स्थिति सामान्य घटना है।

- **समताप रेखाओं का वितरण:** विश्व के तापमान वितरण को समझने के लिये जनवरी और जुलाई को प्रतिनिधि महीने के रूप में लिया जाता है। क्योंकि जनवरी उत्तरी गोलार्द्ध के लिए सबसे सर्द तथा दक्षिणी गोलार्द्ध के लिए सबसे गर्म महीना होता है। ठीक इसके विपरित जुलाई में उत्तरी गोलार्द्ध सबसे गर्म तथा दक्षिणी गोलार्द्ध सबसे सर्द महीना होता है।

- तापमान वितरण को समताप रेखाओं के माध्यम से दर्शाया जाता है। ये रेखायें धरातल पर समान तापमान वाले स्थानों को जोड़ती है।

- समताप रेखायें सामान्यत: अक्षांश रेखाओं का अनुसरण करती है। समताप रेखाओं का विचलन दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक होता है क्योकि उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भाग अधिक है।

- जनवरी में समताप रेखाये महासागरों के उत्तरी भाग की ओर तथा महाद्वीपों पर दक्षिण की ओर विचलित होती है। अटलांटिक महासागर एवं साइवेरिया के मैदानों पर इस लक्षण को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में समताप रेखायें अक्षांशों के समानान्तर ही चलती है।

जुलाई में समताप रेखायें प्राय: अक्षांशों के समानान्तर होती है। स्थलीय एवं महासागरीय भागों में तापान्तर कम होता है। विषुवत रेखा पर महासागरों का तापमान 27°C से अधिक होता है। उपोष्ण कटिबन्धीय स्थलीय भागों में 30° उत्तरी अक्षांश के साथ-साथ तापमान 30°C से अधिक होता है।

मानचित्र एवं चर्चा—

संसार के मानचित्र में दर्शाए गए समताप एवं वायुदाब की रेखाओं को पहचानिए एवं इनके आपस के संबंधों पर चर्चा करे।

अध्याय - 2

वायुमंडलीय परिसंचण तथा मौसम प्रणालियाँ

वायु में भार होता है और यह पृथ्वी की सतह पर दबाव डालती है। ''समुद्रतल से वायुमंडल की अंतिम सीमा तक एक इकाई क्षेत्रफल के वायु स्तंभ के औसत भार को वायुमंडलीय दाब कहते है।''

मापन : वायुमंडलीय दाब को पारद वायुदाब मापी अथवा निर्द्रव वायुदाबमापी से मापा जाता है। इसकी मापक इकाई मिलीबार (mb) या हेक्टोपास्कल (hPa) है। मिलीबार और हैक्टोपास्कल का मान बराबर होता। परन्तु मिलीबार बहुतायत से इस्तेमाल किया जाता है। समुद्रतल पर औसत वायुमंडलीय दाब 1013 mb होता है।

वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक :

1. **ऊँचाई :** वायुमंडलीय दाब ऊँचाई के साथ तीव्रता से घटता है। निम्न स्तरीय भाग में प्रति 10 मीटर की ऊँचाई पर 1 मिलीबार दाब कम हो जाता है।

2. **तापमान :** तापमान के कारण वायु गर्म होकर हल्की हो जाती है। परिणाम स्वरूप वायुदाब कम होता है। ठंडी वायु भारी होती है। इसलिये निम्न अक्षांशों पर निम्नवायु दाब एवं उच्च अक्षांशों पर उच्च दाब होता है।

3. **वायु की उर्ध्वाधर गति :** वायु के ऊपर या नीचे गति के कारण भी किसी स्थान पर वायुदाब कम या अधिक होता है। ऊपर उठती हवा स्थान विशेष पर कम दबाव डालती है जबकि ऊपर से उतरती हवा ज्यादा दाब बनाती है।

वायुमंडलीय दाब का क्षैतिज वितरण : इसे समदाब रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। समदाब रेखायें समुद्र तल से एक समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाती हुई खींची जाती है। वायुदाब मापने के बाद इसे समुद्र तल के वायुदाब स्तर पर घटा लिया जाता है जिससे वायुदाब पर ऊँचाई के प्रभाव को दूर किया जा सके।

वायु दाब पेटियाँ : वायुमंडलीय दाब के अक्षांशीय वितरण को वायु दाब का क्षैतिज वितरण कहते है। तापमान में परिवर्तन और पृथ्वी की घूर्णन गति द्वारा भी क्षैतिज वितरण प्रभावित होता है। पृथ्वी पर सात प्रमुख वायुदाब कटिबन्ध है।

तापीय कारक के आधार पर

विषुवतीय निम्नदाब कटिबन्ध : विषुवत रेखा पर अधिक तापमान के कारण निम्नदाब कटिबन्ध बन जाता है।

ध्रुवीय उच्चदाब पेटी : उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों पर तापमान बहुत कम होने के कारण उच्च वायुदाब पेटी विकसित होती है।

गतिक कारक

उपोष्ण उच्च दाब पेटी : विषुवतीय उष्ण कठिबन्ध से वायु संवहन धाराओं के रूप में ऊपर उठती है और ध्रुवों की ओर प्रवाहित होती हुई लगभग 30° उत्तरी और दक्षिणी अक्षांश पर उतरती है। इसके फलस्वरूप वहाँ उच्च वायु दाब बनता है।

उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी : 60° एवं 70° अक्षांशों के आसपास दोनों ही गोलार्द्धों में वायु ध्रुवों तथा उपोष्ण उच्च वायु दाब क्षेत्र से प्रवाहित होते हुए इस निम्नदाब क्षेत्र पर पहुँचती है।

वायु दाब प्रवणता : एक स्थान से दूसरे स्थान पर वायु दाब के अन्तर को वायु दाब प्रवणता कहते है। पवनें हमेशा उच्चदाब से निम्न दाब की ओर चलती है।

वायुदाब का उर्ध्वाधर वितरण

- ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ वायुदाब कम होता जाता है।
- वायुमंडल के निचले हिस्से में ऊँचाई बढ़ने के साथ वायुदाब तेजी से कम होता है। जब कि वायुमंडल की ऊपरी सतह पर वायुदाब कम होने की दर न्यून हो जाती है क्योंकि वहाँ वायु की सघनता कम होती है।

समदाब रेखाओं का विश्व वितरण

- समताप रेखाओं की तरह समदाब रेखायें भी अक्षांशों का अनुशरण करती है।
- जल एवं स्थल के वितरण का प्रभाव भी समदाब रेखाओं पर पड़ता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भाग की अधिकता है जब कि दक्षिणी गोलार्द्ध में जलीय भाग की।
- उत्तरी गोलार्द्ध में वायुदाब रेखायें महासागरों से महाद्वीपों के पास जाते हुए मुड़ जाती है।
- दक्षिणी गोलार्द्ध में वायुदाब रेखायें अपेक्षाकृत सीधी होती है
- वायुदाब पेटियाँ स्थाई नहीं होती है। सूर्य की लम्बवत् किरणों के साथ उत्तर एवं दक्षिणी की ओर विस्थापित होती है।
- गर्मियों में महाद्वीपों पर निम्नदाब एवं महासागरों पर उच्च दाब रहता है। सर्दियों में इसके विपरीत दशा होती है।

पवनों की दिशा एवं वेग को प्रभावित करने वाले कारक

एक निश्चित दिशा में गति करती वायु को पवन कहते है। पवनों की दिशा एवं गति दाब प्रवणता की तीव्रता एवं दिशा पर निर्भर करती है। पृथ्वी के तल पर क्षैतिज पवने निम्न कारकों से प्रभावित होती है।

- **कोरियालिस प्रभाव :** पृथ्वी के परिभ्रमण गति के कारण पवने अपनी दिशा से विक्षेपित हो जाती है। इसे ही कोरियालिस बल कहते है। इस बल के कारण पवनें उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी इंगित दिशा से दायीं ओर एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी इंगित दिशा से बाई और विक्षेपित हो जाती है।

  कोरियालिस बल विषुवत वृत्त पर कम तथा ध्रुवों पर सबसे अधिक होता है। इसके साथ ही पवन की गति जितनी अधिक होती है. यह बल उतना अधिक प्रभाव डालता है।

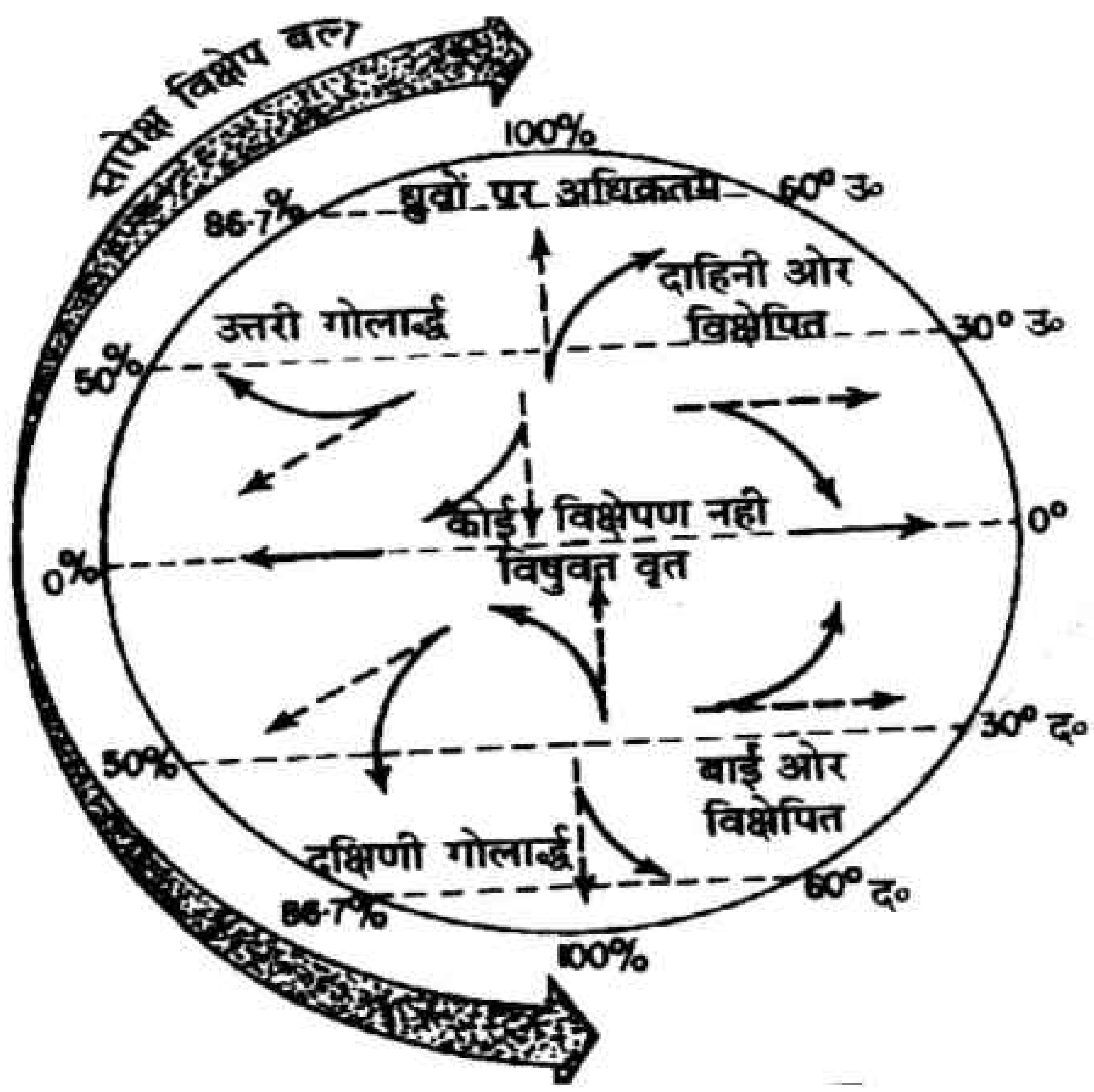

कारिआलिस प्रभाव के द्वारा पवनों का विक्षेपण

- **घर्षण का प्रभाव :** धरातल पर पवनों के घर्षण का प्रभाव धरातल से 1 से 3 कि.मी. की ऊँचाई तक होता है। समुद्र सतह पर यह घर्षण बहुत कम होता है। स्थलाकृतियाँ पवनों की दिशा परिवर्तन का भी कारण बनती है।

- **दाब प्रवणता का प्रभाव :** पवनें हमेशा उच्चदाब से निम्नदाब की ओर चलती है। वायुदाब प्रवणता जितनी अधिक होती है, वायु की गति उतनी अधिक होती है।

  भूविक्षेपी पवनें (Geostrophic Wind) : (a) ये वे पवनें है जो धरातलीय घर्षण के प्रभाव से मुक्त होती है। (b) ये समदाब रेखाओं के समान्तर पृथ्वी की सतह से 2-3 कि.मी. की ऊँचाई पर बहती है। (c) ये दाब प्रवणता तथा कोरियालिस बल से नियन्त्रित होती है।

ITCZ : यह विषुवत रेखा के दोनों ओर शांत वायु की एक पट्टी है जो ऋतु अनुसार उत्तर एवं दक्षिण की ओर खिसकती रहती है। इसे निम्नवायुदाव कहते हैं।

जेट स्ट्रीम : ऊपरी वायुमंडल में 300 से 500 कि.मी. की चौड़ी पट्टी में तीव्रगति से (200 नॉट) चलने वाली पवने।

चक्रवात : निम्नदाब क्षेत्र के चारों ओर उच्च दाब की उपस्थिति चक्रवात को जन्म देती है। उच्च दाब से हवायें निम्नवायु दाब की ओर तेजी से चलती है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये हवायें घड़ी की सुइयों के विपरीत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अनुरूप चलती है।

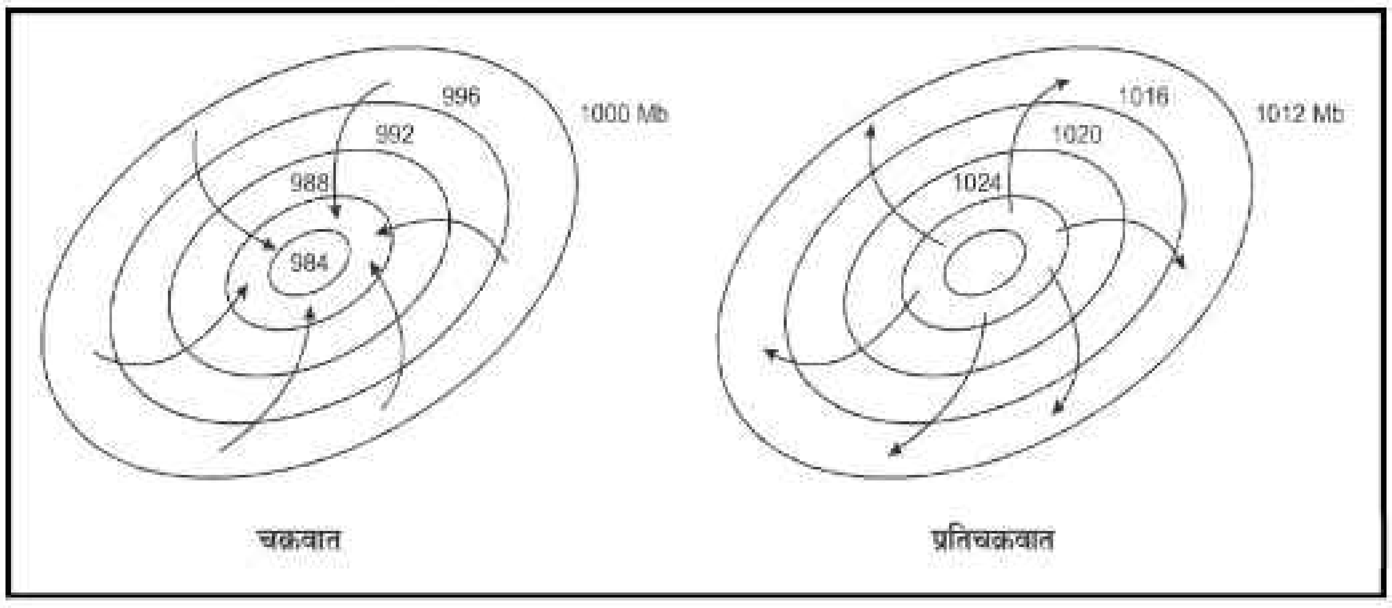

प्रतिचक्रवात : इसमें उच्च दाब से हवायें चारों और स्थापित निम्न दाब की ओर चलती है। इसमें उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी अपने इंगित दिशा से बायी ओर तथा दक्षिण गोलार्द्ध में अपने इंगित दिशा से दायी ओर मुड़कर चलती है।

पवनों के प्रकार :

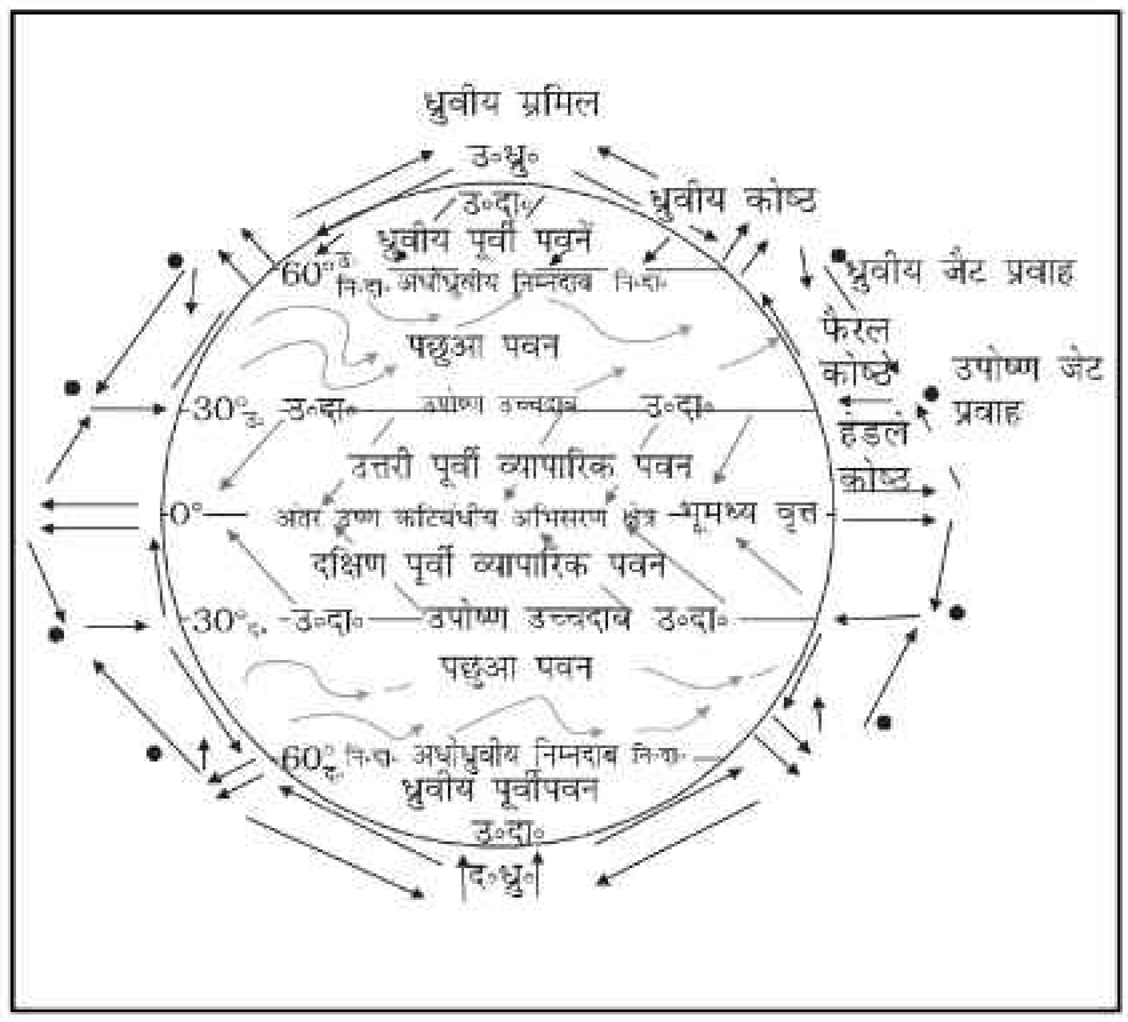

- **व्यापारिक पवनें :** 30° दक्षिण तथा 30° उत्तरी अंक्षाशों के मध्य उपोष्ण उच्चदाब कटिबन्ध से विषुवतीय निम्नदाब की ओर निरन्तर बहती रहती है। इनकी दिशा दक्षिण–पूर्व एवं उत्तर पूर्व होती है।
- **पछुआ पवनें :** ये दोनो गोलार्द्धों में 30° से 60° अक्षांशों के मध्य उपोष्ण उच्चदाब कटिबन्ध से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब कटिबंध की ओर बहती है।
- **ध्रुवीय पवनें :** ये ध्रुवीय उच्च वायुदाब कटिबन्धों से उपध्रुवीय निम्नदाब कटिबन्धों की ओर बहती है।

सामायिक पवनें

- **मानसून पवनें :** वे मौसमी पवनें है जो शीत ऋतु मे महाद्वीपों से महासागरों की ओर तथा ग्रीष्म ऋतु में महासागरों से महाद्वीपों की ओर चला करती है। ऋतुपरिवर्तन के साथ वायुदाब में परिवर्तन होता है और फलस्वरूप इनकी दिशा में भी परिवर्तन होता है। यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। दक्षिण पूर्व एशिया में मानसूनी पवनें इसका एक उदाहरण है।

- **स्थल एवं समुद्र समीर**

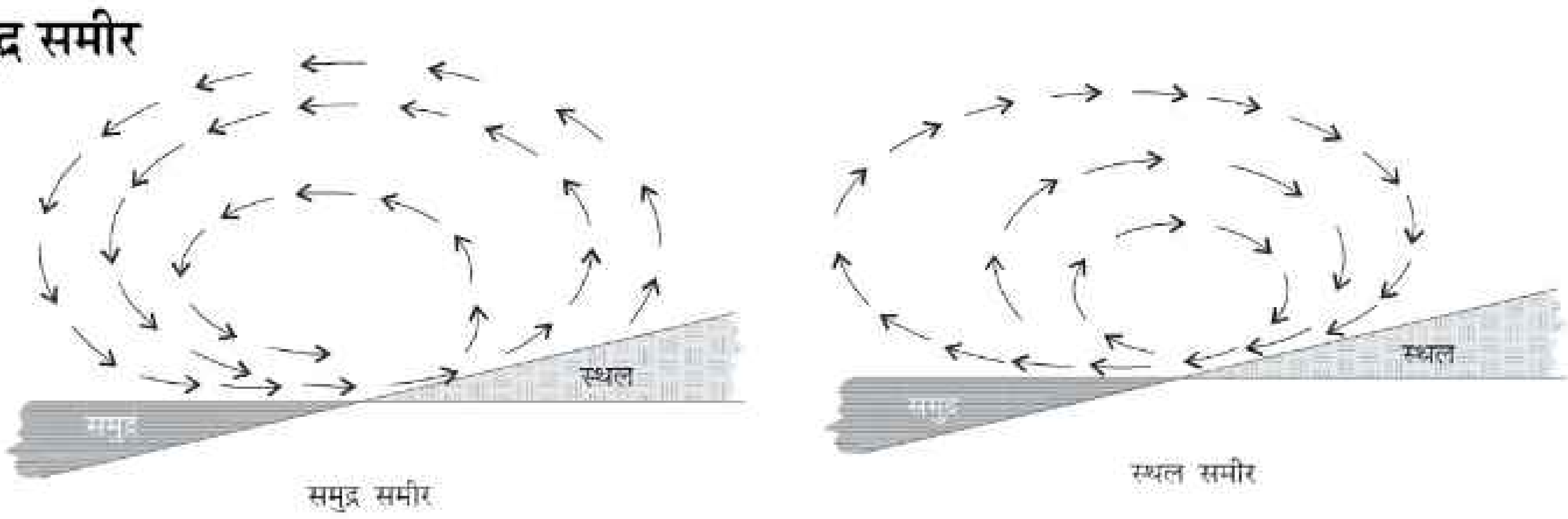

समुद्र समीर

स्थल समीर

स्थल एवं समुद्र के द्वारा ऊष्मा के अवशोषण एवं स्थानान्तरण में भिन्नता पाई जाती है। दिन के समय स्थल पर निम्नदाब एवं समुद्रों पर उच्च दाब होता है। अत: दिन के समय समुद्र से हवायें स्थल की ओर चलती है। इसे समुद्री समीर कहते है। स्थल समीर की स्थिति इसके विपरीत होती है।

वायु राशियाँ (Air masses) : जब वायु किसी विस्तृत क्षेत्र पर पर्याप्त लम्बें समय तक रहती है तो यह उस क्षेत्र के गुणों को धारण कर लेती है जैसे तापमाान आर्द्रता आदि। वायु का यह विशाल आकार जलवायवीय गुणों के आधार पर एक इकाई जैसे होता है। इसे ही वायु राशि कहते है।

- **पर्वत एवं घाटी समीर :** दिन के दौरान पर्वतों के ढाल गर्म हो जाते है और घाटी ठंडी रहती है। इसलिये घाटी से ढाल की ओर (ऊपर) हवा बहने लगती है। इसे घाटी समीर कहते है। रात के समय ढाल ठंडे हो जाते है और घाटी गर्म होती है। इस समय ढाल से घाटी की ओर हवा बहती है। इसे पर्वत समीर कहते है।

- **स्थानीय पवने :** स्थानीय कारकों से प्रभावित हो कर किसी स्थान विशेष पर ही चलती है जैसे–

उत्तर भारत में 'लू', आल्प्स के पवन विमुख ढालों पर 'फॉन', कनाडा में 'शिनूक', फ्रांस में 'मिस्ट्रल' आदि।

वाताग्र : दो भिन्न गुणों वाली वायुराशियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती है तो वे आसानी से मिश्रित नहीं होती। दोनों वायुराशियों के मध्य एक संक्रमण क्षेत्र बन जाता है। इसे ही वाताग्र कहते है।

वाताग्र चार प्रकार के होते है :

1. शीत वाताग्र।
2. उष्ण वाताग्र।
3. अधिविष्ठ वाताग्र।
4. अचर वाताग्र।

परियोजना–

1. भारत में मानसूनी वर्षा से होने वाले सामाजिक प्रभाव पर एक प्रस्तुतीकरण तैयार करवाऐं और उसे प्रस्तुत करें।
2. पवनों की दिशाओं को मानचित्र में अंकित करें।

अध्याय – 3

आर्द्रता एवं वर्षण

हवा या वायुमंडल में मौजूद जलवाष्प की उपस्थिति को आर्द्रता कहते है। हवा में एक निश्चित तापमान पर निश्चित मात्रा में ही जलवाष्प धारण करने की क्षमता होती है। हवा जब पूरी क्षमता के अनुसार जलवाष्प ध ारण कर लेती है तो उसे संतृप्त वायु कहते है। वास्तव में वायु में उपस्थित नमी ही वर्षण सम्बन्धी सभी घटनाओं के लिये जिम्मेदार है।

आर्द्रता के प्रकार : आर्द्रता को व्यक्त करने की तीन विधियाँ है :

- **निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity) :** वायु के प्रति इकाई आयतन में मौजूद जलवाष्प की कुल मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते है। इसे ग्राम (जलवाष्प) प्रति कि.ग्रा. (वायु) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

- **सापेक्ष आर्द्रता (Relative Humidity) :** किसी निश्चित तापमान पर वायु में एक निश्चित मात्रा में आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता होती है। उस क्षमता एवं मौजूद वास्तविक आर्द्रता के अनुपात को सापेक्ष आर्द्रता कहते है। इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है।

उदाहरण : मान लीजिए एक निश्चित आयतन वाली वायु एक निश्चित तापमान पर 100gm जलवाष्प धारण कर सकती है लेकिन उसमें वास्तव में केवल 40 ग्राम जलवाष्प ही है। इस तरह उसमें सापेक्ष आर्द्रता 40% हुयी। इसे निम्न फार्मूले द्वारा गणना की जाती है:-

निश्चित आयतन वाली वायु के तापमान में या जलवाष्प की मात्रा में अन्तर आने पर सापेक्ष आर्द्रता में परिवर्तन आ जाता है।

शुष्क वायु, आर्द्रवायु : 50% से कम सापेक्ष आर्द्रता वाली वायु शुष्क तथा 80% से ज्यादा सापेक्ष आर्द्रतावाली वायु आर्द्र कहलाती है।

वायु में आर्द्रता को हाइग्रोमीटर या स्लिंग साइक्रोमीटर (Sling psychrometer) की सहायता से मापा जाता है।

वाष्पीकरण : जल के द्रव अवस्था से गैसीय अवस्था में बदलने की क्रिया को वाष्पीकरण कहते है। वाष्पीकरण की प्रक्रिया में ऊष्मा के उपयोग से तापमान बढ़ता है। इसे sensible heat कहते है। इसके अतिरिक्त कुछ ऊष्मा की आवश्यकता एक विशेष तापमान वाले जल को उसी तापमान वाले जलवाष्प में परिवर्तित करने में खर्च हो जाती है इस अतिरिक्त ऊष्मा को वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा (Latent heat) कहा जाता है।

संघनन : वायु का तापमान जब कम होता है तो उसमे वाष्प को धारण करने की क्षमता कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप जलवाष्प पुन: जल की बूंदों में परिवर्तित हो जाती है। इसे ही संघनन कहते है। संघनन के लिये आवश्यक है कि वायु ठंडी होकर संतृप्त हो तथा उसके बाद भी ठंडा होने का क्रम जारी रहे।

ओसांक : जिस तापमान पर वायु उपस्थित जलवाष्प के साथ ही संतृप्त हो जाती है उसे उस वायु का ओसांक कहते है। इस तापमान से नीचे शीतलन होने पर वायु में उपस्थित जल की मात्रा संघनित हो जाती है।

संघनन के लिये आवश्यक दशायें :-

- वायु का आयतन निश्चित हो किन्तु तापमान कम हो जाये।
- तापमान के साथ-साथ वायु का आयतन भी कम हो जाये।
- वायु में जलवाष्प की मात्रा में वृद्धि हो जायें

रूद्धोष्म ताप परिवर्तन (Adiabatic changes) : वायु के ऊपर उठने एवं फैल (क्योंकि वायुदाब/घनत्व कम होता है)जाने से ही वायु के तापमान में परिवर्तन आ जाता है जबकि ऊष्मा में कमी नहीं आती। इसे रुद्धोष्म ताप परिवर्तन कहते है। संतृप्तवायु की रूद्धोष्म दर शुष्क वायु की रूद्धोष्म दर से कम होती है।

संघनन के रूप

- **ओस (Dew) :** वायु की आर्द्रता धरातल पर या किसी ठोस वस्तु की ठंडी सतह पर जल की बूँदों के रूप में सघनित हो।
- **पाला या तुषार (Frost) :** जब सतह का तापमान हिमांक से नीचे चला जाता है तो वायुमंडल की आर्द्रता जल की बूंदों के स्थान पर ठोस हिमकणों के रूप में संघनित हो जाती है। इसे पाला या तुषार कहते है।
- **कोहरा एवं कुहासा (Fog and Mist) :** धरातल के निकट वायुमंडल में जलवाष्प के संघनन से कुहरा बनता है। वास्तव में यह धरातल के निकट बना हुआ बादल है।
- **कोहरे एवं कुहासे में अन्तर :** कुहासे में कोहरे से कम नमी या आर्द्रता होती है। कुहासे में दृश्यता अधिक होती है। कोहरे में दृश्यता कम होती है।
- **धूम्र कोहरा (Smog) :** धुये से प्रदूषित वायुमंडल में संघनित जलकण धुये के कणों के चारो ओर केन्द्रित हो जाता है। इसे धूम्र कोहरा कहते है। नगरीय एवं औद्योगिक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण की अधिकता से धूम्र कोहरा होता है। यह श्वास संबन्धी बीमारी से ग्रस्त लोगों के लिये खतरनाक होता है।
- **बादल :** आर्द्र वायु ऊपर उठती है और यह ऊपर जाकर ठंडी हो जाती है। इसमें उपस्थित जलवाष्प वायु में तैरते धूल और नमक के कणों के साथ जलवाष्प जलकणों के रूप में संघनित हो जाते है। इन्ही जलकणों के समूह को बादल कहते है।

बादलों के प्रकार : ऊँचाई, घनत्व और पारदर्शिता के आधार पर बादलों को चार भागों में वर्गीकृत कर सकते है।

- पक्षाभ मेघ
- कपासी मेघ
- स्तरी मेघ
- वर्षा मेघ

ये चारो प्रकार के बादल मिलकर बादलों के निम्नलिखित रूपों का निर्माण करते है–

- **ऊँचाई वाले बादल :** पक्षाभ, पक्षाभ स्तरी, पक्षाभ कपासी
- **मध्यम ऊँचाई वाले बादल :** स्तरी मध्य, तथा कपासी मध्य
- **कम ऊँचाई वाले बादल :** स्तरी कपास एवं स्तरी वर्षा वाले मेघ

वर्षण (Precipitation) – वायुमंडल में लगातार संघनन की प्रक्रिया से जल की छोटी–छोटी बूँद बन जाती है और गुरूत्वाकर्षण से प्रभावित होकर धरातल पर गिरती है। इसे ही वर्षण कहते है। वर्षा के अतिरिक्त वर्षण के कई रूप है –

- **हिमपात :** यदि वायु का ओसांक हिमांक से नीचे हो तो वायु में मौजूद जलवाष्प जल की बूंदों में परिवर्तित होने के बजाय हिम खों के रूप में परिवर्तित होकर धरातल पर आते है। इसे हिमपात कहते है।

- **सहिम वृष्टि :** वर्षा की बूंदें नीचे गिरते हुये वायु की अपेक्षाकृत ठंडी परत से गुजरती है तो जल की बूँदें बर्फ के छोटे–छोटे कणों मे बदल जाती है। वर्षा के साथ बर्फ के छोटे कणों का गिरना सहिम वृष्टि है।

- **ओला वृष्टि :** धरातल पर आ रही वर्षा की बूँदें उर्ध्वाधर हवा के प्रभाव में ऊपर धकेल दी जाती है। वायु की ठंडी परत में जाकर बूँदे जम जाती है। उनके नीचे आते समय ऊर्ध्वाधर हवा उन्हे पुनः ऊपर ले जाती है। प्रत्येक बार उनका आकार बड़ा होता जाता है। वायुमंडल उन्हे रोक नहीं पाता, तो ये बड़े–बड़े ओलों के रूप में नीचे गिरने लगते है। इन ओला पत्थरों में बर्फ की कई संकेन्द्रीय परते होती है।

- **वर्षा :** पानी के रूप में वर्षण को वर्षा कहते है। ये तीन प्रकार की होती है।

- **पर्वतकृत वर्षा** – इसमें संतृप्त वायु किसी पर्वतीय ढाल के सहारे ऊपर उठती है। ऊपर उठ कर ठंडी होती है और संघनित होकर वर्षा करती है।

पर्वत कृत वर्षा

- **संवहनीय वर्षा** – हवा गर्म होकर हल्की हो जाती है और संवहन धाराओं के रूप में ऊपर उठती है। ऊपर ठंडी होकर संघनित होती है और वर्षा करती है। इस प्रकार की वर्षा बिजली की कड़क तथा गरज के साथ मूसलाधार होती है।

संवहनीय वर्षा

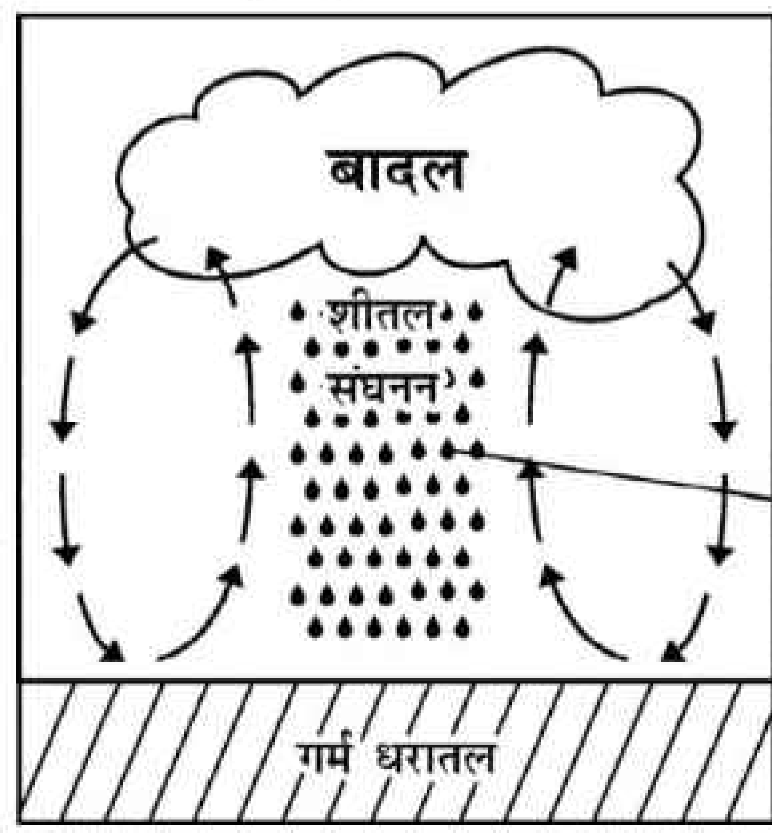

- **चक्रवातीय वर्षा** – गरम वायु राशि, ठंडी वायु राशि के ऊपर चढ़ जाती है जिससे उष्ण आर्द्र वायुराशि ठंडी हो जाती है। फलस्वरूप संघनन होता है और कपासी वर्षीय मेघ बन जाते है। इस तरह की वर्षा चक्रवातीय वर्षा कहलाती है।

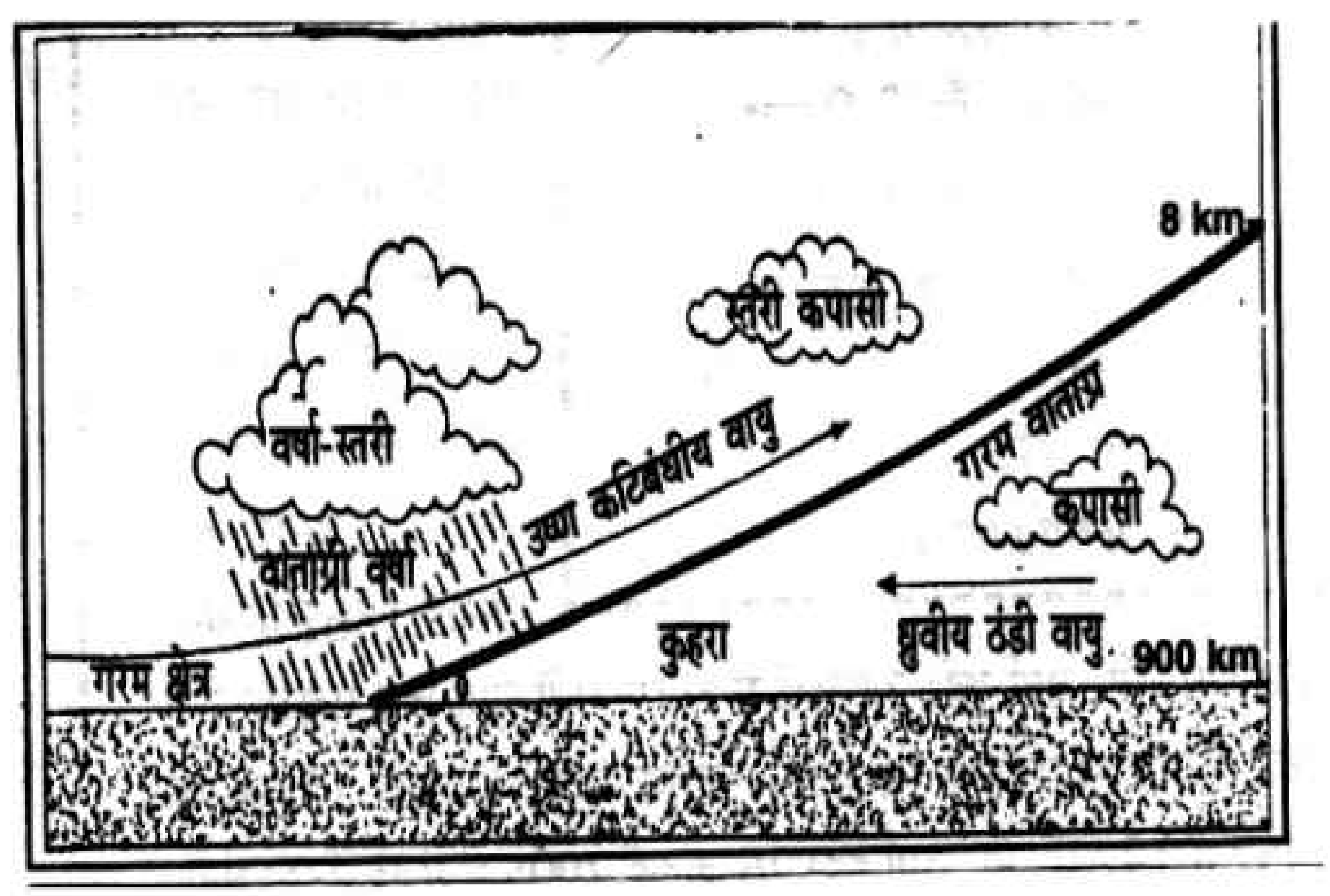

चक्रवातीय वर्षा –

वर्षा का विश्व वितरण

- विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर वर्षा की मात्रा में कमी आती है।
- विश्व के तटीय क्षेत्रों में महाद्वीपों के आन्तरिक भागों से अधिक वर्षा होती है।
- स्थलीय भागों की अपेक्षा महासागरों पर अधिक वर्षा होती है।
- 35° से 40° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों पर पूर्वी तट पर वर्षा अधिक होती है जबकि पश्चिम तटो पर कम।
- 45° से 65° अक्षासों में पछुओं पवनों के कारण पश्चिमी तटो पर वर्षा अधिक होती है।

- पर्वतों के पवनाभिमुख ढालों पर वर्षा अधिक होती है।
- विषुवतीय पट्टी तथा समशीतोष्ण प्रदेशों में वर्षा पूरे वर्ष होती है

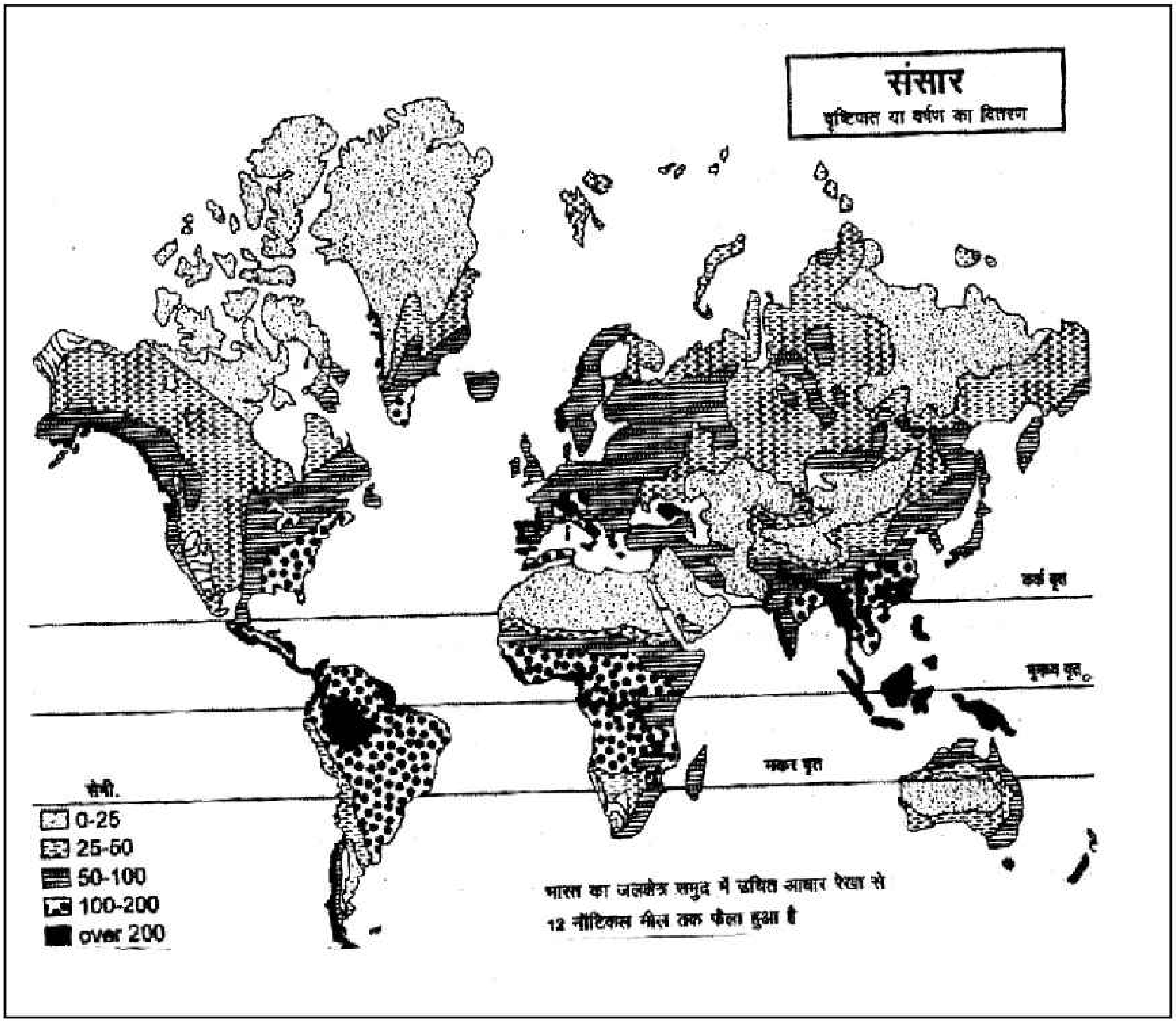

1. अधिक वर्षा और कम वर्षा वाले क्षेत्रों को पहचान करके लिखिए।
2. अधिक वर्षा और कम वर्षा होने के कारणों का पता कीजिए।

अध्याय - 4

जलवायु परिवर्तन

किसी क्षेत्र की लम्बे समय की मौसमी दशाओं के औसत को उस क्षेत्र की जलवायु कहते है। पृथ्वी की उत्पत्ति से आजतक पृथ्वी की जलवायु स्थायी नहीं रही। पृथ्वी की जलवायु चर-अचर प्राणि जगत के लिये सर्वथा अनुकूल है। आज सभ्यता के विकास एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण जलवायु में परिवर्तन आ रहा है। आज जब हम जलवायु परिवर्तन की बात करते है तो पिछले 100 सालों में मानवीय गतिविधियों के कारण आये परिवर्तन से है। पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, वायुमंडलीय संघठन में पविर्तन बड़ी समस्या की और इशारा करते है।

जलवायु परिवर्तन का इतिहास : पृथ्वी के लगभग 4.5 अरब वर्ष पुराने इतिहास मे इसमें कई बार जलवायु परिवर्तन हुये है। पृथ्वी के वर्तमान रूप में आने के बाद से अधिकतर समय में यहाँ की जलवायु मृदुल और कोष्ण रही है। लेकिन कई बार तापमान इतना कम हो गया कि अधिकतर पृथ्वी हिम चादर से ढक गयी।

पृथ्वी के इतिहास में चार हिमकाल आये। अन्तिम हिमकाल 10 लाख वर्ष पूर्व घटित हुआ। इस अन्तिम हिमयुग में उत्तरी महाद्वीपों का अधिकतर भाग बर्फ से ढका रहा। इस अन्तिम हिमयुग के दौरान अन्तर्हिमयुग काल भी आता रहा और तापमान में वृद्धि होती रही।

अभिनव पूर्व काल में जलवायु : इस काल मे जलवायु परिवर्तन सम्बन्धित चरम मौसमी घटनायें घटित हुई। 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में कई बार सूखा पड़ा। यूरोप अनेकों बार उष्ण, आर्द्र, शीत एवं शुष्क युगों से गुजरा है। 1990 के दशक में शताब्दी का सबसे ज्यादा तापमान एवं विश्व में भयंकर बाढ़ों का अनुभव किया गया।

जलवायु परिवर्तन के कारण :

प्राकृतिक कारक :

- **सौर कलंक** - सौर कलंक सूर्य पर काले धब्बे है। खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार सौर कलंकों की वृद्धि से पृथ्वी पर मौसम ठंडा और आर्द्र हो जाता है। सौर कलंकों की संख्या घटने से उष्ण और शुष्क दशायें उत्पन्न होती है।

  - **मिलैकोविच दोलन :** पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक कक्षा में चक्कर लगाती है। पृथ्वी के कक्षीय लक्षणों में तथा उसके अक्षीय झुकाव में परिवर्तन इसकी जलवायु में परिवर्तन ला सकता है।

  - **ज्वालामुखी क्रिया :** ज्वालामुखी विस्फोट से वायुमंडल में बड़ी मात्रा में ऐरोसोल शामिल हो जाती है। ये ऐरोसोल लम्बे समय तक वायुमंडल में छाये रहते है जिससे पृथ्वी पर पहुँचनें वाला सौर विकिरण कम हो जाता है और भूमंडल का औसत तापमान कम हो जाता है।

मानवीय कारण

- वर्तमान समय में जीवाश्म ईंधन को अत्यधिक प्रयोग
- वनस्पतियों को कम होना
- उत्पादों में CFC गैसों का प्रयोग
- कृषीय गतिविधियाँ

भूमंडलीय ऊष्मन की समस्या : धरातल के समीप वायुमंडल के औसत तापमान में वृद्धि भूमंडलीय ऊष्मन है। यह वृद्धि पृथ्वी की जलवायु में परिवर्तन का कारण बनती है। तापमान के बढ़ने की प्रवृत्ति 20 वीं शताब्दी में अधिक रही है। 1901 से 1944 और 1977 से 1999 की अवधि में भूमंडलीय ऊष्मन 0.4°C बढ़ा। सन् 1998 पूरी सहस्त्राब्दि का सबसे गर्म वर्ष था।

वायुमंडल का तापन करने वाली प्रक्रियाओं को ग्रीन हाउस प्रभाव (Green House Effect) से समझा जा सकता है।

ग्रीन हाउस प्रभाव : ग्रीन हाउस गैसों के अन्तर्गत प्रमुख गैसे कार्बन डाई आक्साइड, CFCs, मीथेन (CH_4), नाइट्रस आक्साइड (N_2O) और ओजोन (O_3) है। वायु मंडल में इनकी उपस्थिति सौर विकिरण को धरातल तक आने देता है किन्तु पार्थिव विकिरण की दीर्घ तरंगों को अवशोषित कर लेता है। इससे भूमंडल गर्म रहता है। इसे ग्रीन-हाउस प्रभाव कहते है। ठंडे इलाकों में कांच के घर ऊष्मा को बचाये रखने के लिये बनाये जाते है। ये घर सौर विकिरण की लघु तरंगों के लिये पारगामी यानी प्रवेशी होता है, किन्तु बाहर जाने वाली दीर्घ तरंगों को रोक लेता है। परिणाम स्वरूप वे काँच के घर गर्म रहते हैं।

चिंता का विषय : वर्तमान समय में गाड़ियों, उद्योगों आदि मे जीवाश्म ईंधनों के प्रयोग से ग्रीन हाउस गैसे (GHG) उत्सर्जित होती है। इसके अतिरिक्त फ्रिज, ए.सी. आदि में CFC का प्रयोग होता है। इसी तरह कृषि कार्यों एवं औद्योगिक प्रक्रियाओं से N_2O, अन्य मानवीय क्रियाओं से मीथेन, HFCs, PFCs तथा SF_6 (Sulfur Hexafluride) गैसे निकलती है। इस तरह वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का आधिक्य हो जाता है और पार्थिव विकिरण से ऊष्मा बाहर नहीं जाने पाती। अतः और भूमंडल का तापमान बढ़ जाता है।

ग्रीन हाउस गैसो के कण वायुमंडल में जितने अधिक देर तक बने रहते है, इनके द्वारा लाया गया परिवर्तन भी उसी अनुपात में देर तक बना रहताा है।

भूमंडलीय ऊष्मन का प्रभाव

- हिमटोपियों एवं हिमानियों का पिघलना
- समुद्र तल में वृद्धि
- वर्षा के प्रतिरूपों में परिवर्तन तथा चक्रवातों में वृद्धि
- जैव विविधता में कमी, कुछ जीवों एवं वनस्पतियों का लुप्त होना
- विभिन्न प्रकार के रोगों का जन्म

- प्रवाल भित्ति पर दुष्प्रभाव का खत्म होना
- समुद्री जल का तापमान बढ़ने से प्लैंकटन वनस्पति का खत्म होना

भूमंडलीय ऊष्मन की अधिकता पूरे विश्व के लिये जलवायु परिवर्तन सहित कई समस्याओं को जन्म दे सकती है। अत: इस समस्या से निपटने के लिये किये प्रयास भी विश्व स्तर के है। विश्व स्तर के कई सम्मेलनों में देशों ने कार्बन उत्सर्जन कम करने एवं पृथ्वी के औसत तापमान को इस शताब्दी के अन्त तक 2^oC से अधिक न बढ़ने देने का संकल्प लिया है। कुछ प्रयासों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है।

- UN Frame work Convention on climate change (UNFCCC, 1992 Rio De Janero)
- Kyoto Protocol. (11 Dec. 1997 in Kyoto, Japan.)
- Bali Meet (Dec. 2007 in Bali, Indonesia)
- Cop 15 Copenhagen Summit
- Cop 16 Cancum Summit
- Cop 17 Durbon Summit
- Special Climate Change Fund was established under UNFCCC.
- REDD : Reducing emmision & from deforestation and forest degradation
- Climate Friendly agriculture
- IPCC - Intra - Govt Panel on climate change
- NGGIP -National Green house Gas Inventories Programme.
- Green Economy

परियोजना–

जलवायु परिवर्तन पर हुए सम्मेलनों/कानफ्रेंस में हुए निष्कर्ष को पता कीजिए। भारत की भूमिका जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में क्या है, चर्चा करें।

अध्याय - 5

महासागरीय जल

पृथ्वी पर पाये जाने जल का लगभग 97% भाग महासागरों में पाया जाता है। शेष जल हिमानियों, हिम-टोपियों, भूमिगत जल, झीलों, नदियों और जीवों में संग्रहीत है। जल चक्र में महासागरों का वृहद् योगदान है। महासागरों से जल वाष्प के रूप में वायुमंडल में और पुन: वर्षा द्वारा महासागरों एवं स्थल पर आता है। स्थल का जल सरिताओं द्वारा पुन: महासागर में आ जाता है।

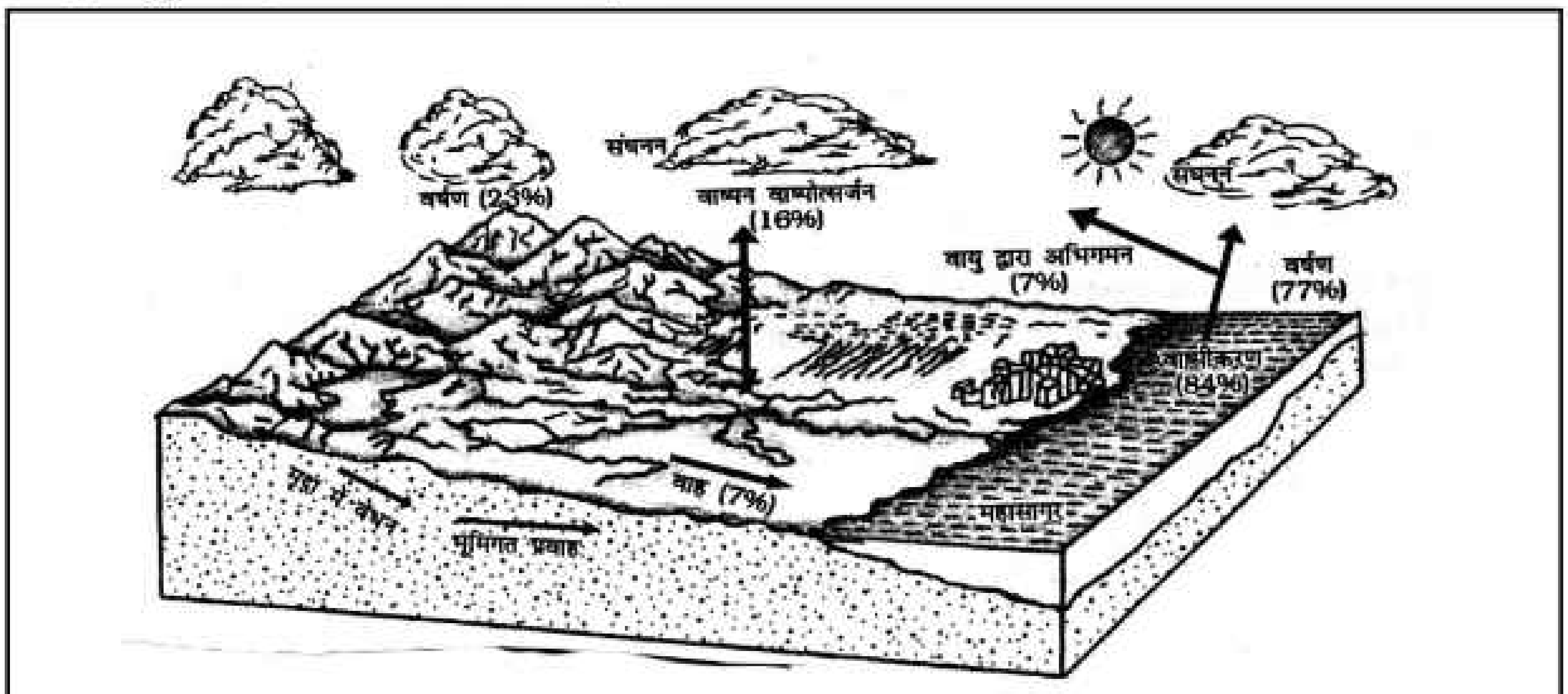

जलीय चक्र

महासागरीय अध: स्तल का उच्चावच : जिस तरह महाद्वीपो पर धरातल पर कई स्थलाकृतियाँ होती है उसी तरह महासागरों के अध:स्तल पर उच्चावच होता है। महाद्वीपो की सीमा एक दूसरे से अलग होते है किन्तु महासागर एक दूसरे से इस तरह मिले हुये होते है कि उनकी सीमा निश्चित कर पाना मुश्किल होता है।

पृथ्वी के महासागर : प्रमुख रूप से चार महासागर है (i) प्रशान्त, (ii) अटलांटिक (iii) हिंद (iv) आर्कटिक। इसके अतिरिक्त सागर, झीलें एवं खाड़ियाँ आदि है।

महाद्वीपों की भाँति महासागरीय तल की बनावट भी विवर्तनिकी हलचलों, ज्वालामुखीय क्रियाओं एवं निक्षेपण प्रक्रिया से प्रभावित है।

महासागरीय अध:स्थल

- **महाद्वीपीय शेल्फ/मग्न तट :** यह महासागरों का सबसे उथला भाग है। इसके ढाल की औसत प्रवणता 1° या उससे कम होता है। इन शेल्फों की औसत चौड़ाई 80 कि.मी. तक होती है।
- **महाद्वीपीय ढाल :** महाद्वीपीय ढाल वहाँ से शुरू होता है जहाँ से महाद्वीपीय शेल्फ तीव्र ढाल में बदलने लगती है। इनकी ढाल प्रवणता 2 से 5 डिग्री तथा औसत गहराई 200 से 3000 मी. तक होती है। इसी हिस्से में महासागरों में कैनियन एवं खाइयाँ पाई जाती है।

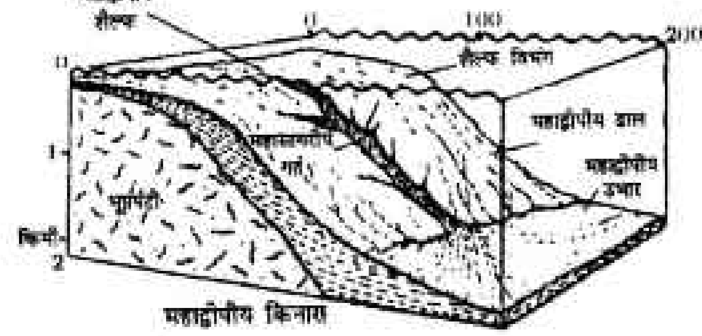

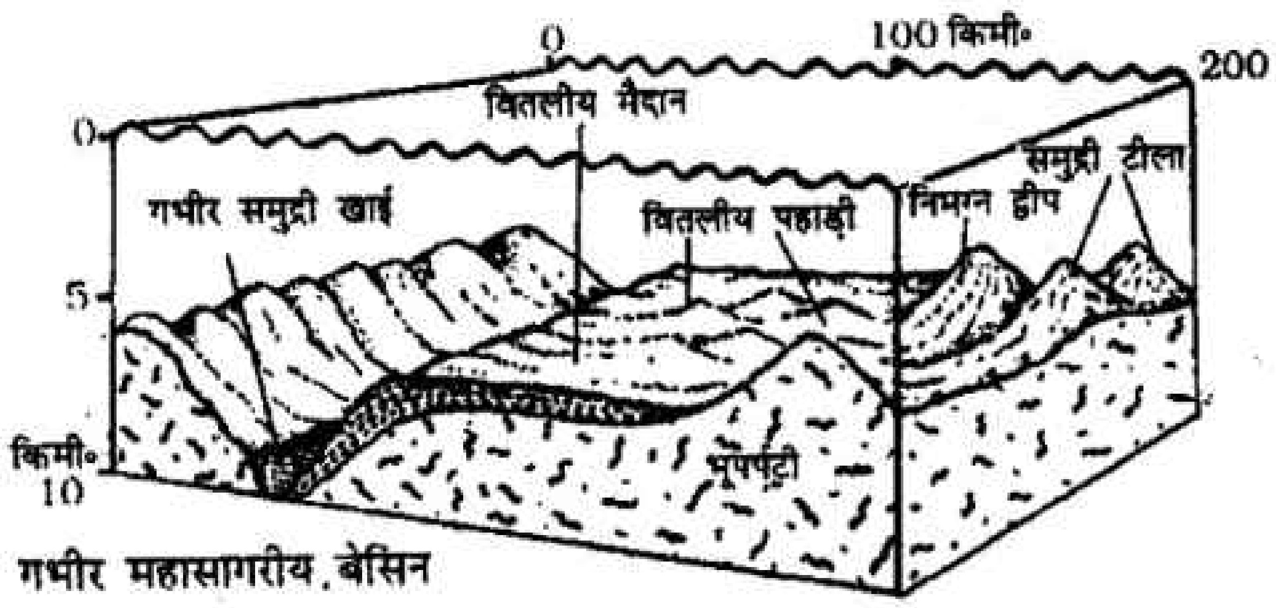

गंभीर सागरीय मैदान : सागरीय अध:स्तल का सबसे अधिक हिस्सा (लगभग दोतिहाई) इसके अन्तर्गत है। यह 3000 मी. से 6000 मी. की गहराई में विस्तृत होते है। गभीर सागरीय मैदान में गहरी समुद्री खाइयाँ, टीले, पहाड़ी एवं पठार जैसी आकृतियाँ पाई जाती है। अपने नाम के अनुसार यह मैदान की तरह समतल नहीं होते।

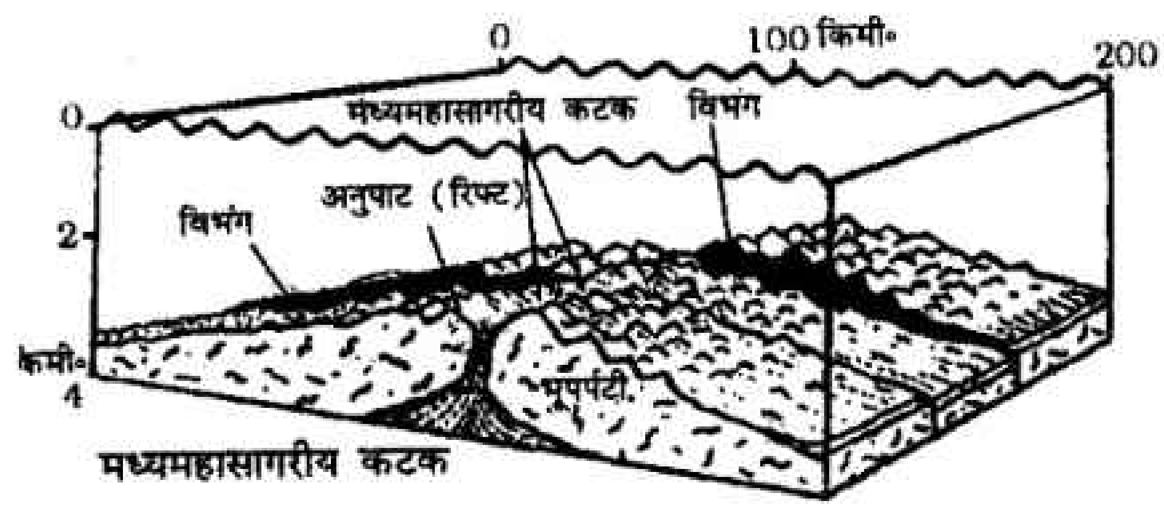

: महासागरीय अधस्तल के उच्चावच

महासागरीय गर्त : यह सममित (Isymmetrical) ढाल वाली गहरी खाइयाँ होती है जो महासागरीय अध:स्थल का सबसे गहरा हिस्सा होती है।

महासागरीय नितल की लघु आकृतियाँ :

- मध्य महासागरीय कटक
- समुद्री टीला
- जलमग्न कैनियन
- निमग्न द्वीप
- प्रवाल द्वीप

महासागरीय जल का तापमान : महासागरीय जल के तापमान के क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर वितरण में असमानता पाई जाती है।

तापमान के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करने वाले कारक : यद्यपि सूर्यातप की मात्रा ही महासागरों के सतह के तापमान को प्रभावित करने वाला आधारभूत कारक है किन्तु कई अन्य कारक भी तापमान के क्षैतिज वितरण के प्रभावित करते है। वे कारक है:-

- **अक्षांश :** विषुवत वृत्त पर सूर्यातप अधिक प्राप्त होता है और ध्रुवों की तरफ कम। इसलिये विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर महासागरों के जल के तापमान में कमी आती जाती है। विषुवत वृत्त पर औसत तापमान 26°C होता है तो 40°C अक्षांशों पपर 14°C और 60°C अक्षांशों पर 1°C होता है।

- **स्थल एवं जल का असमान वितरण :** स्थल की तुलना में जल देर से गर्म एवं देर से ठंडा होता है। जल के इसी गुण के कारण उत्तरी गोलार्द्ध के महासागर अधिक गर्म होते है क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध में जलीय भाग अधिक है और उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भाग अधिक है।

- **सनातनी पवनें :** एक ही अक्षांश पर विभिन्न देशांतरों पर समुद्री जल के तापमान में अन्तर पाया जाता है जिसका कारण है कि सनातनी पवनें सतही गर्म जल को पश्चिमी तट से दूर ढकेल देती हैं और नीचे का ठंडा जल ऊपर आ जाता है, इसके विपरीत अभितटीय पवने गर्म जल को महाद्वीपों के पूर्वी तट पर जमा कर देती है और तापमान बढ़ जाता है।

- **महासागरीय धारायें :** गल्फ स्ट्रीम जैसी गर्म धारा उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट के तापमान को बढ़ा देती है जबकि हम्बोल्ट, जो कि एक ठंडी धारा, पेरू के तट का तापमान कम कर देती है।

तापमान का उर्ध्वाधर (Vertical) वितरण :

महासागरीय जल का तापमान गहराई के साथ घटता जाता है। केवल ध्रुवीय क्षेत्र इस नियम के अपवाद है। महासागर सूर्य से सीधे ऊष्मा प्राप्त करते है और चालन (Conduction) के जरिये ही निचला भाग ऊष्मा प्राप्त करता है। सूर्य की किरणें सीधे रूप से समुद्र की केवल ऊपरी सतह (लगभग 50 मी.) को गर्म करती है। उसके नीचे गहराई के साथ तापमान कम होता जाता है लेकिन तापमान घटने की दर समान नहीं रहती। महासागरों मे 400 मी. तक तापमान तेजी से घटता है। वह सीमा क्षेत्र जहाँ तापमान में तीव्र गिरावट आती है उसे ताप प्रावणता (Thermocline) कहते हैं।

तापमान के आधार पर महासागरीय जल की गहराई को तीन परतों में बाटा जा सकता है –

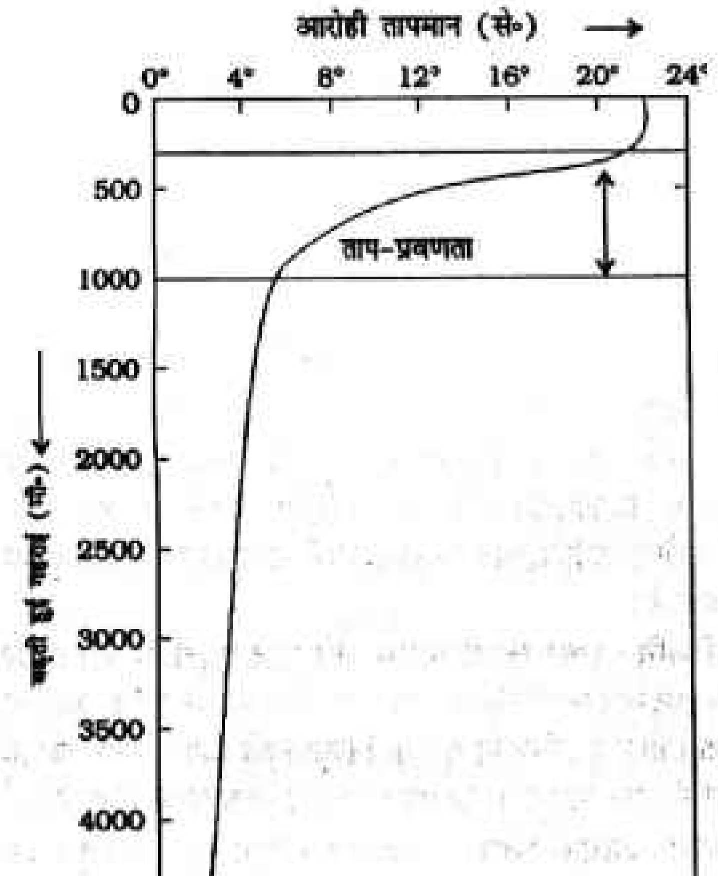

परत	मोटाई	तापमान
ऊपरी परत	500 मी. सतह से	20°C से 25°C
मध्यवर्ती परत	500 से 1000 मी	22°C से 5°C
निचली परत	1000 मी. से नीचे	0°c से 2°C

लवणता

समुद्री जल की लवणता से तात्पर्य–समुद्री जल में घुले हुये नमक की मात्रा से है इसे प्रति हजार ग्राम जल में घुले हुये नमक (ग्राम में) की मात्रा के रूप में मापते है। इसे प्रति 1000 भाग (%) या PPT के रूप में व्यक्त करते है। इसमें सोडियम क्लोराइड की मात्रा लगभग 78%, मैग्नीशियम क्लोराइड 11%, मैग्नीशियम सल्फेट 4.7% और शेष भाग अन्य अनेक लवणों का होता है।

लवणता को प्रभावित करने वाले कारक

- क्षेत्र में वाष्पीकरण एवं वर्षण की मात्रा
- नदियों द्वारा लाया गया जल
- ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम का पिघलना
- महासागरीय धारायें एवं पवनें

> टर्की की वान झील (330%)एवं जार्डन एवं इसराइल की सीमा पर स्थित मृत सागर (238%) सर्वाधिक लवणता युक्त है।

लवणता का क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर वितरण

- सभी महासागरों की औसत लवणता 35%(प्रति हजार) है
- स्थल से घिरे समुद्रों की लवणता खुले महासागरों से अधिक होती है।
- उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण की मात्रा अधिक होने एवं सनातमी पवनें के चलने के कारण लवणता अधिक होती है।
- ध्रुवों की ओर लवणता कम पाई जाती है।

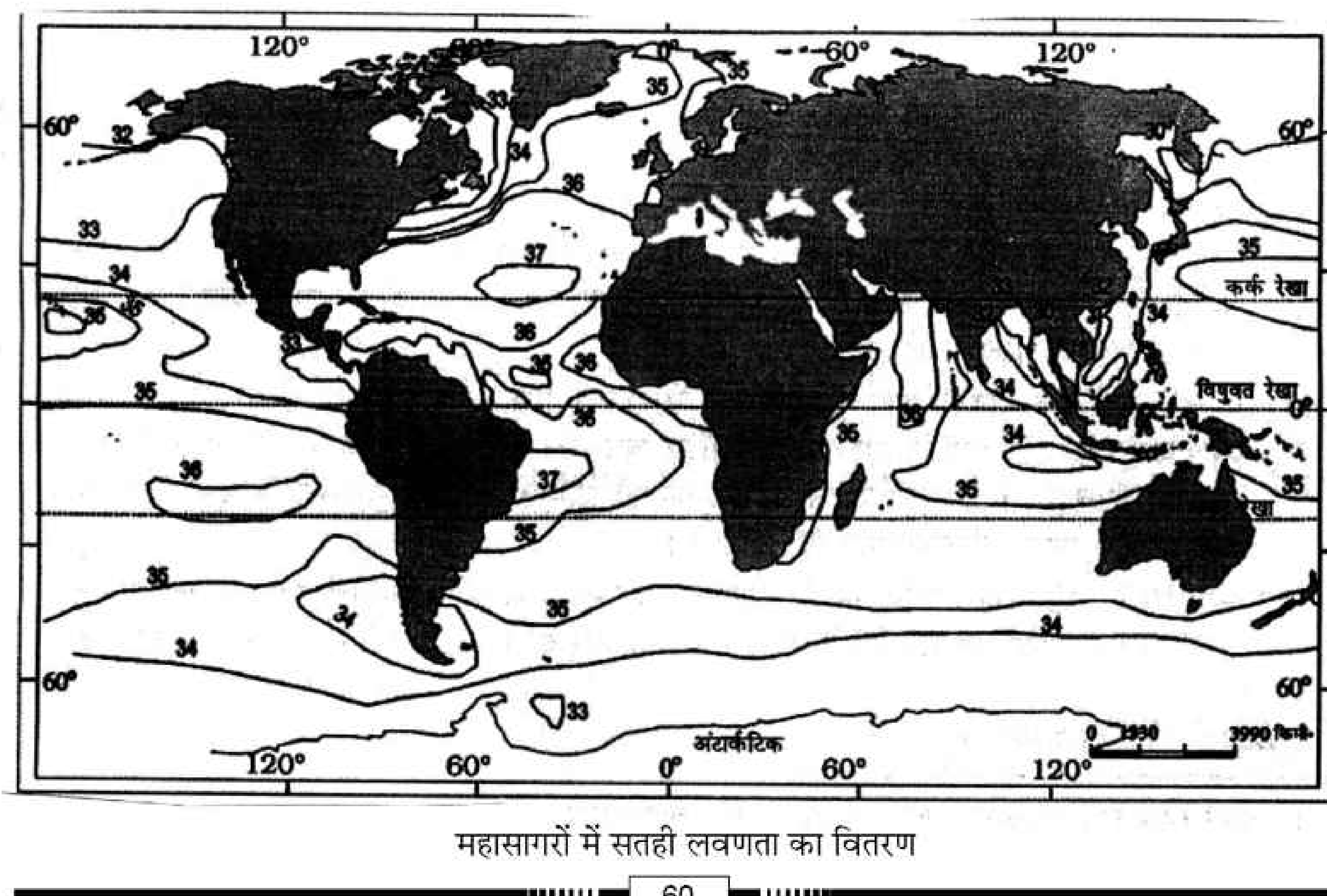

महासागरों में सतही लवणता का वितरण

अध्याय - 6

महासागरीय जल संचलन

महासागरीय जल लगातार गतिमान रहता है। महासागरों का तापमान, घनत्व एवं लवणता सर्वत्र एक समान नहीं रहते। साथ ही सूर्य-चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल एवं पवनों का बल भी लगता रहता है। इन कारणों से महासागरीय जल में मुख्यत: तीन प्रकार की गतियाँ होती है :

- तरंगे
- ज्वार भाटा
- धारायें

तरंगे : तरंगे वास्तव में जलकणों का एक ही स्थान पर ऊपर एवं नीचे होने की गति (दोलन) है। तरंग में जल आगे नहीं जाता वरन् ऊर्जा आगे जाती है।

कारण : ● सागर तल पर पवनों के घर्षण से जल तरंगों के रूप में गति मान हो जाता है।

● समुद्र की तली में भूकम्प की उत्पत्ति से बहुत बड़ी एवं ऊँची तरंगे बनती है, जैसे सुनामी।

तरंगों की विशेषतायें : तरंगे महासागरीय जल में क्षैतिज संचलन है। वायु की गति से इनके आकार में अन्तर आता है। तरंग की ऊँचाई लम्बाई, आदि चित्र द्वारा स्पष्ट है :

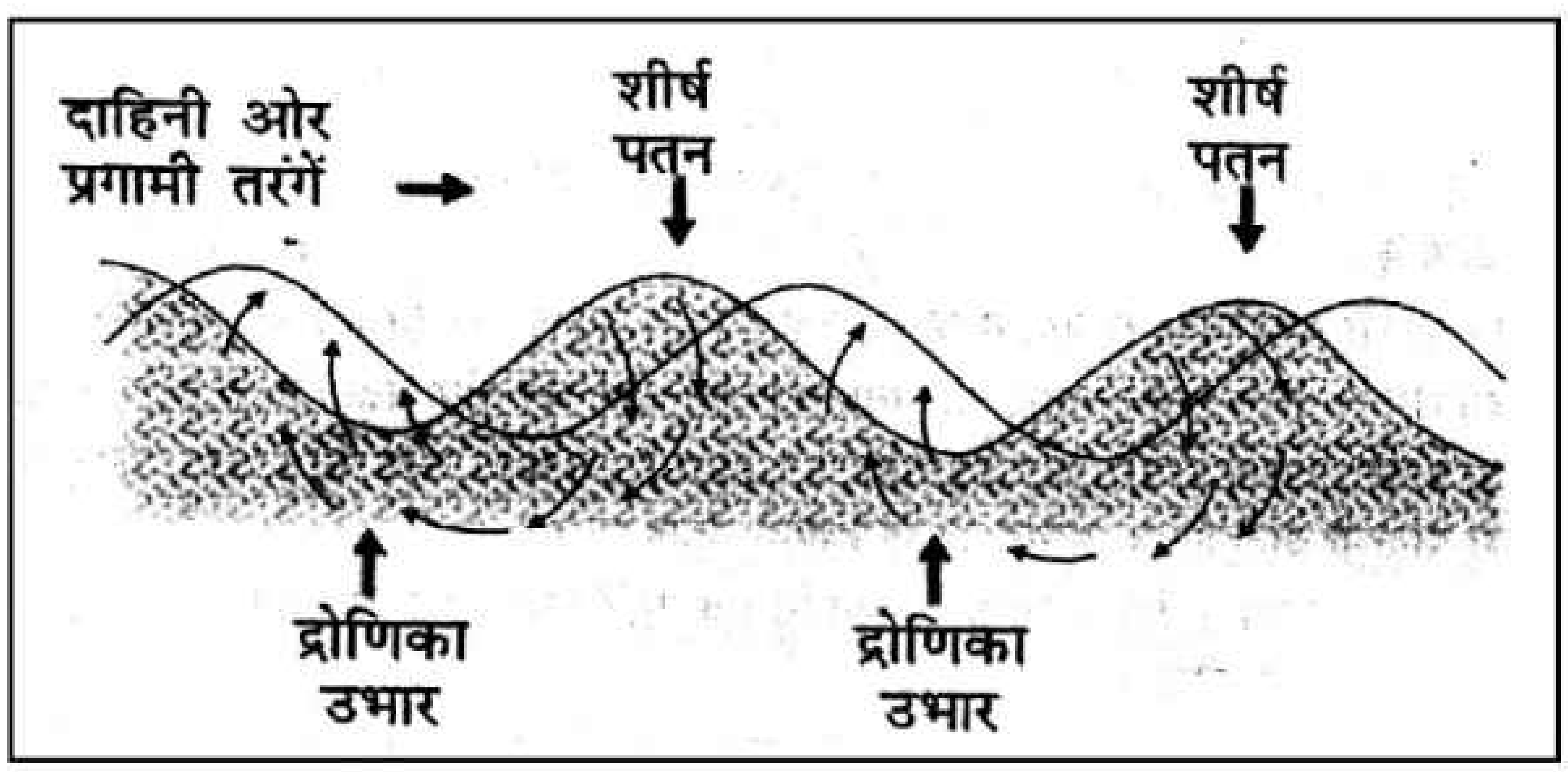

तरंगों की गति

तरंगों के प्रकार

- Sea Waves
- Swell/महातरंग
- SURF सर्फ

6.3 **ज्वार भाटा :** किसी खास स्थान पर महासागरीय जल एक दिन में दो बार ऊपर उठता है और पुन: नीचे चला जाता है। यह प्रक्रिया एक निश्चित समय पर होती है। इसी को ज्वार-भाटा (Tide-ebb) कहते है। यह सागरीय जल का उर्ध्वाधर संचलन है।

कारण : ● चन्द्रमा एवं सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल

● पृथ्वी के घूर्णन द्वारा उत्पन्न अपकेन्द्रीय बल

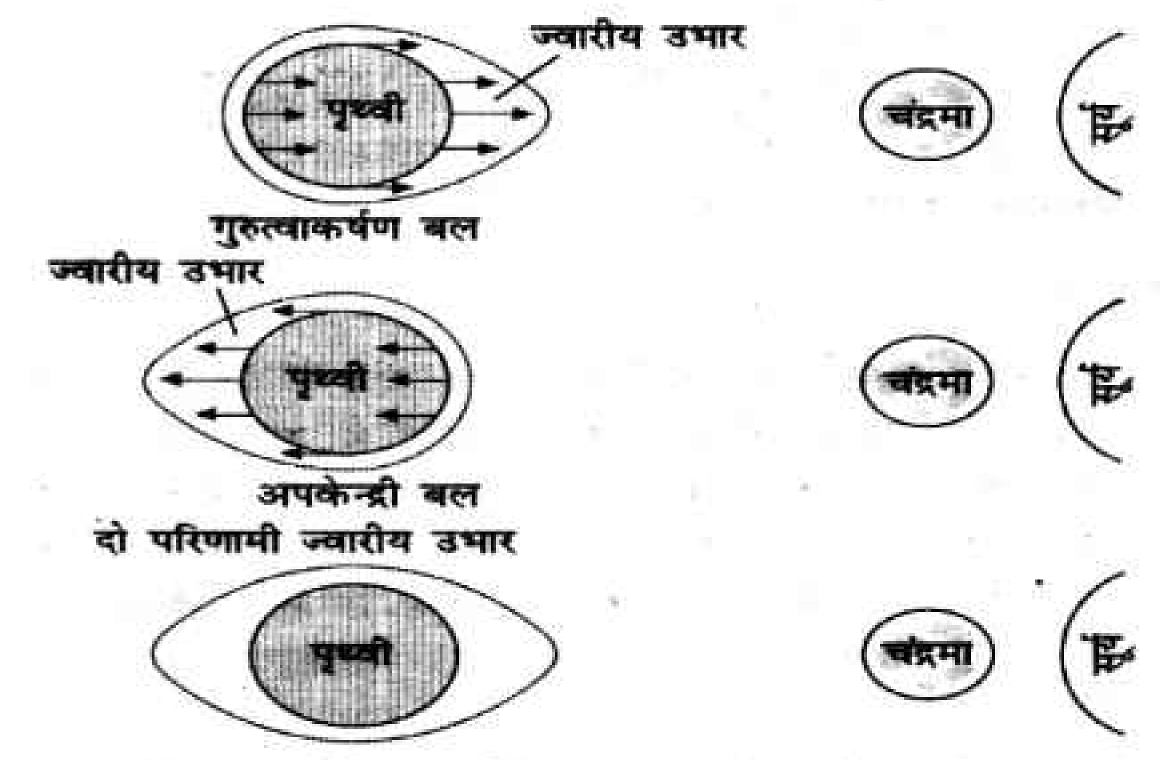

: गुरुत्वाकर्षण बल और ज्वारभाटा के मध्य संबंध

गुरुत्वाकर्षण बल एवं अपकेन्द्रीय बल दोनो मिलकर पृथ्वी पर ज्वारा भाटा उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी है चन्द्रमा की तरफ वाले भाग पर एक ज्वार भाटा उत्पन्न होता है तो दूसरी तरफ अपकेन्द्रीय बल के द्वारा।

ज्वारीय भित्ति : ज्वार के कारण नदी में उत्पन्न दीवार जैसी ऊँची लहर को ज्वार नद मुख कहते है।

प्रकार : ज्वार भाटा किसी स्थान पर कितनी बार आते है, इस आधार पर ये तीन प्रकार के होते है।

- **अर्ध दैनिक ज्वार :** प्रत्येक दिन 2 बार उच्च तथा दो बार निम्न ज्वार आते है।
- **दैनिक ज्वार :** दिन में एक बार उच्च और एक बार निम्न ज्वार आता है। दोनों प्रकार की ज्वार की ऊँचाई समान होती है।
- **मिश्रित ज्वार :** ऊँचाई में भिन्नता वाले ज्वार भाटा को मिश्रित ज्वार भाटा कहते है।

सूर्य-चन्द्रमा एवं पृथ्वी की स्थित पर आधारित प्रकार

- **वृहत् ज्वार (Sping Tide) :** जब पृथ्वी-चन्द्रमा एवं सूर्य एक सीध में स्थित होते है और चन्द्रमा एवं सूर्य की सम्मिलित गुरुत्व शक्ति से जल काफी ऊपर उठ जाता है।
- **निम्न ज्वार (Neap Tide) :** जब पृथ्वी से चन्द्रमा एवं सूर्य समकोण की स्थिति में होते है तो गुरुत्व बल अलग-अलग बँट जाता है तो निम्न ज्वार आता है।

महत्व : • ज्वार नदियों के किनारे पर स्थित पोताश्रयों का डिसिल्टेशन (अवसाद की सफाई) कर देता है।

• ज्वारों की शक्ति का उपयोग विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है।

• मछुआरों को उनके कार्य में मदद करता है।

महासागरीय धारायें

महासागरों में वृहत् मात्रा में जल के निश्चित मार्ग व दिशा में नियमित प्रवाह को धारायें कहते है।

धाराओं की उत्पत्ति के कारक

- **सौर ऊर्जा से जल का गरम होना :** जिसके कारण जल गर्म होकर हल्का हो जाता है। विषुवत वृत्त के पास जहाँ जल अधिक गर्म होता है, वहाँ महासागरीय जल मध्य अक्षांशों की अपेक्षा कुछ से.मी. ऊँचा उठ जाता है। फलस्वरूप विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर धारायें चलती है।

- **पवनें :** पवनें समुद्री सतह पर दबाव व घर्षण करती हुई आगे बढ़ती है। इससे जल वायु की दिशा में गतिशील हो जाता है।

- **कोरियालिस बल :** इसके कारण उत्तरी गोलार्द्ध में महासागरीय जल की गति अपनी इंगित दिशा से दायी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी इंगित दिशा से बायी ओर होती है।

- **पानी के घनत्व में अंतर :** लवणता में भिन्नता के कारण घनत्व में अंतर आ जाता है। अधिक लवणता वाला जल अधिक घनत्व वाला होने के कारण नीचे बैठ जाता है और कम लवणीय भाग से जल अधिक लवणीय भाग की ओर प्रवाहित होता है।

- **तट की आकृति :** तट की आकृति भी धाराओं की दिशा एवं गति को प्रभावित करती है जैसे दक्षिणी विषुवतीय धारा ब्राजील के तट से टकराकर दक्षिणी की ओर मुड़ जाती है।

महासागरीय धाराओं के प्रकार

गहराई के आधार पर

- **ऊपरी या सतही जलधारा :** ये धाराये महासागरों में 400 मी. की गहराई तक उपस्थित है।

- **गहरी जलधारा :** ये जलधारायें उच्च अक्षांश वाले उन क्षेत्रों में बहती है जहाँ कम तापमान के कारण जल का घनत्व अधिक होता है। ये जल धारायें ठंडे प्रदेशों से गर्म क्षेत्रों की ओर नीचे-नीचे बहती है।

तापमान के आधार पर

- **गर्म जलधारा :** ये धारायें गर्म प्रदेशों से ठंडे क्षेत्रों की ओर बहती है और प्राय: महाद्वीपों के पूर्वी तटों पर बहती है।

- **ठंडी जलधारा :** ये अधिकतर महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर बहती है और ठंडा जल गर्म क्षेत्रों मे लाती है।

महासागरीय धाराओं की विशेषताये :

- उत्तरी गोलार्द्ध में धाराओं का प्रवाह घड़ी की सुइयों के चलने की दिशा की ओर एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में होता है।

- निम्न अक्षांश से उच्च अक्षांश की ओर चलने वाली धाराये गर्म एवं उच्च अक्षांशों से निम्न अक्षांशों की ओर चलने वाली धारायें ठंडी होती है।

- निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर गर्म धारायें सामान्यत महाद्वीपों के पूर्वी तट के सहारे चलती है। जैसे अटलांटिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम।
- ध्रुवीय एवं उपध्रुवीय क्षेत्रों से मध्य अक्षांशों की ओर पूर्वी तटों के सहारे बहने वाली धारायें ठंडी होती है। जैसे अटलांटिक महासागर में लैब्राडोर जलधारा।

महासागरीय धाराओं के प्रभाव :

- जलधारायें जिन तटों से बहती है उन तटों की जलवायु धाराओं के गर्म या ठंडा होने से प्रभावित होती है। यूरोप का पश्चिमी तट, उत्तरी अमेरिका के उन्ही उच्च अक्षांशों पर स्थित पूर्वी तट की अपेक्षा अधिक गरम होता है क्योंकि नार्वे की गर्म धारा इस तट की जलवायु को गर्म एवं सुखद बना देती है जब कि लैब्राडोर की ठंडी धारा उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट को ठंडा कर देती है।
- जहाँ गर्म एवं ठंडी धारायें मिलती है वहाँ प्लैंकटन नामक वनस्पति की अधिकता हो जाती है जो मछलियों का प्रमुख भोजन है। अत: ये क्षेत्र संसार के प्रमुख मत्स्य क्षेत्र हो जाते है।
- उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर बहने वाली ठंडी धाराये इन क्षेत्रों की शुष्क जलवायु के लिये बहुत कुछ जिम्मेदार है। ठंडी धाराओं जैसे कैनारी धारा एवं कैलीफोर्निया धारा क्रमश: अफ्रीका एवं उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तटों से होती हुई प्रवाहित होती है। इन धाराओं के ऊपर बहने वाली पवने ठंडी होने के कारण आर्द्रता को नहीं पाती और वर्षा में सहायक नहीं होती। सहारा एवं कैलीफोर्निया की शुष्क जलवायु का कारण ये धारायें भी है। गर्म धाराओं के साथ इसकी विपरीत परिस्थिति बनती हैं।

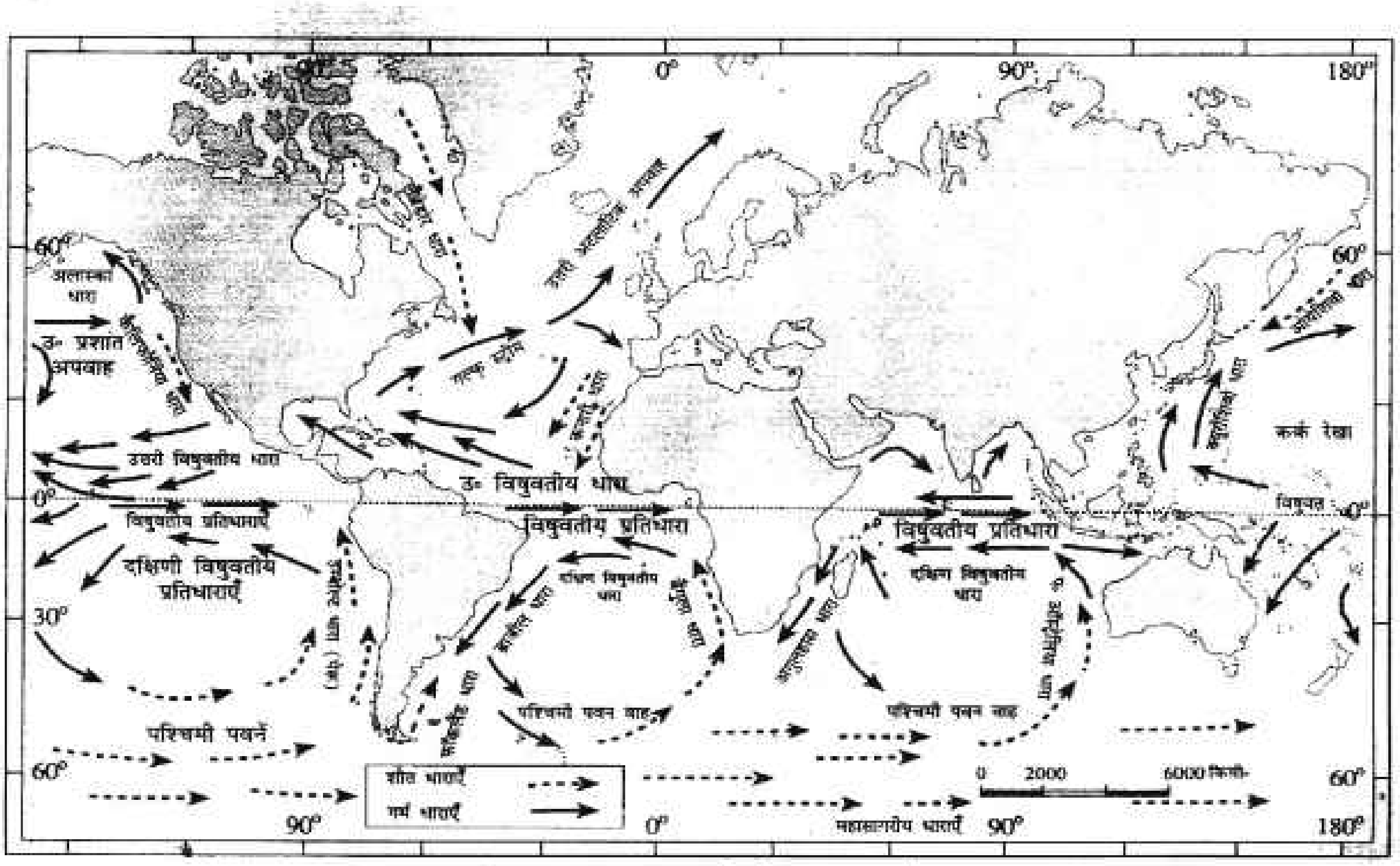

: महासागरों में प्रमुख धाराएँ

प्रमुख महासागरीय धारायें

प्रशान्त महासागर की कुछ प्रमुख धारायें

- उत्तरी विषुवतीय गर्म धारा
- क्यूरोशियो गर्म धारा
- उत्तरी प्रशांत गर्म धारा
- कैलीफोर्निया की ठंडी धारा
- ओयोशियो की ठंडी धारा
- ओखोटस्क या क्यूराइल ठंडी धारा
- पेरू धारा (ठंडी)
- विपरीत विषुवतीय धारा

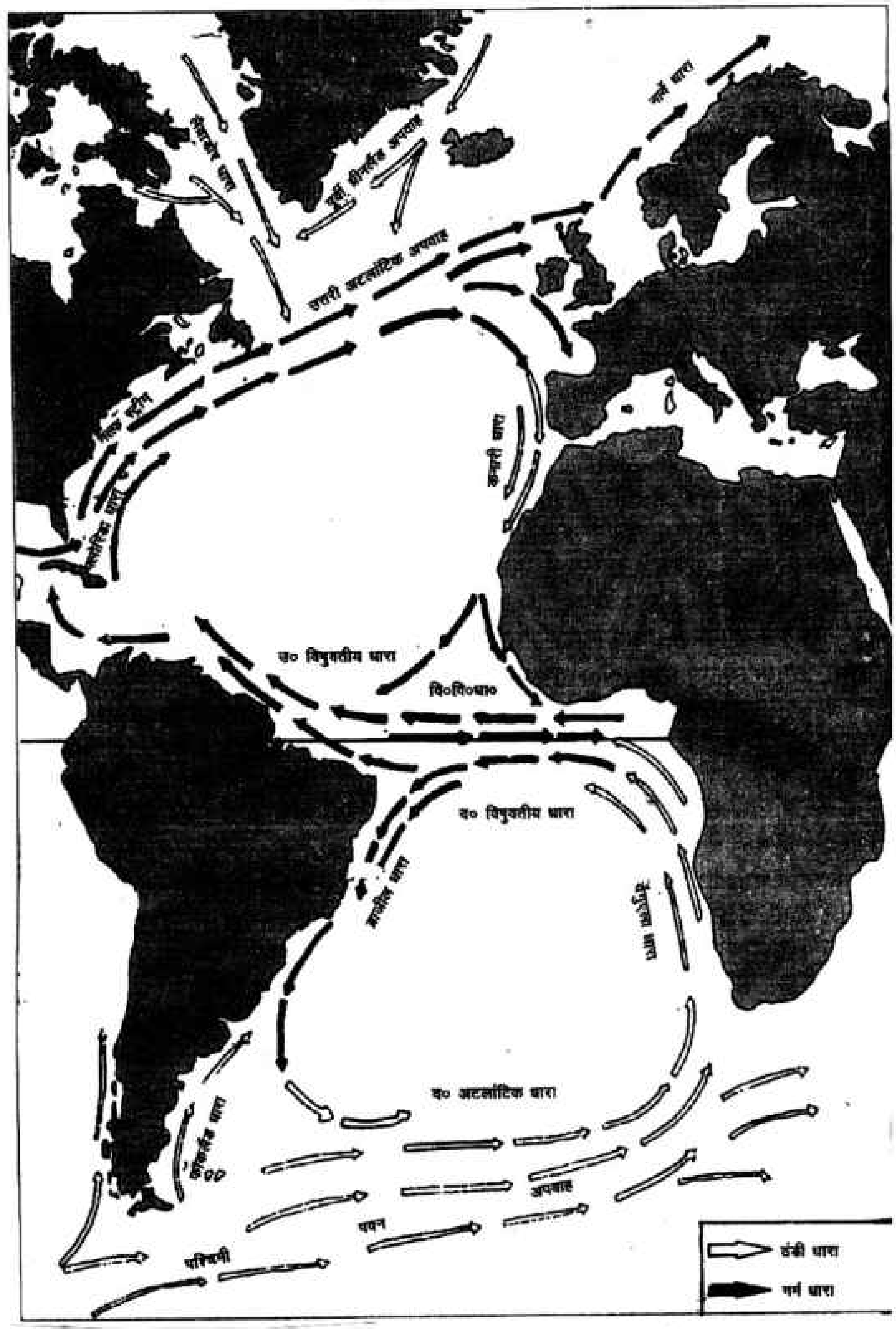

अटलांटिक महासागर की धाराएँ

अंटलांटिक महासागर की कुछ धारायें

- फ्लोरिडा की गर्म धारा
- गल्फ स्ट्रीम की गर्म धारा
- कनारी ठंडी धारा
- लैब्रोडोर ठंडी धारा
- फॉकलैंड की ठंडी धारा
- वेनेजुयेला की ठंडी धारा

हिंद महासागर

- आगुलहास गरम धारा
- दक्षिणी हिंद गरम धारा
- पश्चिमी आस्ट्रेलिया ठंडी धारा

मानचित्र कार्य-

1. कोई पांच गर्म एवं ठंडी धाराओं को संसार के मानचित्र पर दर्शाइए।
2. वायु दाव पेटियों को संसार के मानचित्र पर दर्शाइए।

क्रियाकलाप-

1. भारत में आने वाले चक्रवातों की चर्चा करें।

2. जलवायु परिवर्तन से भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, विस्तार से प्रस्तुतीकरण करवाऐं।

इकाई - III : भारत का भौतिक भूगोल

अध्याय – 1 : भारत की संरचना व भू–आकृति

अध्याय – 2 : अपवाह तन्त्र

अध्याय – 3 : जलवायु

अध्याय – 4 : प्राकृतिक वनस्पति

अध्याय – 5 : मृदा

अध्याय – 6 : प्राकृतिक संकट और आपदाएँ

अध्याय-1

भारत : संरचना तथा भू-आकृति विज्ञान

भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का सातवां बड़ा देश है। अंतर्जनित व बहिर्जनिक बलों व प्लेट के क्षैतिज संचरण के कारण भारत के धरातलीय स्वरूप में अनेक विभिन्नताएं हैं। यहां विश्व के ऊँचे पर्वत, अति प्राचीन पठारी क्षेत्र तथा विस्तृत मैदान है। भारत के संपूर्ण क्षेत्रफल का लगभग 29 प्रतिशत भाग पर्वतीय एवं पहाड़ी, 28 प्रतिशत भू-भाग पठारी तथा शेष 43 प्रतिशत भू-भाग मैदानी है। भारत के भूगभिक इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ विश्व की अति प्राचीन से लेकर नीवनतम चट्टानें मिलती हैं। निम्नलिखित भू वैज्ञानिक समय सारणी से विस्तार से समझा जा सकता है :-

भू-वैज्ञानिक समय सारणी

महाकल्प (Era)	**कल्प (Period)**	**युग (Epoch)**	**कब से शुरू (करोड़ वर्षों में)**	**भारत के भू-आकृतिक विभागों से संबंध**
(1) नूतन जीव (Cenozoic)	चतुर्थक (Quaternary)	न्यूनतम (Holocene)	0.001 0.3	
		अत्यंत नूतन (Pleistocene)		हिमालय का उत्थान होता रहा।
	तृतीयक (Tertiary)	अति नूतन (Pliocene)	1.2	शिवालिक श्रेणी का निर्माण। हिमालय का उत्थान होता रहा।
		मध्य नूतन (Miocene)	2.65	पाकिस्तान के पोटवार का निर्माण
		अल्पनूतन (Oligocene)	4.0	हिमालय के केन्द्रीय भाग का उत्थान।
		आदि नूतन (Eocene)	6.0	टेथिस का तलछट सागर तक ऊपर उठना शुरू
		पुरा नूतन (Palaeocene)	7.0	कराकोरम व संबद्ध श्रेणियों का निर्माण

महाकल्प (Era)	कल्प (Period)	कब से शुरू (करोड़ वर्षों में)	भारत के भू-आकृतिक विभागों से संबंध
(2) मध्य जीव (Mesozoic)	क्रिटेशिस (Cretaceous)	13.5	
	जुरासिक (Jurassic)	18.0	
	ट्रियासिक (Triassic)	22.65	
(3) ऊपरी पुराजीव (Upper Palaezoic)	परमियन (Permian)	27.0	
	कार्बोनिफेरस (Carboniferrous)	35.0	
	डिवोनी (Devonian)	40.0	
(4) निम्न पुराजीव (Lower Palaeozoic)	सिल्यूरियन (Silurian)	44.0	अरावली पर्वत श्रेणी का निर्माण।
	औरडोविशियन (Ordovician)	50.0	
	कैंब्रियन (Cambrian)		60.0
(5) पूर्व कैंब्रियन (Pre Cambiran)		साठ करोड़ वर्षों से पहले	प्रायद्वीपीय पठार का निर्माण

भारत के भू वैज्ञानिक भाग

प्रायद्वीपीय भाग	हिमालय और अन्य अतिरिक्त प्रायद्वीपीय पर्वत मालाएं	सिंधु-गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान
• पूर्व कैंब्रियन महाकल्प के अवसादों से निर्मित	• टेथिस भू-अभिनति से उत्पत्ति मानते हैं।	• इनका निर्माण लगभग 6.5 करोड़ वर्ष पहले प्रारम्भ (हिमालय पर्वतमाला निर्माण प्रक्रिया के बाद)
• निर्माण के बाद कभी समुद्र में नहीं डूबा।	• आज सर्वमान्य विचार है कि इनके निर्माण का प्रमुख कारण प्लेट विर्वतनिकी है।	• मूलत: भू-अभिनति गर्त है हिमालय और प्रायद्वीप से निकलने वाली नदियां अपने अवसादों से निर्माण का रही है।
• मुख्यत: प्राचीन नीस व ग्रेनाइट से बना है। • कठोर भू-भाग • नर्मदा, तापी और महानदी की रिफ्ट घाटियां तथा सतपुड़ा ब्लाक पर्वत उदाहरण है। • अरावली, अन्नामलाई पहाड़ियों का निर्माण।	• निर्माण प्रक्रिया आज भी चल रही है। इन पर्वतों को नवीन बलित पर्वत कहा जाता है। जैसे हिमालय।	• जलोढ़ की औसत गहराई 1000 से 2000 मीटर है।

भू अभिनति (Geosyncline)

भूपर्पटी पर बनी लंबी विशाल खाई जिसमें दोनों ओर के भू-भागों से रेत, मिट्टी आकर अवसाद के रूप में जमा होते रहते हैं। खाई का तल नीचे धसता जाता है। इस प्रकार अवसादों की मोटी परतें जमा हो जाती हैं।

भारत के भू आकृतिक विभाग :

(i) उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी पर्वत माला

(ii) उत्तरी भारत का मैदान

(iii) प्रायद्वीपीय पठार

(iv) भारतीय मरुस्थल

(v) तटीय मैदान

(vi) द्वीप समूह

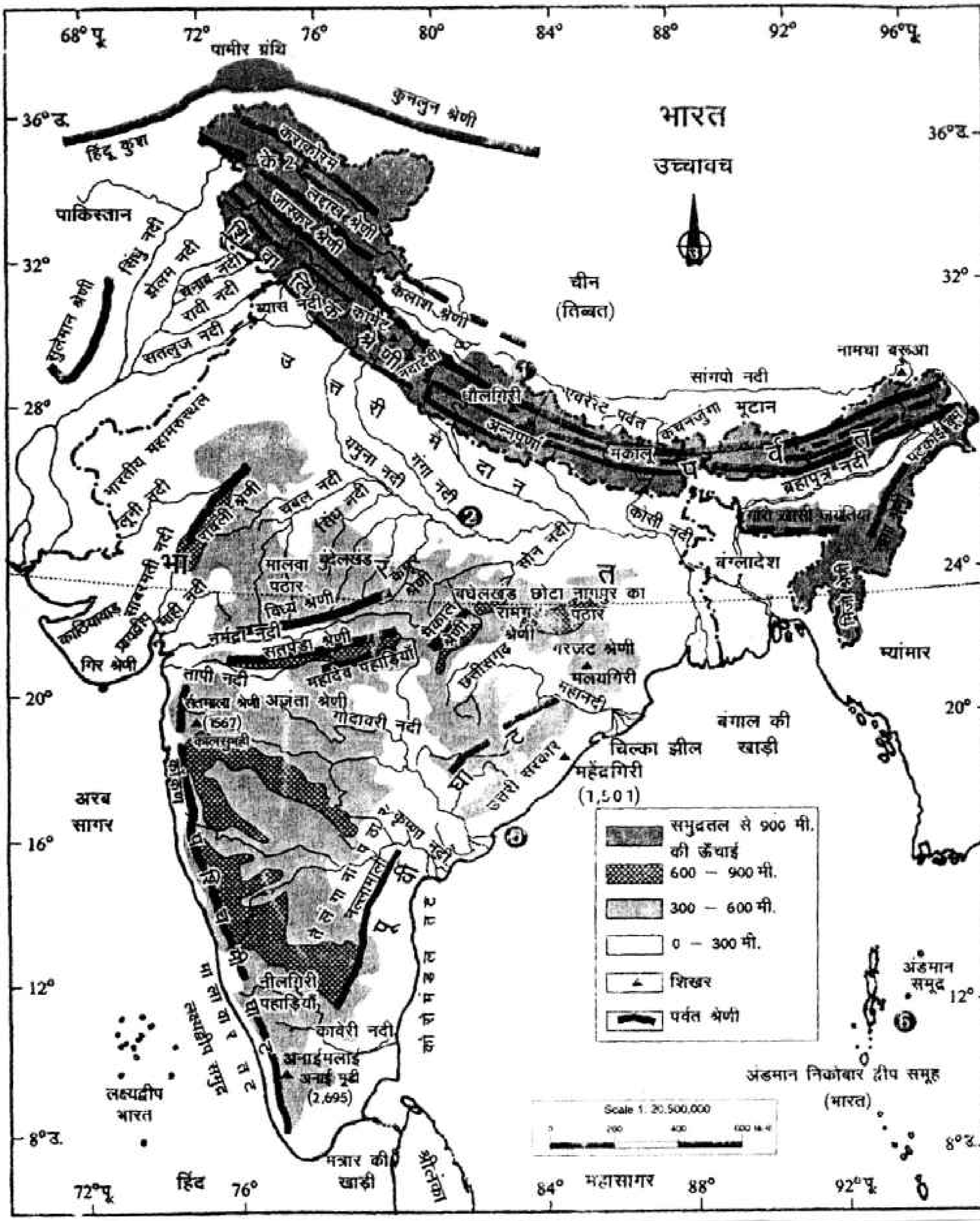

भारत के भू-आकृतिक भाग

(1) उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी पर्वतमाला :

इस भू-आकृति भाग में हिमालय तथा उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों को शामिल किया जाता है।

हिमालय का भौगोलिक वर्गीकरण या समानांतर श्रेणियां

वृहत हिमालय या महान हिमालय	**मध्य हिमालय**	**उप-हिमालय या शिवालिक**
• हिमालय की सबसे ऊंची उत्तरी पर्वत श्रृंखला है। यह हिमाद्री के नाम से जाना जाता है। सदैव बर्फ से ढकी रहती है।	• यह श्रेणी वृहत हिमालय के दक्षिण में फैली है।	• हिमालय के सबसे दक्षिण में स्थित इस श्रेणी की चौड़ाई 10 से 50 कि.मी. है।
• इसका विस्तार सिंधु नदी के मोड़ से ब्रह्मपुत्र नदी के मोड तक 2400 किमी. लंबाई में चाप के आकार में फैला है। इसकी औसत चौड़ाई 25 किमी है।	• इसका चौड़ाई में विस्तार लगभग 60 से 80 किमी. है।	• औसत ऊँचाई 600 मीटर।
• इस श्रेणी की औसत ऊंचाई 6000 मीटर है। अनेक चौटियां 8000 मीटर से भी अधिक ऊंची है। माउंट एवरेस्ट (8850 मी.) इसी श्रेणी में है।	• कश्मीर स्थित पीर पंजाल, हिमाचल में धौलाधार प्रसिद्ध पर्वत श्रेणियां हैं।	• मध्य हिमालय तथा शिवालिक के बीच कुछ चौडी घाटियां है जिन्हें पश्चिमी में दून तथा पूर्व में द्वार कहते हैं। जैसे देहरादून, हरिद्वार, कोटद्वार आदि।
• अन्य प्रमुख चोटियां-कंचनजुंगा, मकालू, धौलागिरि, नंगा पर्वत, अन्नपूर्णा आदि हैं।	• भारत के प्रमुख पर्वतीय पर्यटक स्थल शिमला, मसूरी, नैनीताल अल्मोडा, दार्जलिंग, डलहौजी आदि इसी में हैं। • कश्मीर, कांगड़ा एवं कुल्लू, काठमांडू आदि प्रसिद्ध घाटियां है।	

करेवा : कश्मीर हिमालय में हिमनद, चिकनी मिट्टी और दूसरे पदार्थों का हिमोढ़ के रूप में निक्षेपित पदार्थों को करेवा के नाम से जाना जाता है।

कश्मीर या उत्तर पश्चिमी हिमालय	• कराकोरम, लद्दाख, जास्कर और पीर पंजाल प्रमुख पर्वत श्रेणी। • कश्मीर हिमालय का उत्तर पूर्वी भाग जो वृहत हिमालय और कराकोरम श्रेणियों के मध्य स्थित एक ठंडा मरुस्थल है।

हिमालय का क्षेत्रीय वर्गीकरण

	• जोजीला, पीर पंजाल, बनिहाल, आदि प्रमुख दर्रे हैं। • सिंधु तथा उसकी सहायक नदियां झेलम, चेनाब , रावी, व्यास एवं सतलुज प्रमुख हैं। डल, बुलर (अलवनीय जल) पाँगाँग सो, सोमुरीरी (लवणीय जल) प्रमुख झीलें हैं। • करेवा क्षेत्र में सेफ्रॉन की खेती की जाती है।
हिमाचल और उत्तरांखंड हिमालय	• पश्चिम में रावी नदी और पूर्व में काली (घाघरा की सहायक नदी) के बीच स्थित हैं। • हिमालय की तीनों श्रेणियां (वृहत, मध्य, शिवालिक) इसी क्षेत्र में है। • दून घाटियां प्रसिद्ध है। देहरादून सबसे बड़ी है। • धर्मशाला, मसूरी, कसौली, अलमोड़ा, लैसडाउन, रानीखेत आदि पर्वत नगर है। • फूलों की घाटी, गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, हेमकुड साहिब इसी क्षेत्र में स्थित है।
दार्जलिंग और सिक्किम हिमालय	• पूर्व में भूटान हिमालय, पश्चिम में नेपाल हिमालय के मध्य स्थित है। • तिस्ता, जैसी तेज बहाव वाली नदियां, कंचनजुंगा जैसे उच्च शिखर तथा गहरी घाटियां प्रमुख विशेषता है। • लैप चा प्रमुख जन जाति है। • चाय बागानों के लिए उपयुक्त है। • दार्जिलिंग एवं गंगटोक प्रमुख पर्यटक स्थल है।
अरूणाचल हिमालय	• इसका विस्तार भूटान हिमालय से डिफू दर्रे तक है। • कांगतु और नामचा बरवा प्रमुख चोटियां हैं। • उत्तर से दक्षिण दिशा में तेज बहती नदियां गहरे गॉर्ज का निर्माण करती है। • ब्रह्मपुत्र, दिहांग, दिबांग, लोहित आदि प्रमुख नदियां है।

	• मोनपा, अबोर, मिशमी, निशी, नागा आदि प्रमुख जन जातियां हैं। • झूम खेती के लिए प्रसिद्ध है।
पूर्वी पहाडियां और पर्वत	• अरूणाचल के बाद पवर्तों की दिशा उत्तर दक्षिण हो जाती है जिसे पूर्वांचल की पहाडियां कहा जाता है। • पहाडियां कम ऊंचाई वाली है। • पटकोई बूम, नागा, मणिपुर, मिजो या लुशाई प्रमुख पहाड़ियाँ हैं। • बराक मणिपुर व मिजोरम की मुख्य नदी है। • मिजोरम जिसे मोलेसिस बेसिन कहा जाता है। असंगठित चट्टानों से बना है।

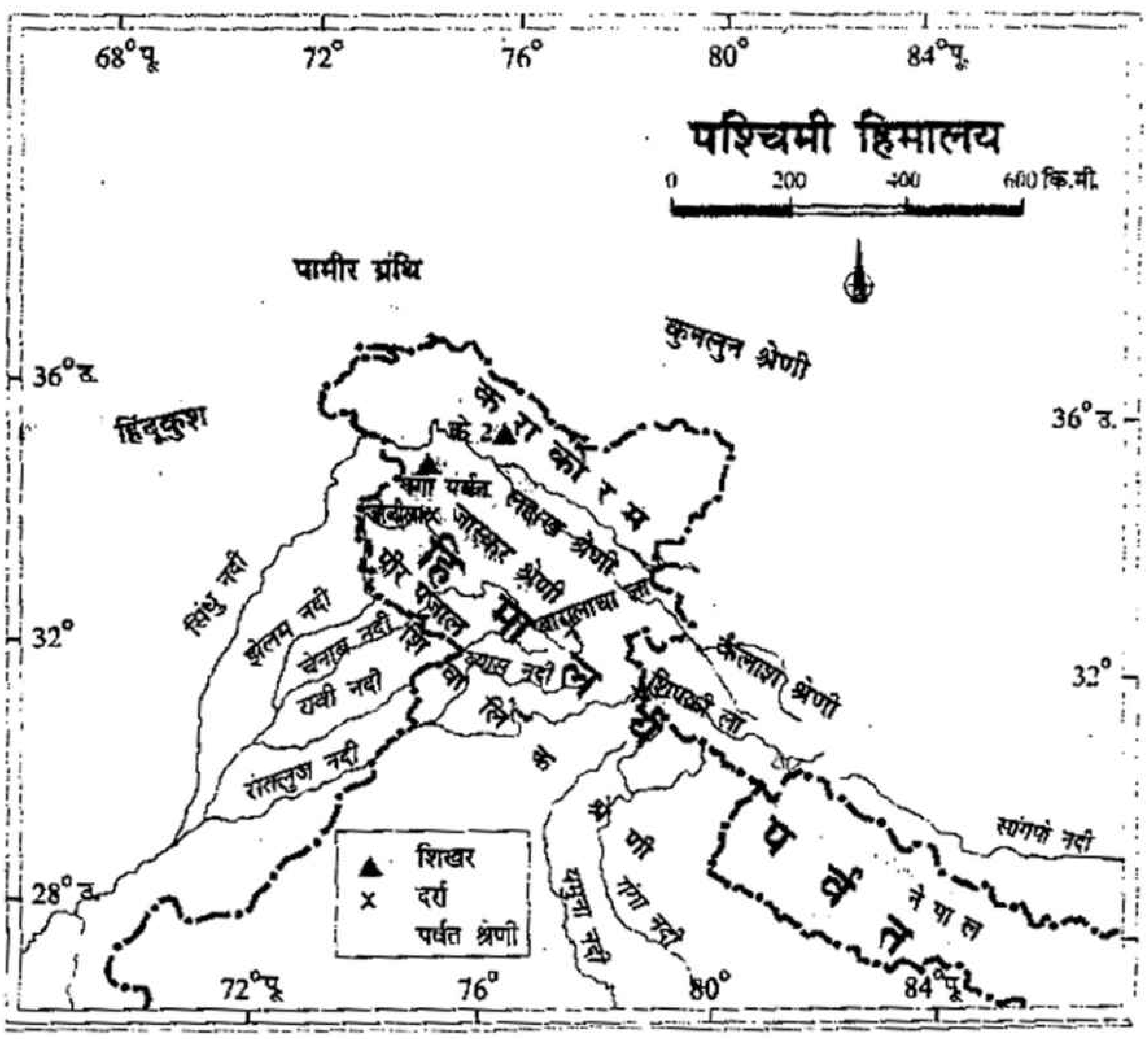

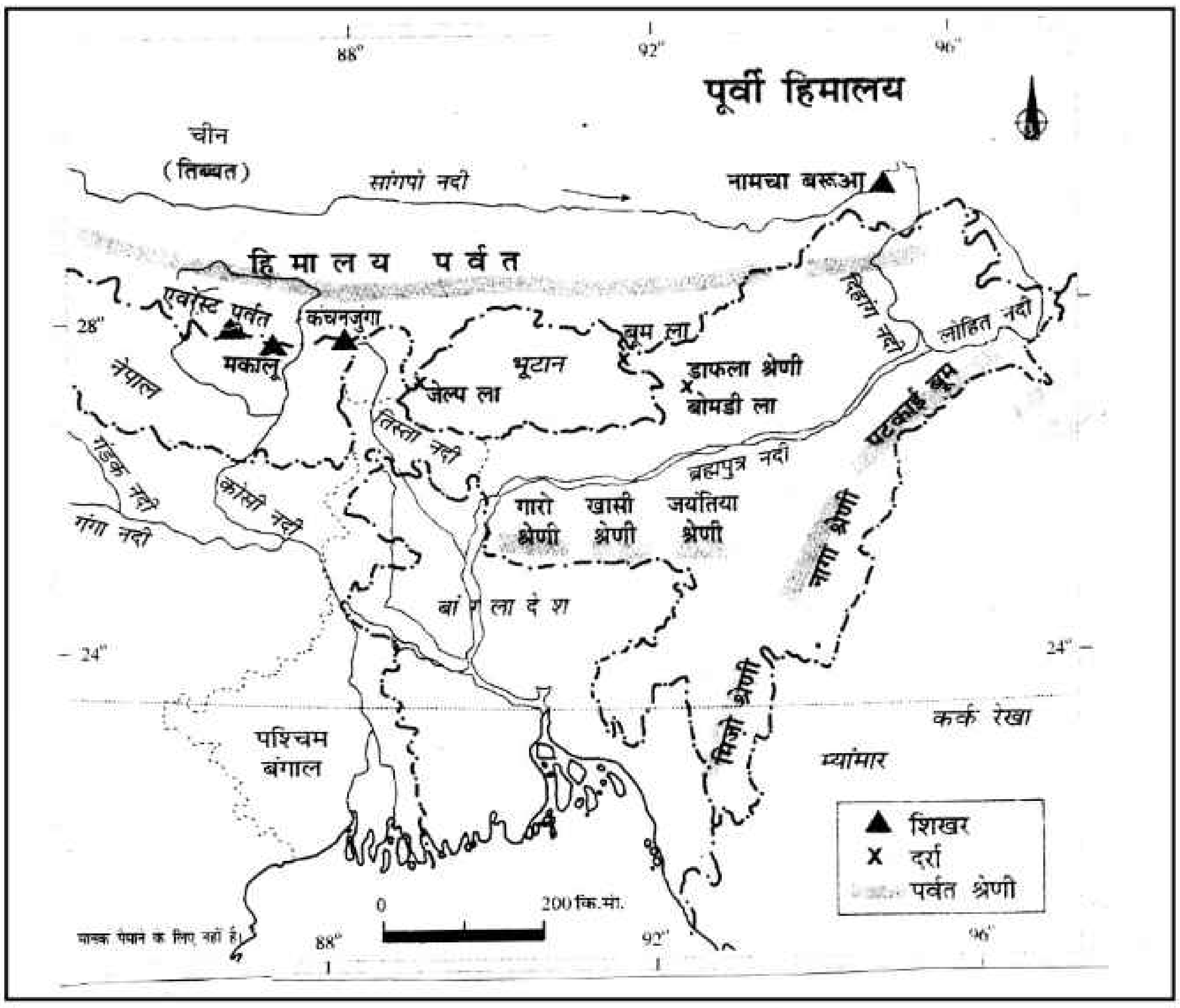

(2) उत्तरी भारत का मैदान

- इसका निर्माण सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र और इनकी सहायक नदियों द्वारा जलोढ़ निक्षेप से हुआ।
- पूर्व से पश्चिम लंबाई लगभग 3200 कि.मी. है। इसकी औसत चौड़ाई 150 से 300 किमी. है।
- भारत की सभ्यता और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।
- उपजाऊ मृदा, उपयुक्त जलवायु, पर्याप्त जलापूर्ति के कारण कृषि उत्पादन के लिए विशेष महत्व।

उच्चावच के आधार पर मैदान का विभाजन

भाभर	तराई	जलोढ़	
• 8 से 10 कि.मी. चौड़ाई की पतली पट्टी जो शिवालिक गिरीपाद के समानांतर फैली है।	• भामर के दक्षिण में 10 से 20 कि.मी. चौड़ी पट्टी तराई कहलाती है।	खादर	बागर
• कंकड बजरी रेत से निर्मित है।	• लुप्त नदियों का धरातल पर निकलना। अनूप का निर्माण	• नवीन जलोढ़	• पुरानी जलोढ़
• छोटी नदियों का लुप्त होना इसकी विशेषता है।	• बारीक कणों से निर्मित	• बाढ़ से मिट्टी की नई परत।	• कम उपजाऊ
	• वनों से ढ़का यह वन्य प्राणियों का घर है।	• अधिक उपजाऊ	• मोटें कणों द्वारा निर्मित एवं कठोर मृदा

(3) प्रायद्वीपीय पठार :

- यह उत्तर में गंगा–सतलज मैदान तथा तीनों दिशाओं में समुद्र से घिरा हुआ है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। यह लगभग 16 लाख वर्ग किमी. में फैला हुआ है।
- इसकी औसत ऊंचाई 600 से 900 मीटर है।
- उत्तर–पश्चिम में दिल्ली, श्रेणी, पूर्व में राजमहल की पहाडियाँ, पश्चिम में गिर पहाडियां और दक्षिण में इलायची (काडमम) पहाडियां प्रायद्वीप पठार की सीमाएं निर्धारित करती हैं।
- उत्तर–पूर्व में शिलांग तथा कार्बी– ऐंगलोंग पठार भी इसी भूखंड का विस्तार माना जाता है।
- यह कटा–फटा क्षेत्र अनेक पठारों से मिलकर बना है। इनमें प्रमुख है – हजारीबाग पठार, पलामु पठार, राँची पठार, मालवा पठार, कोयेम्बटूर पठार, कर्नाटक पठार आदि।
- प्रायद्वीप की ऊंचाई पश्चिम से पूर्व की ओर कम होती जाती है।
- इस पठार के पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी भाग में मुख्य रूप से काली मिट्टी पाई जाती है।

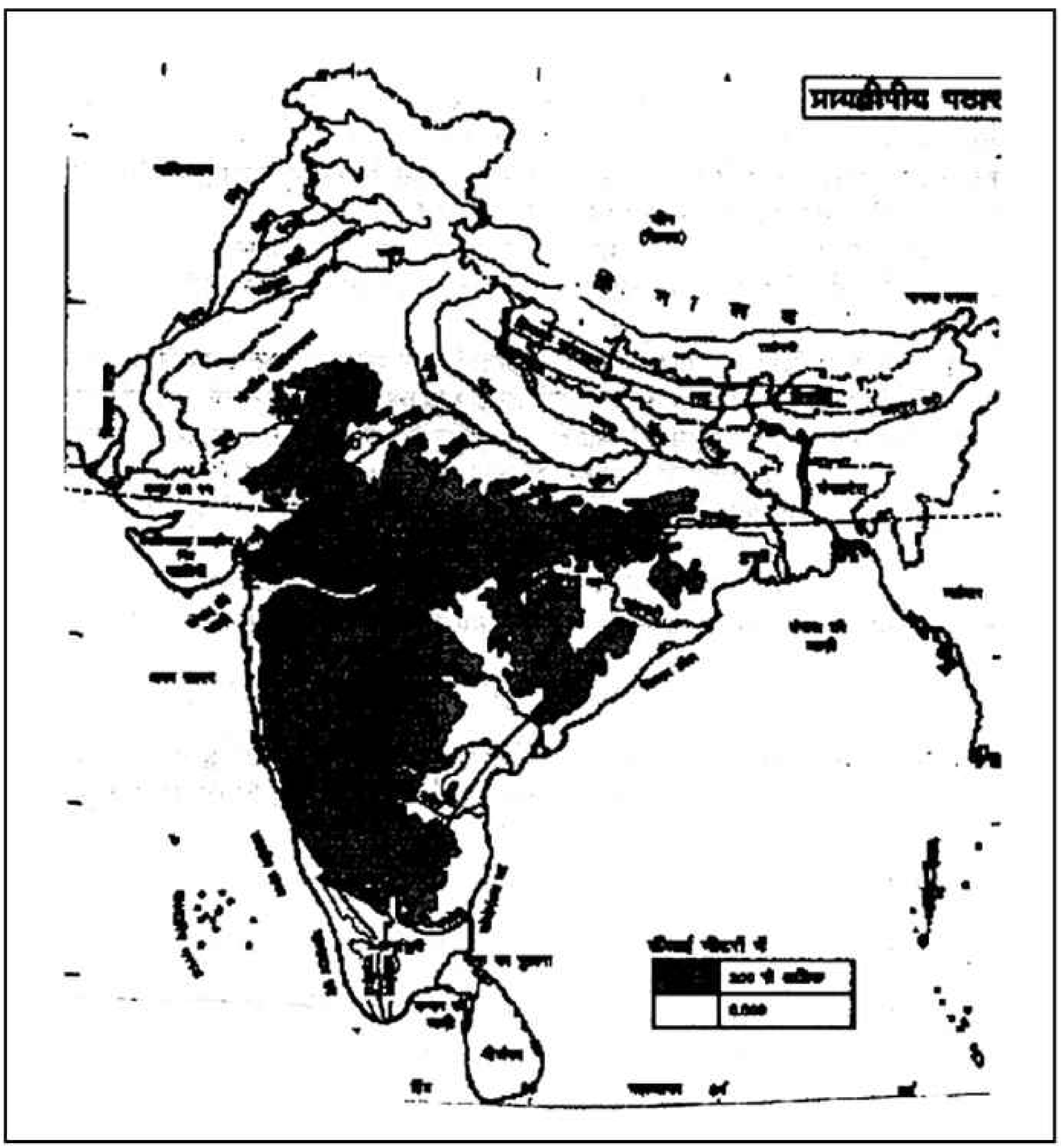

उच्चावच के आधार पर प्रायद्वीपीय पठार का विभाजन

दक्कन का पठार	मध्य उच्च भूमियां	उत्तर-पूर्वी पठार
• इसके उत्तर में सतपुडा, मैकाल और महादेव पहाडियां है। पूर्व में पूर्वी घाट, पश्चिम में पश्चिमी घाट है।	• पश्चिम में अरावली पर्वत इसकी सीमा बनाती हैं।	• यह उत्तर-पूर्वी दिशा में फैला है।
• पश्चिमी घाट की औसत ऊंचाई 1500 मीटर है। ऊंचाई उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती जाती है। सबसे ऊंची चौटी अनाईमुडी 2695 मीटर है।	• समुद्रतल से ऊंचाई 600 से 900 मीटर है।	• इसकी उत्पत्ति भारतीय प्लेट के उत्तर पूर्व दिशा में खिसकने से हुई।
• अधिकांश नदियों का उदगम पश्चिमी घाट से है।	• प्रायद्वीपीय पठार के इस भाग का विस्तार जैसलमेर तक है।	• इस क्षेत्र में निवास करने वाली तीन प्रमुख जातियों के नाम से इस पठार को तीन भागों में बांटा गया है- (i) गारो पहाडियाँ (ii) खासी पहाडियाँ (iii) जयंतिया पहाडियाँ
• महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी प्रमुख नदियां है।	• भूगर्भीय इतिहास में यह क्षेत्र कायांतरित प्रक्रियाओं से गुजरा है। संगमरमर, स्लेट और नीस इसके प्रमाण है।	• कोयला, लोहा, सिलीमेंनाइट, चूने के पत्थर यूरेनियम, जैसे खनिज पदार्थ के पर्याप्त भंडार है।
दक्कन का पठार	मध्य उच्च भूमियां	उत्तर-पूर्वी पठार
• जावादी, पालकोंडा, नल्लामाला, महेन्द्रगिरी प्रमुख पहाडियां है।	• छोटा नागपुर पठार खनिज पदार्थों का भंडार है।	
• पश्चिमी घाट को स्थानीय तौर पर अनेक नाम दिए है- महाराष्ट्र में सहयाद्रि, कर्नाटक और तमिलनाडु में नीलगिरि, केरल में अनामलाई और इलायची पहाडियां।		

(4) भारतीय मरुस्थल :

- अरावली पहाडियों से पश्चिम में स्थित यह एक ऊबड-खाबड क्षेत्र है।
- इस क्षेत्र में अनुदैर्ध्य रेतीले टीले और बरखान पाए जाते है।
- औसत वार्षिक वर्षा 15 से.मी. से भी कम होने के कारण शुष्क और वनस्पति रहित क्षेत्र है।

- मेसोजोइक काल में यह क्षेत्र समुद्र का हिस्सा था। यह तथ्य जैसलमेर के निकट ब्रह्मसर के आस-पास मिले समुद्री निक्षेपों से प्रमाणित होता है।
- ढाल के आधार पर मरूस्थल को दो भागों में बांटा जा सकता है- सिंध की ओर ढाल वाला उत्तरी भाग और कच्छ के रन की ओर ढाल वाला दक्षिणी भाग।
- अधिकतर नदियां अल्पकालिक है। लूनी महत्वूपर्ण नदी है।
- नदियां कुछ ही दूरी तय करने के बाद झील या प्लाया में मिल जाती हैं। अधिकांश प्लाया और झील खारी हैं।

(5) तटीय मैदान :

- प्रायद्वीपीय पठार के दोनों ओर तटीय मैदान फैले है।

तटीय मैदान

पश्चिमी तटीय मैदान	**पूर्वी तटीय मैदान**
• पश्चिमी तटीय मैदान जलमग्न मैदान होने के कारण एक संकीर्ण पट्टी मात्र है। पौराणिक शहर द्वारका का जलमग्न होना इसका प्रमाण है।	• पूर्वीतट पर स्थित तटीय मैदान पश्चिमी तटीय मैदान की तुलना में अधिक चौड़ा है।
• पश्चिमी तटीय मैदान बंदरगाह के विकास के लिए प्राकृतिक परिस्थिति प्रदान करता है। प्राकृतिक बंदरगाहों में -कांडला, मजगांव, ज.एल.एन. नवाहा शेवा, मार्मागाओ, मैंगलौर, कोचीन प्रमुख हैं।	• अधिकांश नदियां लंबे चौडे डेल्टा का निर्माण करती हैं।
• नदियां इस तट पर डेल्टा नहीं बनाती। प्रमुख नदियां नर्मदा और तापी है।	• प्रमुख नदियां महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी है।
• इस मैदान के उत्तरी भाग को कोंकण तथा दक्षिण भाग को मालाबार तट कहते है।	• उभरा तट होने के कारण बंदरगाह कम है। • चैन्नई, विशाखापट्टनम, पाराद्वीप आदि प्रमुख बंदरगाह।

(v) द्वीप समूह : भारत के द्वीपों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

(i) बंगाल की खाडी में स्थित द्वीप समूह

(ii) अरब सागर में स्थित द्वीप समूह

बंगाल की खाडी में स्थित द्वीप समूह	अरब सागर में स्थित द्वीप समूह
• बंगाल की खाड़ी में लगभग 572 द्वीप हैं।	• अरब सागर के द्वीपों मे लक्षद्वीप और मिनिकॉय शामिल है।
• बंगाल की खाड़ी के द्वीपों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – उत्तर में अंडमान और दक्षिण में निकोबार	• ये केरल तट से 280 कि.मी. से 480 कि.मी. दूरी पर स्थित है।
• ये द्वीप समुद्र में जलमग्न पर्वतों का हिस्सा है।	• पूरा द्वीप समूह प्रवाल निक्षेप से बना है।
• कुछ छोटे द्वीपों की उत्पत्ति ज्वालामुखी से है।	• मिनिकॉय सबसे बड़ा द्वीप है।
• निकोबार द्वीप समूह में स्थित बैरन आइलैंड भारत का एक मात्र जीवंत ज्वालामुखी है।	
• यह द्वीप समूह असंगठित कंकड पत्थरों और गोलाश्मों से बना है।	

परियोजना कार्य –

1. हिमालय की उत्पति से सम्बन्धित भूगर्मिक तथ्यों को इंटरनेट से एकत्रित करके एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

2. भारत का प्रायद्वीपीय पठार किस प्रकार गोण्डवाना लैण्ड से पृथक हुआ था ? एक प्रस्तुतीकरण बनाए।

मानचित्र कार्य –

1. हिमालय की महत्वपूर्ण चोटियाँ

2. दक्षिण के पठार से निकलन वाली नदियाँ

3. उत्तर–पूर्व की पहाड़ियाँ

4. गंगा–ब्रह्मपुत्र नदी बेसिन

अध्याय- 2

अपवाह तन्त्र

किसी भी क्षेत्र की जल निकास व्यवस्था या प्रणाली को अपवाह तन्त्र कहते है। इसमें जल वाहिकाओं के सामुहिक प्रवाह (बहाव) को सम्मिलित किया जाता है। यह किसी क्षेत्र के नदियों के प्रवाह को दर्शाता है। नदियां आदिकाल से ही मानव जाति के लिए बहुत उपयोगी रही हैं। यही कारण है कि सभी प्राचीन सभ्यताएं नदी-घाटियां में ही विकसित हुई हैं। नगरों, कृषि क्षेत्रों तथा औद्योगिक क्षेत्रों के विकास में नदियों की विशेष भूमिका रही है।

किसी क्षेत्र का अपवाह तन्त्र वहां की भू-वैज्ञानिक समयावधि, चट्टानों की प्राकृति एवं संरचना, स्थलाकृतिक ढाल, बहते जल की मात्रा और बहाव की अवधि से प्रभावित एवं नियन्त्रित होता है।

अपवाह तन्त्र से सम्बन्धित कुछ पारिभाषित शब्द

- **जल ग्रहण क्षेत्र (Catchment Area) :** किसी विशिष्ट क्षेत्र के नदी द्वारा बहाकर लाया गया जल उस नदी का 'जल ग्रहण क्षेत्र' कहा जाता है।
- **अपवाह द्रोणी (Drainage Basin) :** मुख्य नदी व उसकी सहायक नदियों द्वारा अपवाहित क्षेत्र को 'अपवाह द्रोणी' कहते है।
- **जल विभाजक (Water Divider) :** दो नदी तन्त्रों के मध्य का वह ऊँचा भाग जो उन नदी तन्त्रों को अलग-अलग कर देता है।
- **जल संभर (Water shed) :** भारत में छोटी नदियों और नालों द्वारा अपवाहित क्षेत्र को 'जल संभर' कहते हैं।
- **नदी द्रोणी (River Basin) :** बड़ी नदियों द्वारा अपवाहित जल ग्रहण क्षेत्र को नदी द्रोणी कहते हैं।
- **सहायक नदी और उपनदी (Tributary and Distributary) :** मुख्य नदी में आकर मिलने वाली नदियों को 'सहायक नदी' तथा मुख्य नदी से निकलकर अलग जल धारा के रूप में बहने वाली नदी को 'उपनदी' कहते हैं। जैसे गंगा की सहायक नदी यमुना तथा उपनदी हुगली है।
- **नदी बहाव प्रवृत्ति (River Regime) :** किसी नदी में वर्ष भर होने वाले जल प्रवाह के प्रारूप को नदी बहाव प्रवृत्ति कहते हैं जो नदी में वर्षा की मात्रा तथा अवधि, ऋतु एवं बर्फ के पिघलने की प्रवृत्ति आदि पर निर्भर करती है।
- **जलारेख (Hydrograph) :** नदी बहाव प्रवृत्ति को दर्शाने वाले आरेख को 'जलारेख' कहते हैं।
- **क्यूसेक्स या क्यूमेक्स (Cusecs or cumecs) :** नदी जल प्रवाह के आयतन की वह माप जिसे क्यूसेक्स (क्यूबिक फुट प्रति सैकेंड) या क्यूमेक्स (क्यूबिक मीटर प्रति सैकेंड) में मापा जाता है।

अपवाह प्रतिरूप (Drainage Pattern)

नदी के उदगम स्थान से लेकर उसके मुहाने तक मुख्य नदी व उसकी सहायक नदियों द्वारा की गई रचना को **'अपवाह प्रतिरूप' कहते हैं। अपवाह प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक:-**

- स्थलाकृतिक संरचना
- ढाल
- विर्वतनिक गतिविधियां
- जलापूर्ति/जलवायु सम्बन्धित अवस्थाएं
- भूगर्भिक इतिहास

भू-वैज्ञानिक संरचना की समयावधि के आधार पर अपवाह के प्रकार

1. **पूर्ववर्ती अपवाह (Antecedant Drainage) :** पूर्ववर्ती अपवाह में नदियों द्वारा निर्धारित मार्ग के ऊंचा उठने के बावजूद भी नदियां अपने उसी मार्ग व दिशा में ही बहती रहती हैं जैसे हिमालय के पार की कुछ नदियां सिन्धु कोसी सतलुज व ब्रह्मपुत्र तिब्बत के पठार से निकलकर हिमालय को पार करती हुई गहरे महा खड्डों व घाटियों का निर्माण करती हैं।
2. **अनुवर्ती अपवाह (Consequent Drainage) :** इस अपवाह में नदियां संबधित भू-भाग के ढाल की दिशा के अनुरूप बहती हैं जैसे दक्षिण भारत की नदियां।

भारत में अपवाह प्रतिरूप

1. द्रुमाकृतिक अपवाह प्रतिरूप (Dendritic Pattern) जैसे गंगा नदी का प्रतिरूप
2. जालीनुमा एवं आयताकार अपवाह प्रतिरूप (Trellis and Rectangular Parttern)
3. अरीय अपवाह प्रतिरूप (Radial Pattern)
4. समानान्तर अपवाह प्रतिरूप (Parallel Drainage Pattern)

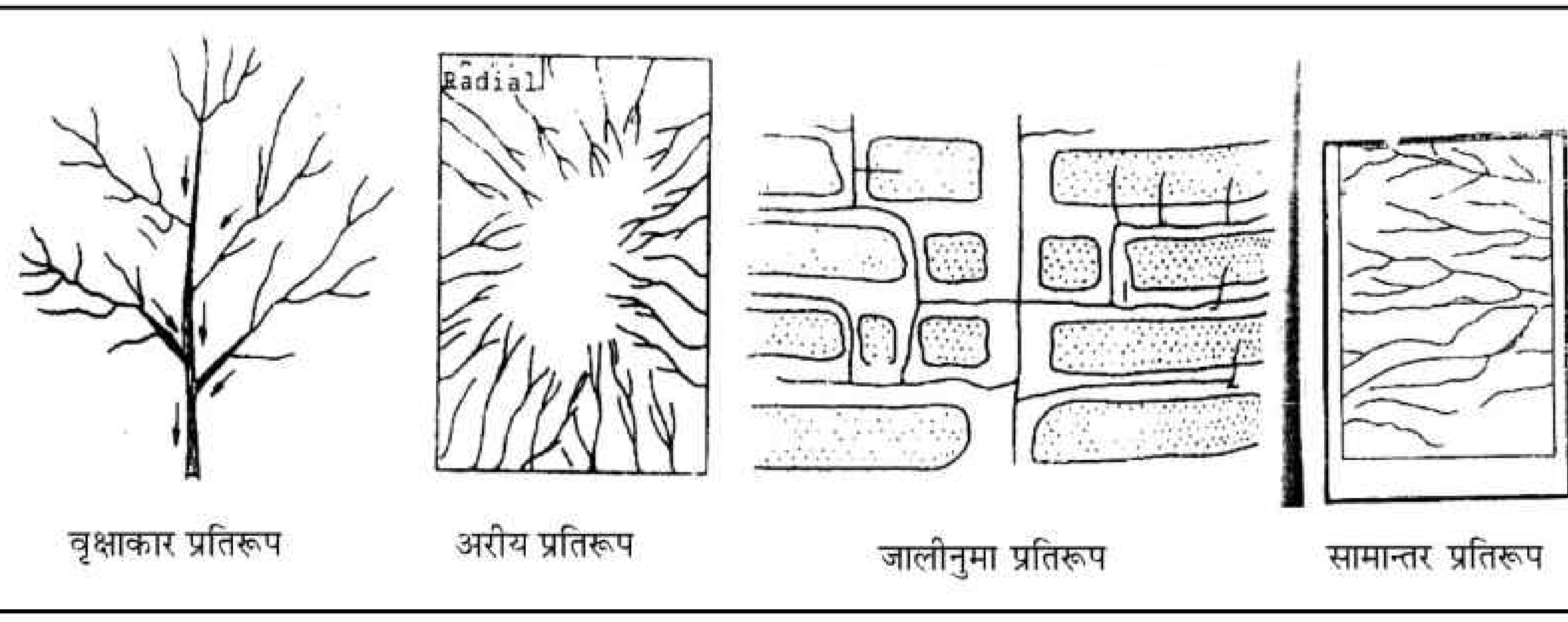

वृक्षाकार प्रतिरूप　　अरीय प्रतिरूप　　जालीनुमा प्रतिरूप　　सामान्तर प्रतिरूप

भारतीय अपवाह तन्त्र का वर्गीकरण निम्नरूप में किया जा सकता है।

भारतीय अपवाह तन्त्र का वर्गीकरण

- समुद्र में जल विसर्जन का अधार
  - बंगाल की खाड़ी का अपवाह तन्त्र,
  - अरब सागर का अपवाह तन्त्र
- अपवाह क्षेत्र के आकार का आधार
- उदगम क्षेत्र/स्रोत का आधार
  - हिमालयी अपवाह तन्त्र
  - प्रायद्वीपीय अपवाह तन्त्र

- वृहद नदी द्रोणियां – अपवाह क्षेत्र 20,000 वर्ग कि.मी. से अधिका, प्रमुख नदियां–गंगा, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, ताप्ती, नर्मदा, गोदावरी, माही, पेन्नार आदि।
- मध्यम नदी द्रोणियां – अपवाह क्षेत्र 2000 से 20,000 वर्ग कि.मी., मुख्य नदी द्रोणियां – परियार, कालिन्दी मेघना आदि।
- लघु नदी द्रोणियां – अपवाह क्षेत्र 2000 वर्ग कि.मी. से कम, कम वर्षा वाले क्षेत्रों की अनेक छोटी नदियां।

भारत में नदियों का वर्तमान स्वरूप नदी विकास की एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है। भारत के अपवाह तन्त्र में अनेक छोटी बड़ी नदियां पाई जाती है। उद्‌गम के प्रकार प्रकृति व विशेषताओं के आधार पर भारत के अपवाह तन्त्र को प्राय: निम्नलिखित दो भागों में बाटां जाता है–

1. हिमालय की नदियां या हिमालयी अपवाह तन्त्र

2. प्रायद्वीपीयय अपवाह तन्त्र

हिमालयी अपवाह तन्त्र

- सिन्धु अपवाह तन्त्र
- गंगा अपवाह तन्त्र
- ब्रह्मपुत्र अपवाह तन्त्र

प्रायद्वीपीय अपवाह तन्त्र

- पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों का अपवाह तन्त्र (महानदी, कृष्णा, गोदावरी, कावेरी)
- पश्चिम की ओर अरब सागर में गिरने वाली नदियों का अपवाह तन्त्र (नर्मदा एवं तापी)

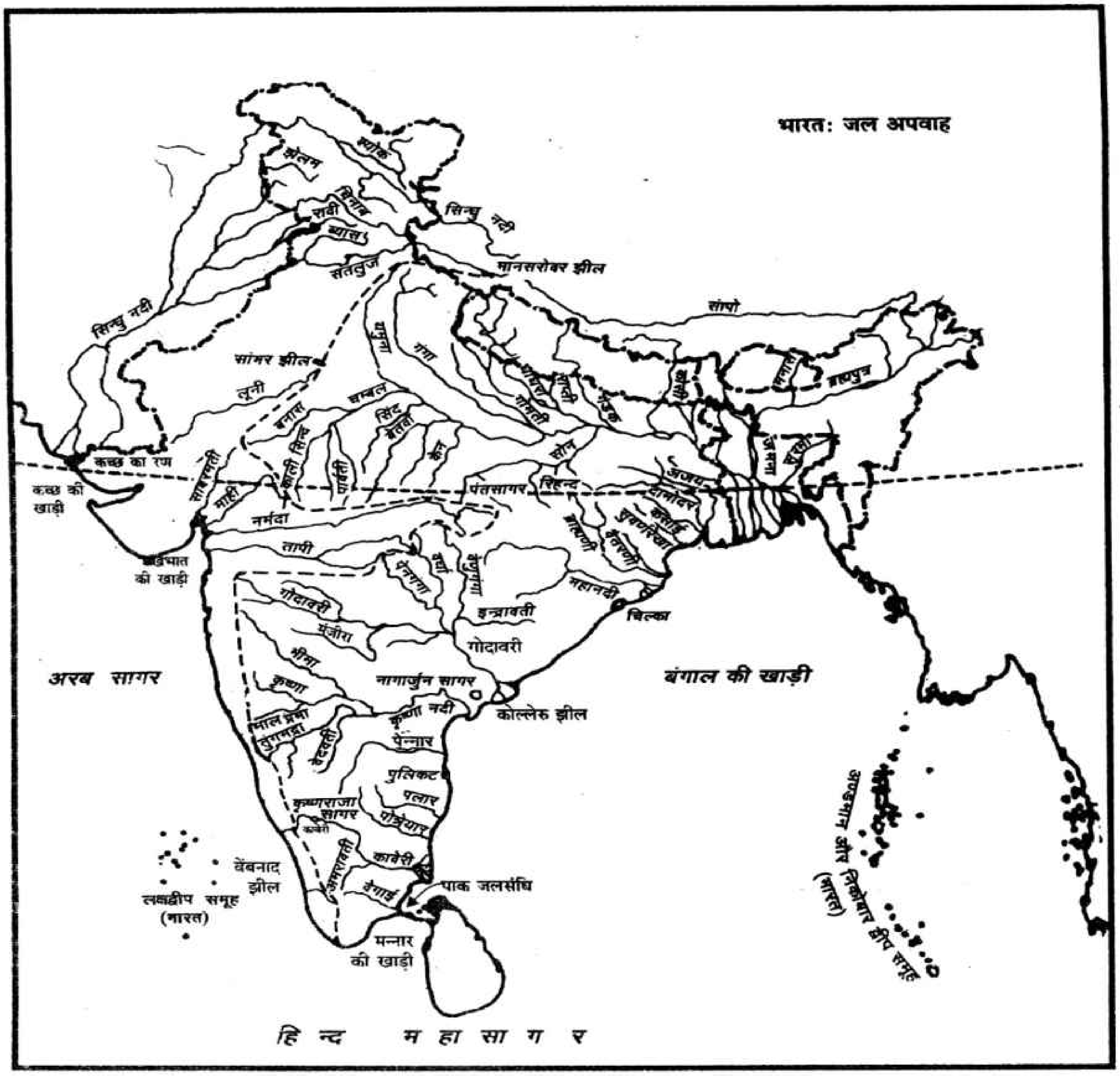

चित्र : भारत की प्रमुख नदियाँ

तालिका 1 : सिन्धु अपवाह तन्त्र

नदियां	उदगम क्षेत्र	कुल लम्बाई (कि.मी)	नदी द्रोणी (वर्ग कि.मी.)
सिन्धु	तिब्बत का पठार मानसरोवर झील)	2880	3,21,289
चेनाव	लाहोल	1,800	26755
व्यास	कुल्लू पहाड़ियां रोहतांग दर्रे के निकट	460	20,303
रावी	कुल्लू पहाडियां (हि.प्र.)	725	14,442
सतलुज	तिब्बत का पठार, (राक्षस ताल)	1050	24,087

तालिका 2 : गंगा अपवाह तन्त्र

नदियां	उदगम क्षेत्र	कुल लम्बाई (कि.मी.)	नदी द्रोणी (वर्ग कि.मी.)
(गंगा दो धाराओं के रूप में)			
(1) भागीरथी :	गोमुख से गंगोत्री हिमनद	2,525	8,61,404
(2) अलकनंदा :	बद्रीनाथ के निकट, सतोपथ हिमनद		
यमुना	यमनोत्री हिमनद	1,300	3,59,000
राम गंगा	नैनीताल के निकट	696	32,412
घाघरा	मापचाचुंगो हिमनद	1,080	1,27,950
गंडक	मध्य हिमालय	425	9540(भारत)
कोसी	तिब्बत	730	11,600
गोमती	पीलीभीत	940	30,437
दामोदर	छोटानागपुर पठार	541	22,000
सोन	अमर कंटक	407	–
महानंदा	दार्जिलिंग पहाड़ियां	–	–

2. प्रायद्वीपीय अपवाह तन्त्र

तालिका 3 प्रायद्वीपीय अपवाह तन्त्र

नदियां	उदगम क्षेत्र	लम्बाई (कि.मी.)	जल ग्रहण क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)
1	2	3	4
नर्मदा	अमरकंटक	1312	98,796
ताप्ती	बेतुल (मुल्ताई) (म.प्र.)	724	64,145
लूनी	अन्ना सागर (अजमेर)	482	37,250
साबरमती	अरावली पहाड़ियां	300	21,674
महानदी	फरसिया (रायपुर)	860	1,4,1600
ब्रहमीणी	नागरी गांव (रांची)	860	39,033
स्वर्ण रेखा	झारखण्ड	395	19,300
गोदावरी	दरम्बैकनेर (नासिक)	1,465	31,28,112
कृष्णा	महाबलेशवर	1,400	2,58,948
कावेरी	पश्चिमी घाट पहाड़ियां	800	87,900

हिमालयी तथा प्रायद्वीपीय नदियों में अन्तर

क्र.सं.	हिमालयी नदियां	प्रायद्वीपीय नदियां
1.	हिमालयी नदियां हिमाच्छादित प्रदेशों से निकलती है। अत: ये नदियां सदावाही हैं (Perennial)।	प्रायद्वीपीय नदियां वर्षा पर निर्भर करती हैं। अत:, ये नदियां मौसमी (Seasonal) हैं।
2.	हिमालय की नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र विशाल हैं।	प्रायद्वीपीय नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटे हैं।
3.	हिमालय की नदियां अधिक लम्बी हैं और इनकी संख्या भी अधिक हैं।	प्रायद्वीपीय नदियां अपेक्षाकृत कम लम्बी हैं और इनकी संख्या भी कम है।
4.	हिमालय की नदियां गहरे महाखडड (Gorge) व घाटियों का निर्माण करती हैं	प्रायद्वीपीय नदियां प्राय उथली घटियों में बहती हैं।
5.	हिमालय की कुछ नदियां पूर्ववर्ती (Antecedant) हैं।	प्रायद्वीपीय सभी नदियां अनुवर्ती (Consequent) हैं।
6.	हिमालय की नदियां मैदानी भागों में नदी विसर्प बनाती हैं और अपने मार्ग भी बदल लेती हैं	प्रायद्वीपीय नदियां अपेक्षाकृत सीधा मार्ग अपनाती है और अपना मार्ग नहीं बदलती।
7.	हिमालय की नदियां सिचाई तथा नौ-परिवहन के लिए अनुकूल हैं।	प्रायद्वीपीय नदियां में जल प्रवाह कम है तथा मौसमी हैं। अत: नौपरिवहन तथा सिंचाई के लिए अनुकूल नहीं है।
8.	हिमालय की नदियां अभी अपने विकास की बाल्यावस्था (youth stage) में हैं	प्रायद्वीपीय नदियां अपनी प्रौढ़ावस्था (old stage) प्राप्त कर चुकी हैं। कम क्रियाशील जिससे अपरदन कम करती हैं।
9.	हिमालय की नदियों में जल प्रवाह तीव्र है।	प्रायद्वीपीय नदियां में जल प्रवाह कम तथा मंद है।
10.	हिमालय की नदियां बड़े-बड़े डेल्टा बनाती हैं। गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा विश्व का सबसे बड़ा डेल्टा है। फलत: नदियां अपने मुहाने पर अनेक उपनदियों से होकर समुद्र में गिरती है।	प्रायद्वीपीय नदियां अपेक्षाकृत छोटे-छोटे डेल्टा बनाती हैं। नर्मदा व ताप्ती अपने मुहानों पर डेल्टा के स्थान पर ज्वारनदमुख (Estuaries) का निर्माण करती हैं।

अध्याय - 3

भारत : जलवायु

भारत एक विशाल भूखण्ड और विभिन्न भू-आकृतिक संरचनाओं वाला देश है। इसके उत्तर में विशाल गगनचुम्बी हिमालय पर्वत माला पश्चिम से पूर्व की ओर दीवार की भाँति एक प्रहरी के रूप में विद्यमान है। इसके दक्षिण में पश्चिम से पूरब की ओर एक विशाल समतल मैदान तथा सुदूर दक्षिण तक अत्यन्त ही प्राचीन प्रायद्वीपीय भू-खण्ड 'दक्षिण के पठार' के रूप में है। पूर्व पश्चिम तथा दक्षिण दिशाओं में समुद्र से घिरा हुआ है। भारत के पश्चिमोत्तर भाग में मरुस्थली भूमि का विस्तार है। ये सभी भौतिक भू-संरचनाएं भारत में विभिन्न परिस्थितियों को जन्म देने में सहायक होती हैं। ये सभी भारत को एक विशेष प्रकार की जलवायु (मानसूनी जलवायु) प्रदान करती हैं। वायुमण्डलीय दशाएं ही किसी स्थान के मौसम तन्त्र या विस्तृत क्षेत्रों में पाये जाने वाली जलवायविक परिस्थितियों को निर्धारित करती हैं। अत: इन्ही वायुमण्डलीय अवधिक स्थितियों को मौसम, ऋतु और जलवायु के नाम से जाना जाता है।

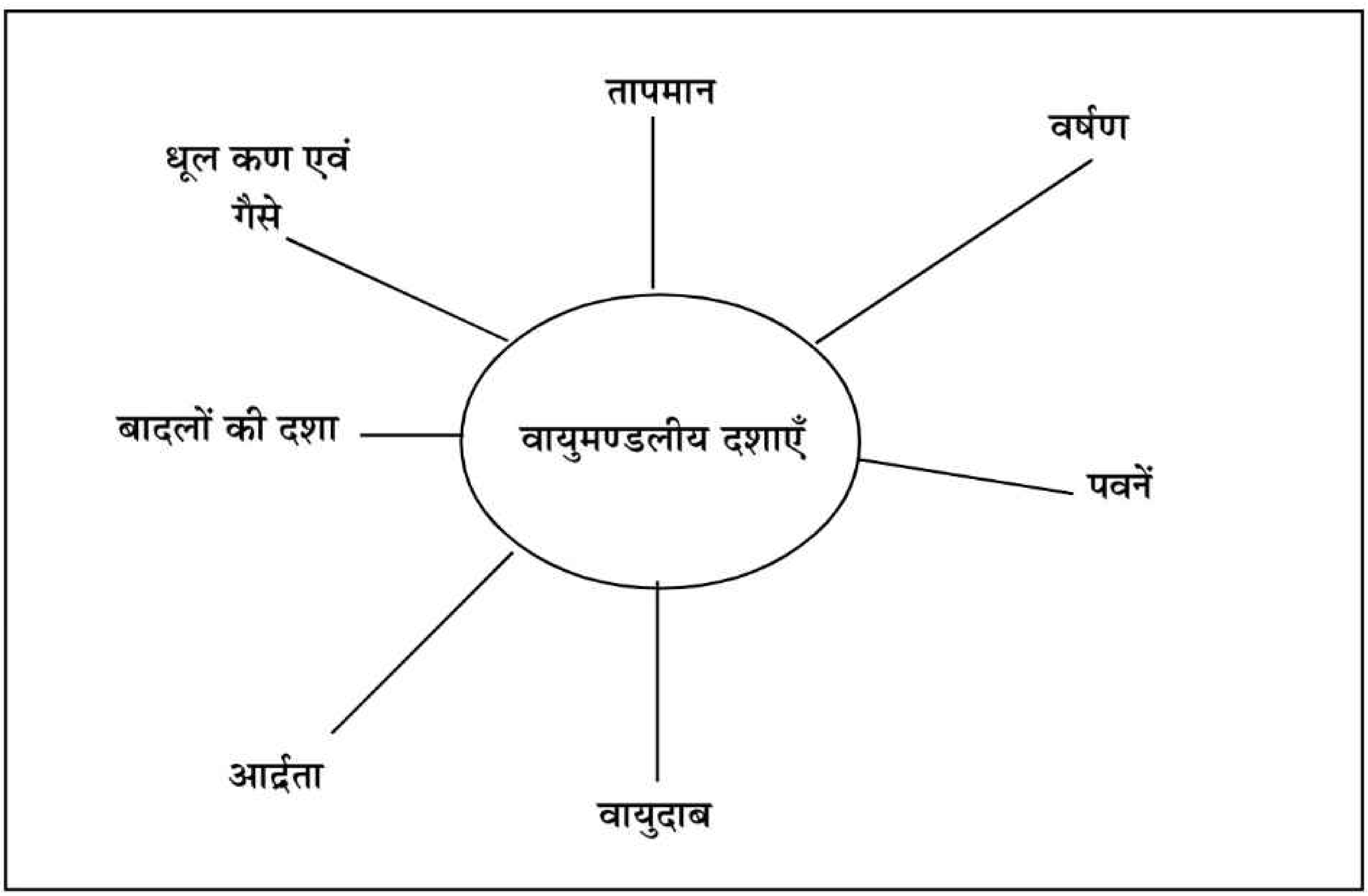

वायुमण्डलीय दशाओं को प्रभावित करने वाले कारक

मौसम, ऋतु एवं जलवायु (Weather, Season and Climate) : मौसम किसी विशिष्ट स्थान की अल्पकालिक वायुमण्डलीय दशाओं को कहते हैं। दिन में कई बार भी मौसम बदल सकता है। ऋतु किसी क्षेत्र में कई महिने या कई सप्ताहों तक एक जैसी वायुमण्डलीय दशाओं के विद्यमान रहने से होता है और **जलवायु :** एक

व्यापक अवधारणा है, जिसका सम्बन्ध एक विशाल क्षेत्र में लम्बी अवधि लगभग 35 वर्षों से अधिक औसत वामण्डलीय दशाओं के पाए जाने से होता है।

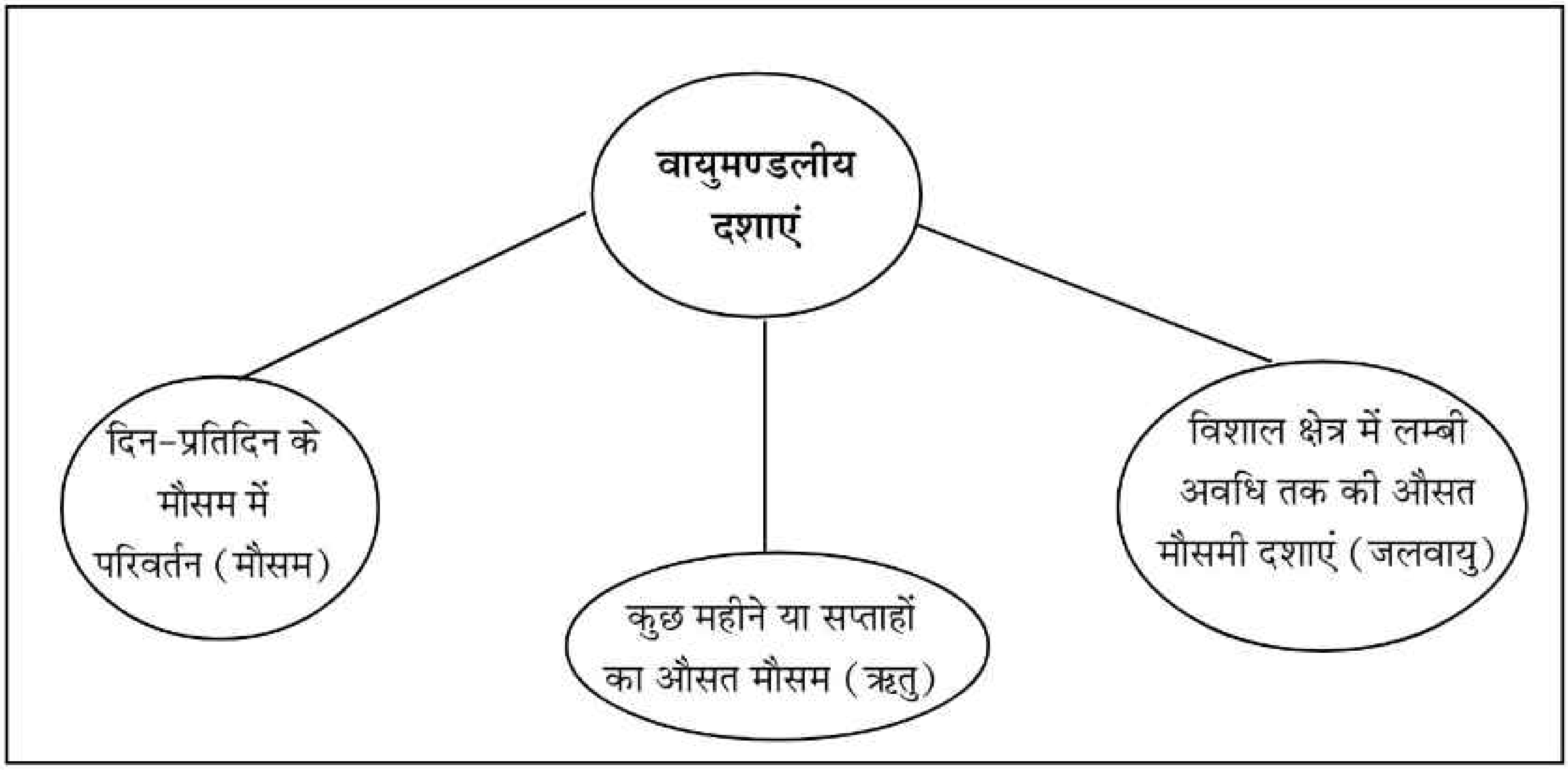

मानसून जलवायु में एकरूपता एवं विविधता (Unity and Diversity in Monsoon Climate of India)

भारतीय मानसून समस्त भारत में एकता को प्रदर्शित करता है। भारत के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत की अवस्थिति, आर्द्र मानसूनी पवनों को रोककर भारत में वर्षा कराने के लिए उत्तरदायी है। हिमालय पर्वत के कारण ही शीतऋतु में मध्य एशिया से आने वाली बर्फिली हवाएं भी भारत में प्रवेश नहीं कर पाती है। फलस्वरूप भारत के कर्क रेखा से उत्तर का भाग शीतोष्ण कटिबन्ध में होते हुए भी मानसूनी जलवायु का प्रतिनिधित्व करता है। अत: हिमालय और मानसूनी पवनें भारत की जलवायु के दो प्रमुख एकताकारी कारक हैं।

> **मानसूनी पवनें :** ''वें पवनें जो ऋतुओं के अनुसार अपनी दिशा में परिवर्तन कर लेती है।'' भारत में इन्हीं पवनों से अधिकांश वर्षा होती है। इन्हीं पवनों के आधार पर ही भारत की जलवायु को 'मानसूनी जलवायु' कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त समस्त भारत में मानसूनी जलवायु होते हुए भी मौसम और जलवायु में प्रादेशिक भिन्नता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए उत्तर में स्थित राज्यों में मौसम एवं जलवायु के लक्षण दक्षिण के राज्यों से भिन्न पाए जाते हैं। भारत की जलवायु में प्रादेशिक भिन्नता पवन, तापमान, वर्षा, आर्द्रता और शुष्कता तथा ऋतुओं के क्रम के रूप में देखा जा सकता है।

तापमान : ग्रीष्म ऋतु में राजस्थान के कई भागों में मई–जून का तापमान 48°C से 50°C तक पहुँच जाता है, जबकि इन्हीं दिनों कश्मीर व अरूणाचल प्रदेश के कई भागों में तापमान 20°C से 22°C के आसपास रहता है। इसी प्रकार शीत ऋतु में कश्मीर के कारगिल, लेह व द्रास का दिसम्बर माह में न्यूनतम तापमान – 45°C तथा

दूसरी ओर दक्षिण भारत के केरल व तमिलनाडु में तापमान 20°C से 22°C के मध्य पाया जाता है। इतना ही नहीं, भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान पर दैनिक तापान्तर में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है। उदाहरणत: केरल और अंडमान द्वीपों में दिन रात के तापमान में लगभग 7°C या 8°C का अन्तर पाया जाता है जबकि राजस्थान के मरूस्थल में दिन का तापमान 50°C तो रात का तापमाान 15°C से 20°C के बीच होता है तथा तापातर लगभग 25°C से 30°C होता है।

वर्षा : भारत में वर्षण का रूप, तथा वर्षा की मात्रा एवं अवधि में भी प्रादेशिक भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरणार्थ – मेघालय के चेरापूंजी व मांसिनराम में औसत वार्षिक वर्षा 1000 से.मी. से अधिक तथा राजस्थान के जैसलमेर मे औसत वार्षिक वर्षा 20 से.मी. से कम होती है। भारत में न केवल वर्षा की मात्रा अपितु वर्षण के रूप में भी अन्तर दिखायी देता है। हिमालय के उच्च्च क्षेत्रों में वर्षण हिमपात के रूप में तथा भारत के अन्य सभी क्षेत्रों में वर्षा के रूप में होता है।

जुलाई अगस्त में गंगा के डेल्टा तथा ओडिसा के भागों में प्रचंड तुफान के साथ मूसलाधार वर्षा होती है जबकि इन्हीं महीनों में तमिलनाडु का कोरोमण्डल तट शान्त व शुष्क रहता है। साथ ही देश के अधिकांश भागों में वर्षा जून से सितम्बर के बीच होती है, किंतु तमिलनाडु के तटीय प्रदेशों में शीत ऋतु में वर्षा अधिक होती है। उत्तर भारत में ऋतुओं में एक लय (क्रम) देखी जाती है, जबकि दक्षिण भारत के राज्यों में ऋतुओं में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है।

भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक इन कारकों को मुख्यत: दो वर्गों में बांटा जा सकता है-

(1) स्थिति तथा उच्चावच सम्बन्धी कारक

- अक्षांशीय विस्तार
- हिमालय पर्वत
- समुद्र से दूरी
- समुद्रतल से ऊचांई
- जल और स्थल का वितरण

(2) वायुदाब एवं पवन संबंधी कारक

- जैट वायु धाराएं
- पश्चिमी विक्षोभ
- वायुदाब एवं पवनों का धरातल पर वितरण (ऋतुओं के अनुसार वायुदाब एवं पवन संचरण)

भारतीय मानसून का रचना तंत्र (Mechanism of Indian Monsoon) भारत की जलवायु के निर्धारण में मानसून सर्वप्रमुख जलवायवीक घटक है। सदियों से ही मौसम वैज्ञानिकों ने भारतीय मानसून की प्रकृति व उसके रचना तन्त्र को सही-सही समझने व उसके विभिन्न पक्षों (वर्षा की मात्रा, अवधि तथा आवृत्ति आदि) के अध्ययन के लिए अनेक प्रयास किए है, किन्तु अभी तक कोई भी एक सिद्धांत भारतीय मानसून की सही व्याख्या करने में सर्वमान्य नहीं हो पाया है। लेकिन इतना अवश्य है कि मानसून की उत्पत्ति में स्थल व जल पर तापमान एवं वायुदाब की मात्रा में भिन्नता का होना एक सर्वमान्य तत्य है। इसके लिए सर्वप्रथम सूर्य की उत्तरायण एवं दक्षिणायन

स्थिति को जानना आवश्यक है। वर्ष में जब सूर्य की स्थिति उत्तरायण होती है तो अप्रैल से जून के महीनों में सूर्य की किरणें कर्क रेखा की ओर लम्बवत होती जाती है। परिणामस्वरूप उत्तर भारत में तापमान तेजी से बढ़ता है जिससे यहां 'न्यून वायुदाब' केन्द्र स्थापित हो जाता है। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय भारत के दक्षिण हिन्द महासागर में उच्च वायुदाब बना रहता है। स्थलीय निम्न वायुदाब पवनों को अपनी ओर आकर्षित करता है। परिणामस्वरूप हिन्द महासागर से आने वाली पवनें उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर चलने लगती है और दक्षिणी पूर्वी पवनें विषुवत रेखा को पार करते ही इनकी दिशा दक्षिण पश्चिम हो जाती हैं। भारत में दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूरब की ओर बहने वाली इन्ही पवनों को 'दक्षिण पश्चिम-मानसून' कहते हैं। तापमान व वायुदाब की स्थिति में परिवर्तन होने पर ये पवनें भी अपनी दिशा में परिवर्तन कर लेती है। परिणामस्वरूप इन पवनों की दिशा शीतकाल मे उ.पू. से द.प. की ओर से उलट जाती है। इन्हीं पवनों को भारत में 'उ.पू. मानसून' के रूप में जाना जाता है जो बंगाल की खाड़ी से गुजरते हुए आर्द्रता से परिपूर्ण होकर शीतकाल में भारत के पूर्वी तटों पर वर्षा के लिए उत्तरदायी होती है।

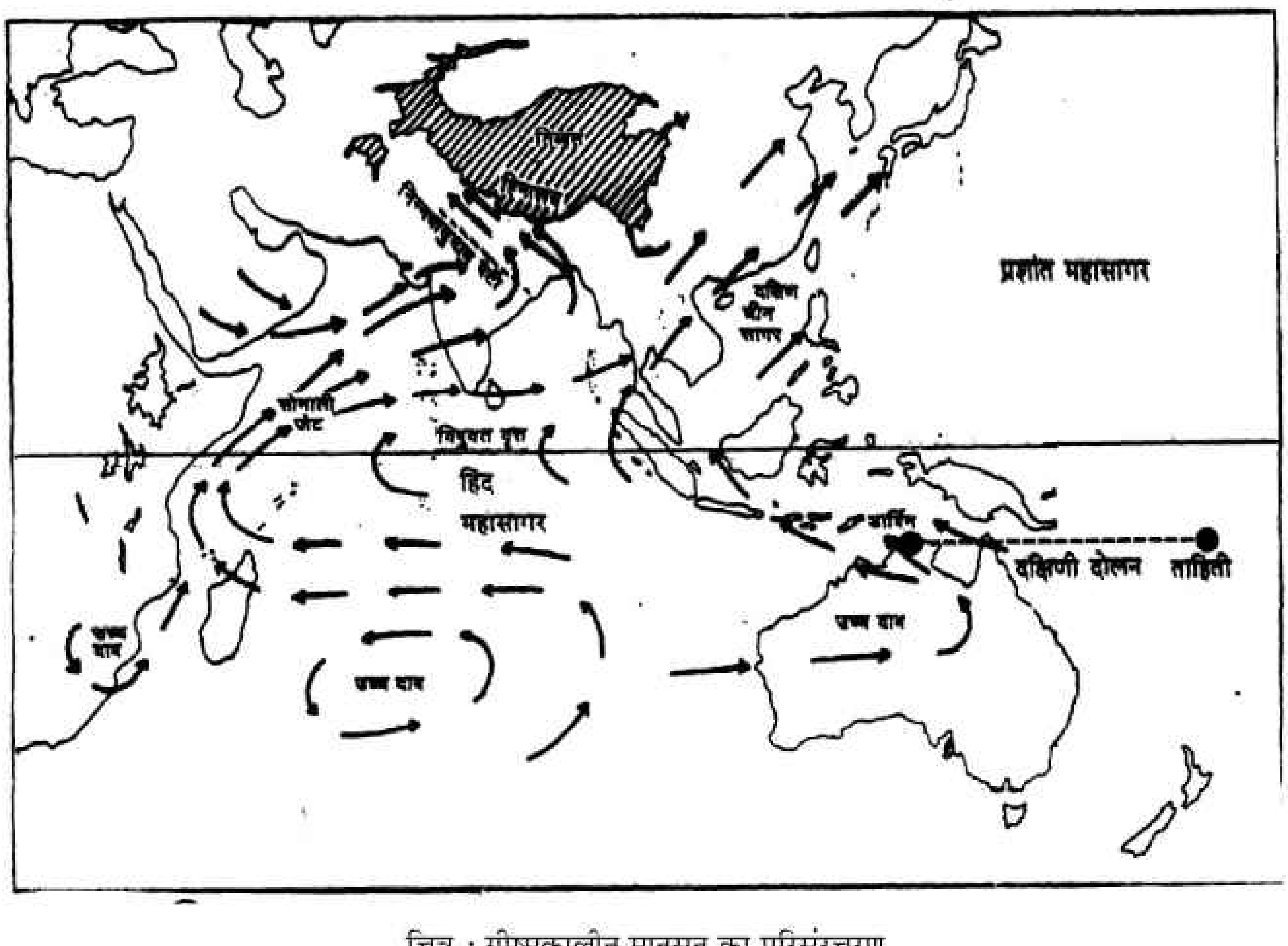

चित्र : ग्रीष्मकालीन मानसून का परिसंरचरण

भारतीय मानसून और जेट वायुधाराएं : क्षोभ मण्डल के ऊपरी भागों पूर्व-पश्चिम में तेज गति से चलने वाली जेट पवनों का संचरण होता है। जिनकी उत्पत्ति तिब्बत के विशाल पठार के गर्भ होने पर क्षोभ मण्डल के ऊपरी भागों में तेज गति से घड़ी की सुई की दिशानुसार धरातल से 12 से 16 कि.मी. की ऊंचाई पर वायु धाराओं के रूप में तीव्र गति से चलती हैं।

पश्चिमी जेट धारा : ये वायु धाराएं ग्रीष्म काल मे हिमालय पर्वत के उत्तर में पश्चिम से पूर्व की ओर मध्य एशिया के भागों में तीव्र गति से चलती है। जबकि शीत ऋतु में पश्चिम जेट वायु धारा हिमालय पर्वत के दक्षिण में प्रवाहित होने लगती है।

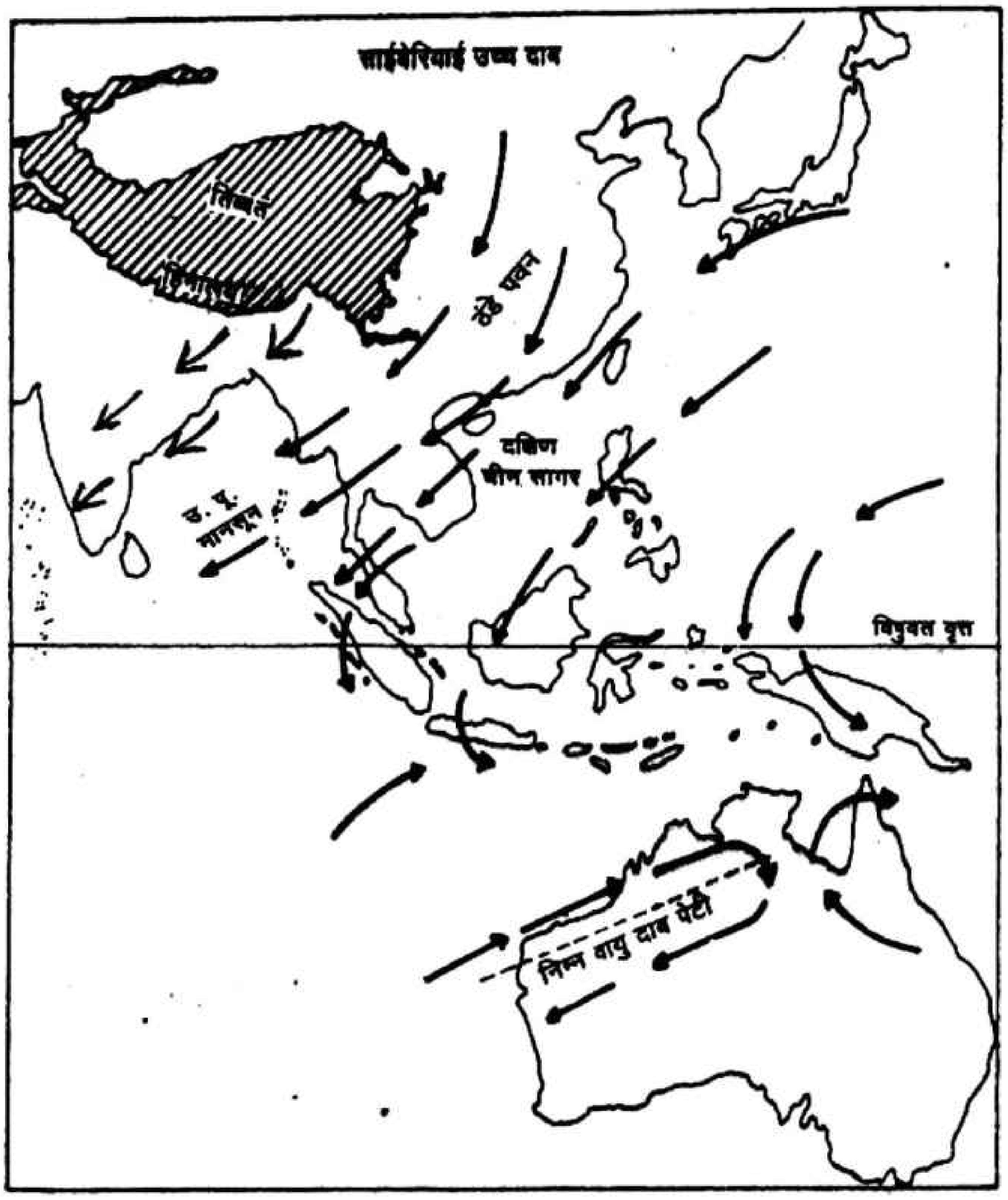

चित्र : शीतकालीन मानसून : धरातलीय पवनें

ये भूमध्य सागर से उत्पन्न पश्चिमी विक्षोभों को भारत की ओर लाने में सहायता करती हैं, जिनसे शीत ऋतु में भारत के उत्तरी मैदानों में वर्षा होती है जो रबी की फसलों के लिए वरदान सिद्ध होती हैं। पश्चिमी विक्षोभ कभी–कभी भारतीय मानसून को पश्चिमोत्तर भारत में वर्षण को क्षीण बनाकार 'मानसून विच्छेद' की स्थिति पैदा कर देते हैं।

पूर्वी जेट धाराएं : ग्रीष्म ऋतु में इन पवनों की एक शाखा भूमध्यरेखा की ओर मुडकर दक्षिण भारत के पठार पर 13 कि.मी. की ऊँचाई पर क्षोभमण्डल के उपरी भागों में द.प. मानसून के दौरान 15° उ. से 25° उ. तक पूरब से पश्चिम की ओर 90 कि.मी. की तेज गति से प्रवाहित होती हैं। इनके प्रभाव से बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न उष्ण कटिबन्धीय अवदाबों एवं द.प. मानसून द्वारा समस्त भारत में वर्षा होती है। साथ ही पूर्वी जेट पवनें भारत में तेजी से मानसून प्रस्फोट की स्थिति को उत्पन्न करने में भी सहायक होती हैं।

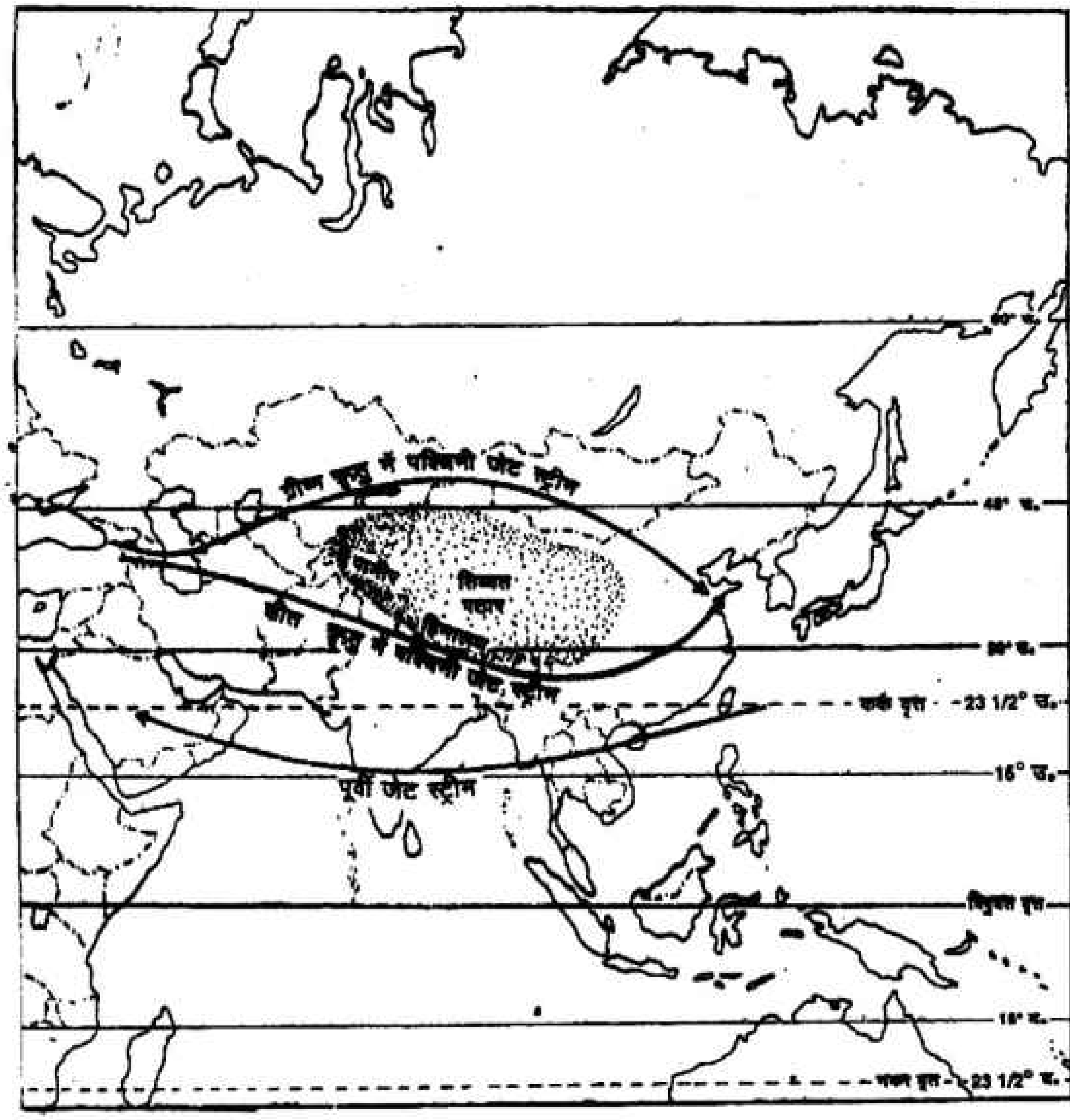

चित्र : शीतकालीन मानसून : धरातलीय पवनें

एल-निनो और भारतीय मानसून

एल-निनो एक जटिल मौसम तन्त्र है जो हर पांच या 10 वर्ष बाद प्रकट होता है। इस मौसम तन्त्र को संसार के विभिन्न भागों में सूखा, बाढ़ और मौसम की अन्य अवस्थाओं के रूप में देखा जाता है।

यह मौसमी परिघटना पूर्वी प्रशान्त महासागर में पेरू तट के निटक उष्ण जल धारा के रूप में प्रकट होती है। इसमें प्रशान्त महासागर की ऊपरी जल सतह के तापमान में वृद्धि अंकित की जाती है जो पेरूवियन अथवा हैम्बोल्ट की ठन्डी धारा पर गर्म धारा के रूप में प्रतिस्थापित हो जाती है। इसका तापमान लगभग $10^{\circ}C$ तक बढ़ जाता है। जिससे भूमध्यरेखीय वायुमण्डलीय परिसंचरण में विकृति, समुद्र जल के वाष्पीकरण में अनियमितता एवं मछलियों के भोजन के रूप में प्लवक की मात्रा में कमी पायी जाती है।

भारत में इस मौसम परिघटना को मानसून की अवधि के पूर्वानुमान से लिया जाता है। इससे मानसून के देर से आने का अनुमान लगाया जााता है और देश में सुखे की स्थिति की संभावना के रूप में देखा जाता है।

इसके अतिरिक्त ला-निना एक अन्य मौसमी परिघटना है जिसका अर्थ प्रशान्त महासागर की सतह का जल ठन्डा होने से लिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप भारत में सामान्य से अधिक मानसूनी वर्षा अनुमानित की जाती है।

मानसून का निवर्तन (Retreating of Monsoon)

भारत में सितम्बर के मध्य से दक्षिणी पश्चिमी मानसून उत्तर भारत से पीछे हटना कमजोर होना आरम्भ कर देता है। इस समय सूर्य दक्षिणायन होकर भूमध्य रेखा पर सीधा चमकता है। परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में तापमान कम होने लगता है और साथ ही साथ स्थलीय उच्च वायुदाब भी बढ़ता जाता है। इसके विपरीत उत्तर भारत से न्यून वायुदाब केन्द्र दक्षिण की ओर खिसकने लगता है और अक्टूबर के आरम्भ में बंगाल की खाड़ी में स्थापित हो जाता है। तदनुसार उत्तर व मध्य भारत से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हट जाता है और पवनें उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। इसे 'उत्तरी-पूर्वी मानसून' कहते हैं। इन पवनों से बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न उष्ण कटिबन्धीय चक्रवाती अवदाबों के रूप में अक्टूबर, नवम्बर में आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु के तटीय भागों में भयंकर तुफानी वर्षा होती है।

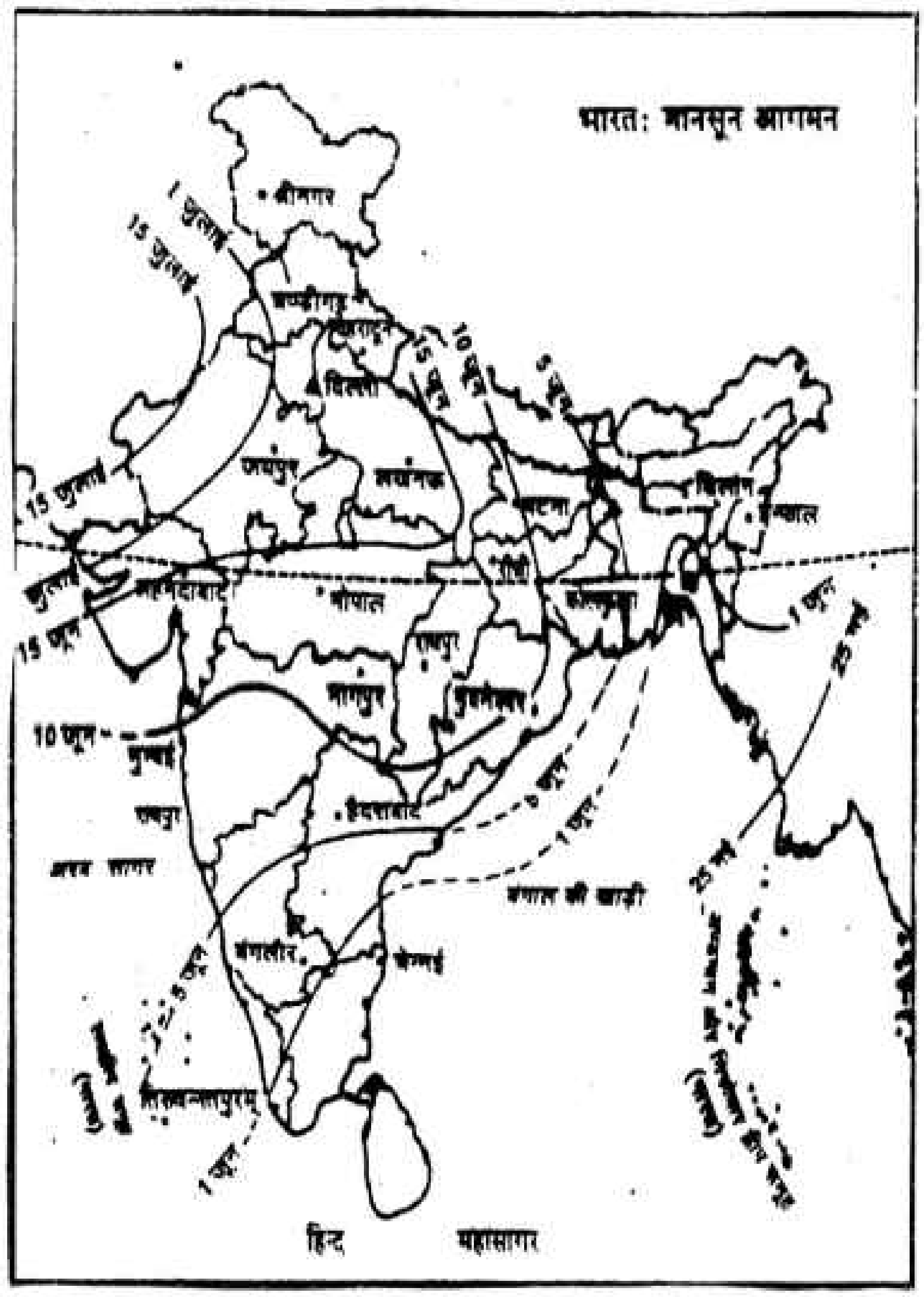

भारत : मानसून के आगमन की सामान्य तिथियां

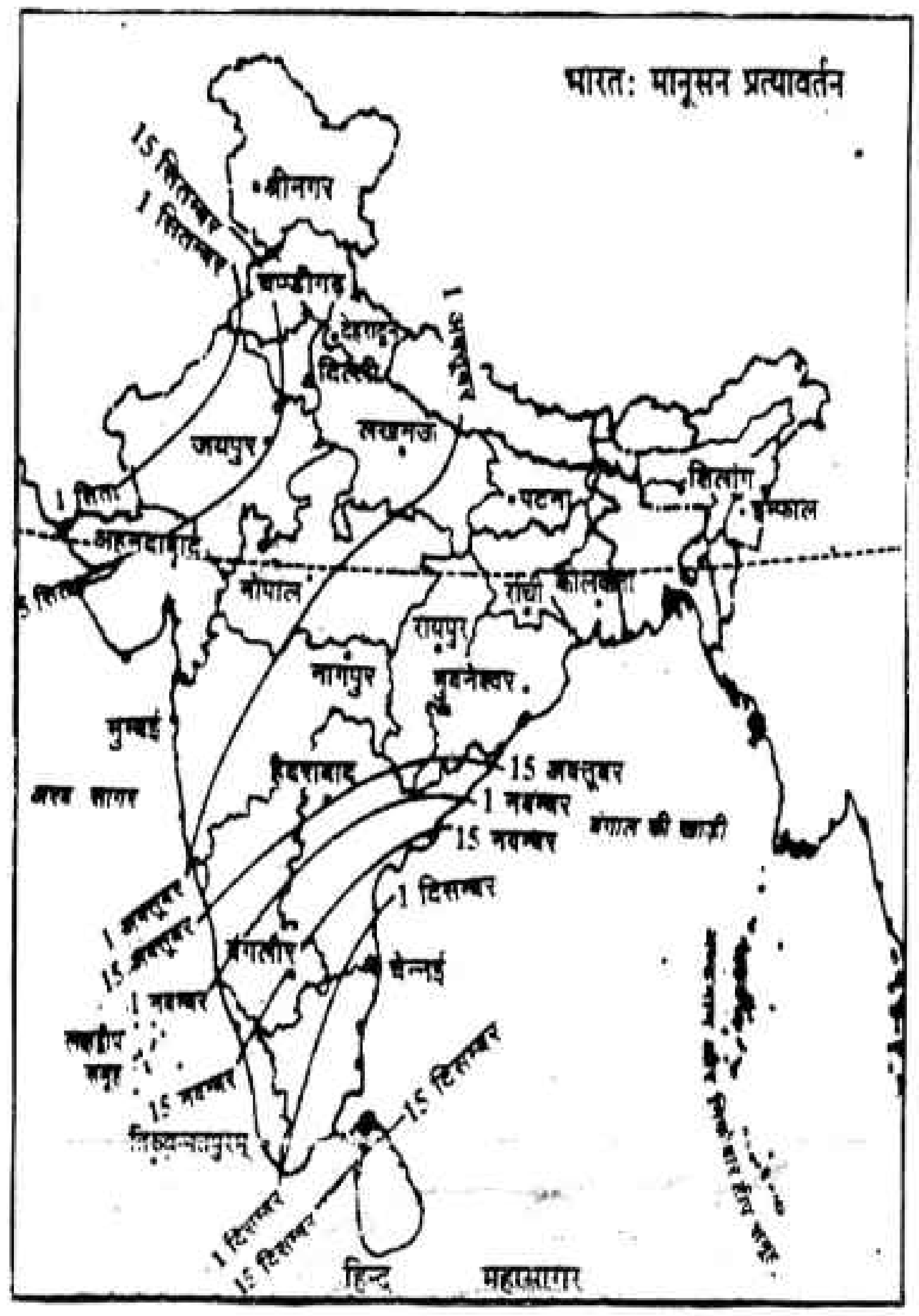

भारत : द. प. मानसून के निवर्तन की सामान्य तिथियां

मौसम पर आधारित भारत में ऋतुएं (Weather Based Seasons in India)

उत्तर भारत में ऋतुओं का क्रम (System of Season in Northern India)

ऋतु का नाम	महीने	मुख्य विशेषताएं
1. शीत ऋतु	दिसम्बर से फरवरी तक	औसत दैनिक तापमाान 20°C से कम, उच्च वायुदाब, स्वच्छ आकाश, ठन्डा मौसम, धुन्ध, कोहरा, पश्चिमोत्तर भारत में पश्चिमी विक्षोभों द्वारा वर्षा तथा उत्तरी मैदानो में शीत लहर और पर्वतीय क्षेत्रों के हिमपात।
2. ग्रीष्म ऋतु	मार्च से मई तक	उच्च तापमान (मई–जून में 40°C से 45°C तक) निम्न वायुदाब, भीषण गर्मी, धूलभरी आंधियां, शुष्क एवं गर्म तीव्र पवनें (लू) अप्रैल व मई में छिटपुट वर्षा।
3. वर्षा ऋतु	जून से सितम्बर	द.प. मानसून सक्रिय, तापमान 35°C से 40°C के मध्य, उष्णार्द्र पवनें, उमसभरी गर्मी।
4. शरद ऋतु	अक्टूबर से नवम्बर	मौसमी संक्रमण काल (वर्षा ऋतु से शीत ऋतु की ओर) दिन में तापमान अधिक, राते सुहावनी, स्वच्छ आकाश, दैनिक तापान्तर अधिक, ओडिसा, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु के तटीय भागों में चक्रवातीय वर्षा।

नोट : उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत में ऋतुओं का कोई निश्चित क्रम नहीं पाया जाता है। तटीय भागों में समुद्री प्रभाव तथा भूमध्य रेखा की निकटता के कारण प्रायद्वीपीय भारत में तापमान वर्ष भर 28°C से 32°C के बीच ही रहता है। प. घाट की पहाडियों पर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में तापमान अपेक्षाकृत कम रहता हैं। द. भारत में वर्षा काल उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक होता है। फलत: वर्षा अधिक होती है।

भारतीय मानसूनी वर्षा की विशेषताएं (Characteristics of Indian Monsoon Rainfall)

1. भारत के अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर तक।
2. मानसूनी वर्षा मुख्य रूप से उच्चावच द्वारा नियंत्रित।
3. समुद्र से बढ़ती दूरी के साथ मानसूनी वर्षा में घटने की प्रवृति।
4. मानसूनी वर्षा के दौरन कुछ सप्ताहों तक सूखे की स्थिति, जिन्हें 'मानसून विच्छेद' (Break of Monsoon) कहा जाता है।
5. ग्रीष्म काल में तेज मूसलादार वर्षा, जिससे मृदा अपरदन, बाढ़ तथा अन्य आपदाओं की सम्भावना।
6. मानसून की अनियमितता तथा अनिश्चितता।

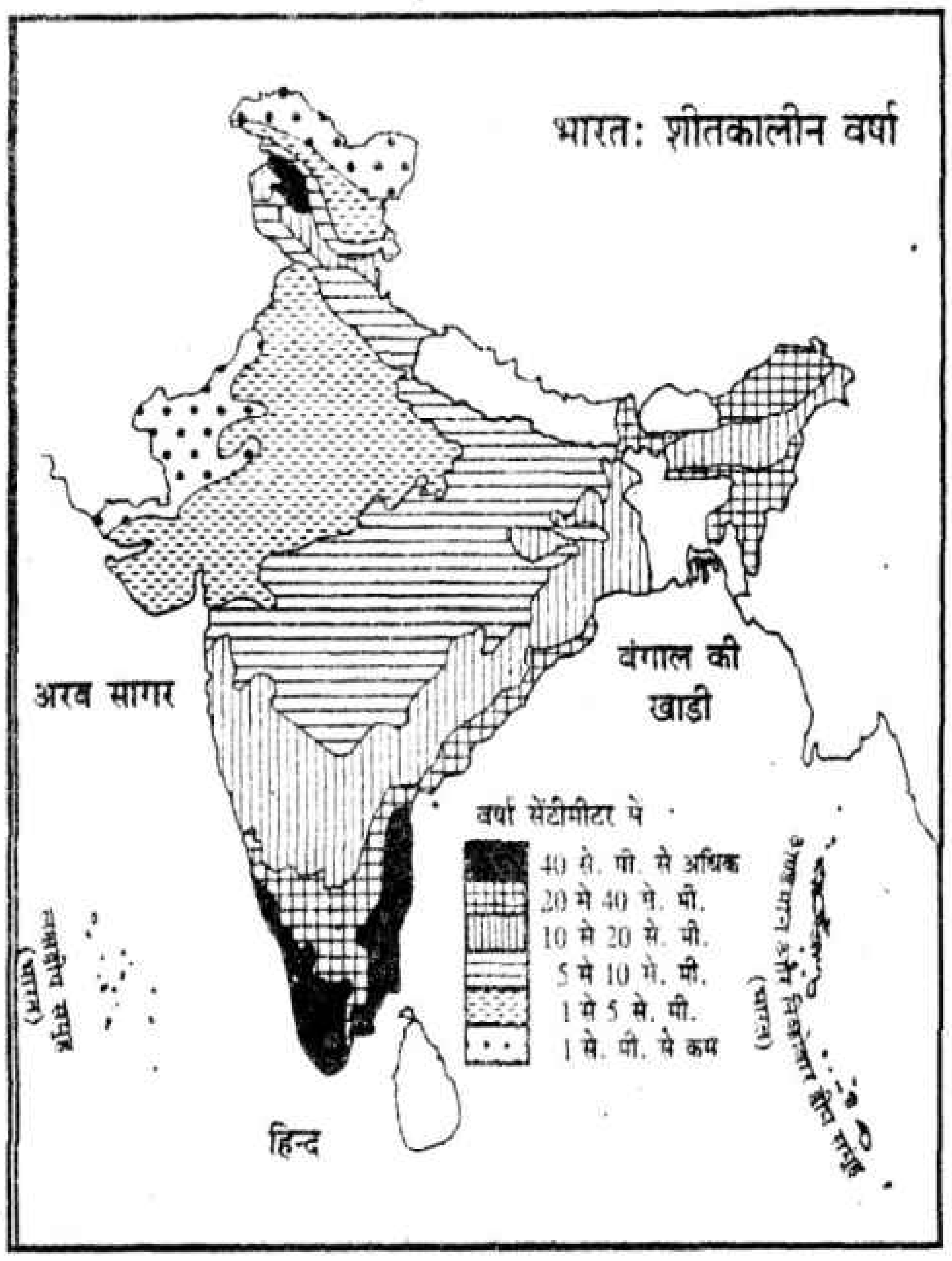

चित्र : भारत शीतकालीन वर्षा

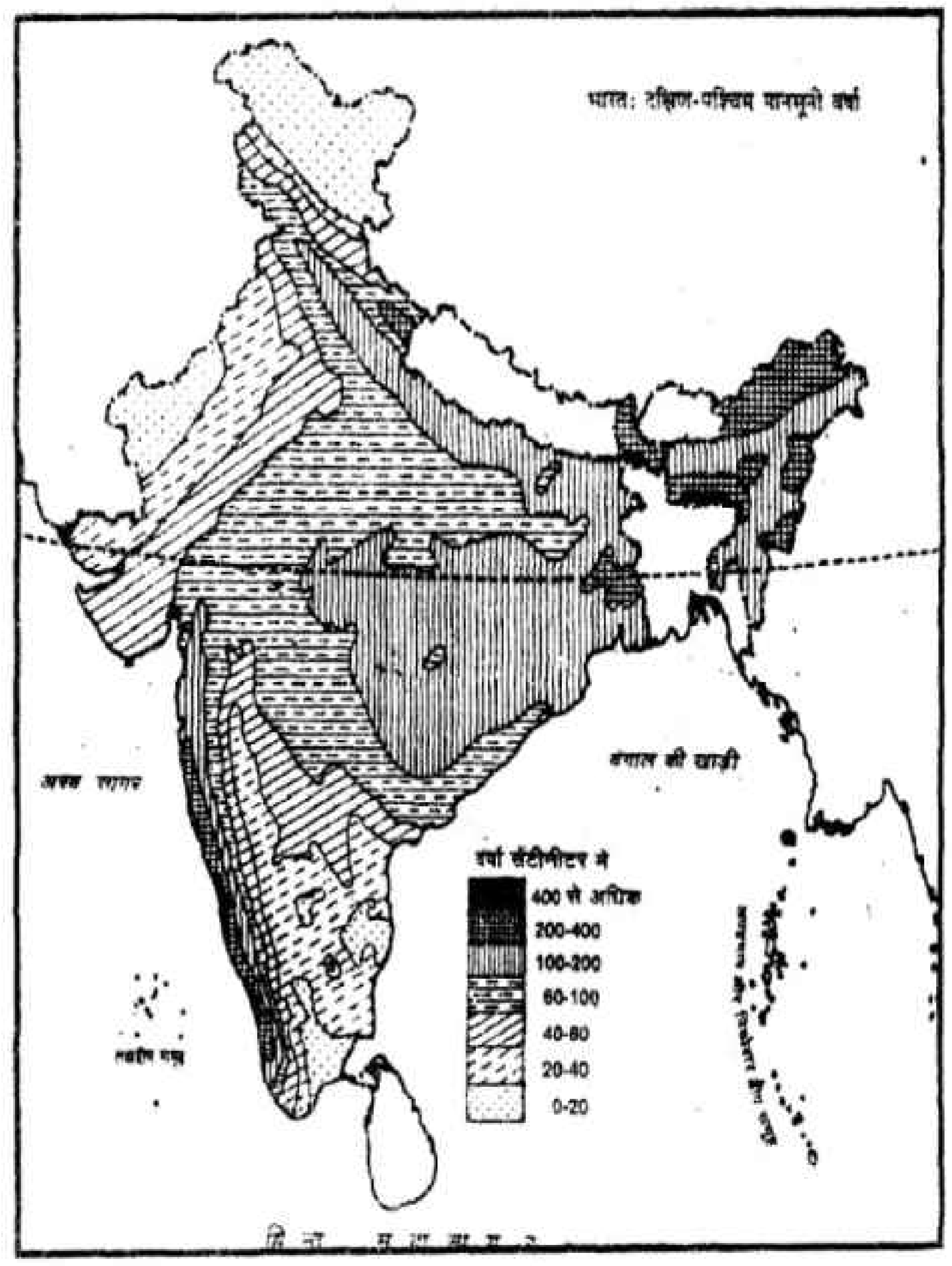

चित्र : दक्षिणी-पश्चिमी मानसूची वर्षा (जून से सितंबर)

7. भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में मानसून का विशेष योगदान जिसके कारण मानसून "भारतीय अर्थव्यवस्था का जुआ" कहा जाता है।

8. मानसून वर्षा के वितरण में असमानता (भारत में 12 से.मी. से 250 से.मी. से अधिक)

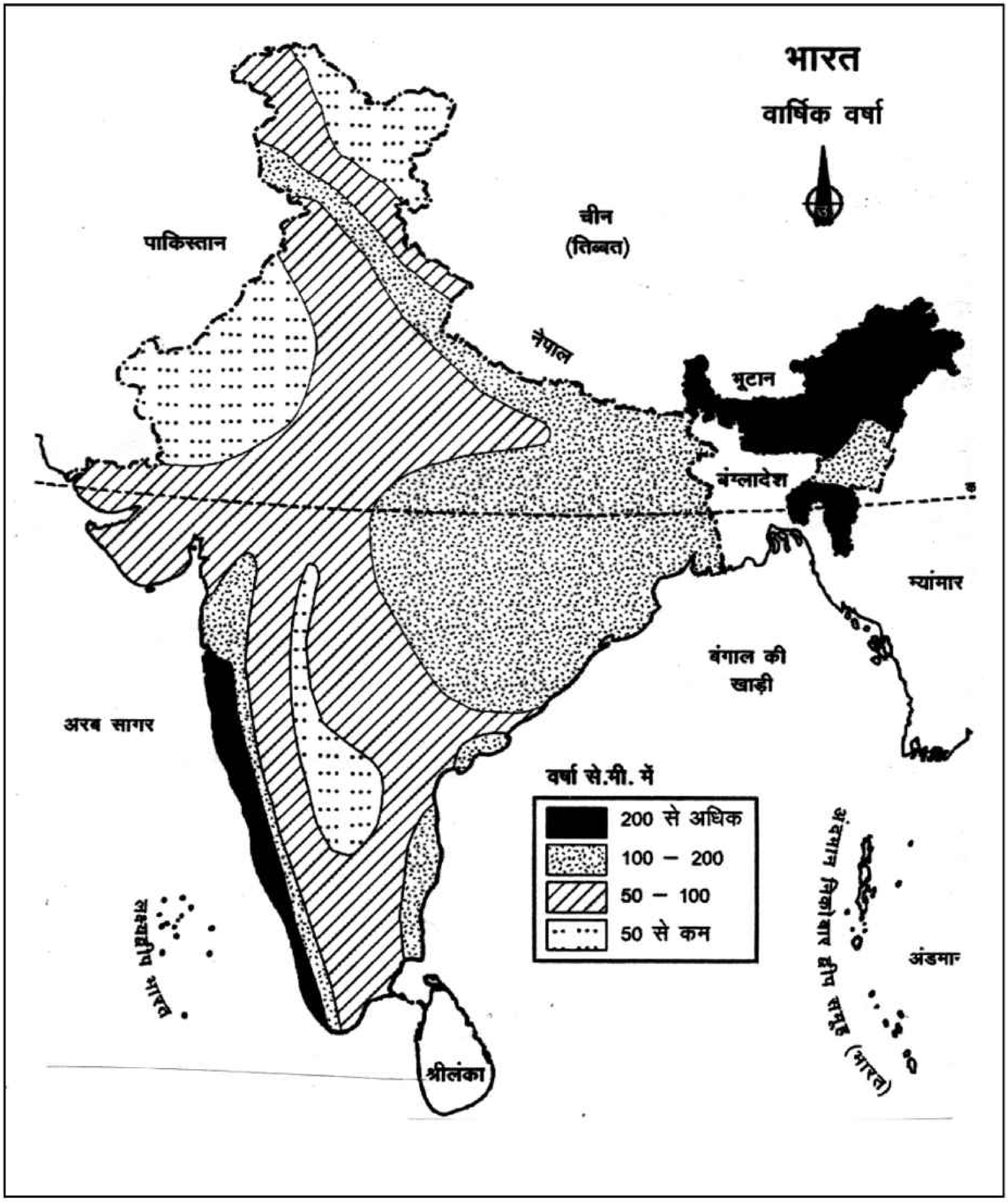
भारत
वार्षिक वर्षा
चीन
(तिब्बत)
पाकिस्तान
नेपाल
भूटान
बंग्लादेश
म्यांमार
बंगाल की
खाड़ी
अरब सागर
वर्षा से.मी. में
200 से अधिक
100 – 200
50 – 100
50 से कम
अंडमान निकोबार द्वीप समूह (भारत)
अंडमान
श्रीलंका

भारतीय मौसम तन्त्र व जलवायु से सम्बन्धित कुछ भौगोलिक शब्दावली

(Some Geographical Terms Related to Indian Climatic System)

- **अंत:उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Inter Tropical convergence zone ITCZ)**

  अन्त: उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र एक निम्न वायुदाब वाला क्षेत्र है। इसमें पवनें गर्म होने से ऊपर उठने लगती है। फलत: उस क्षेत्र में निम्न वायुदाब स्थापित हो जाता है। ग्रीष्मकाल में निम्न वायुदाब क्षेत्र गंगा के मैदान मे स्थापित होकर मानसूनी गर्त की उत्पत्ति होती है। शीत ऋतु में आई.टी.सी.जेड. दक्षिण की ओर खिसक जाता है। इसी के अनुसार पवनों की दिशा द.प. से उलट उ.पू. हो जाती हैं, इन पवनों को उ.पू. मानसून कहा जाता है।

- **पश्चिमी विक्षोभ (Western Disturbances) :** भूमध्य सागर से उत्पन्न होने वाले चक्रवात को पश्चिमी विक्षोभ कहते है। इससे भारत के पश्चिमोत्तर भाग में नवम्बर से फरवरी तक शीत ऋतु में वर्षा होती है। यह रबी की फसलों के लिए लाभकारी होती है।

- **आम्र वृष्टि (Mango Shower) :** द.प. मानसून के आगमन से पूर्व केरल व कर्नाटक के तटीय भागों में बौछारों के रूप में होने वाली हल्की वर्षा जो आमों को शीघ्र पकाने में सहायता करती है, आम्र वृष्टि कहलाती है।

- **काल बैसाखी (Kalbaisakhi) :** असम व प. बंगाल में अप्रैल के महीने में भयंकर तुफानों के रूप में होने वाली वर्षा जो चाय, पटसन व चावल की फसलों के लिए उपयोगी होती है।

- **लू (Loo) :** ग्रीष्म ऋतु में भारत के उत्तरी मैदानों में चलने वाली गर्म एवं शुष्क तीव्र पवनें।

- **मानसून विस्फोट (Burst of Monsoon) :** मानसून आगमन पर आर्द्र मानसूनी पवनों द्वारा घनघोर व बादलों की गड़गडाहट द्वारा तेज मूसलाधार वर्षा करना।

- **मानसून विच्छेद (Monsoon Break) :** द.प. मानसून (वर्षा ऋतु) के दौरान कुछ सप्ताह तक सूखे का दौर जो उष्ण कटिबन्धीय अवदाबों की गहनता में व्यवधान अथवा बदलाव के कारण होता है इससे वर्षा के स्थानिक वितरण पर प्रभाव पड़ता है।

- **भारत में सर्वाधिक व सबसे कम तापमान वाले स्थान :** राजस्थान के जैसलमेर व बाडमेर तथा सबसे कम तापमान कश्मीर के कारगिल व द्रास क्षेत्र।

- **भारत में सर्वाधिक व सबसे कम वर्षा वाले स्थान :** मेघालय के चेरापूंजी व मौसिनराम तथा सबसे कम वर्षा राजस्थान के जैसलमेर।

- **वृष्टि छाया प्रदेश :** आर्द्र पवनों के सम्मुख पड़ने वाले पर्वतीय ढाल अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं, जबकि विपरीत दिशा में पड़ने वाले ढाल (पवनभिमुख) आर्द्र पवनों के नीचे आने के कारण अपेक्षाकृत कम वर्षा प्राप्त करते हैं। ऐसे कम वर्षा वाले क्षेत्रों को 'वृष्टिछाया प्रदेश' कहते हैं।

अध्याय : 4

भारत : प्राकृतिक वनस्पति

समस्त प्राणी जगत अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वनस्पति पर निर्भर है। भारत में प्राचीन काल से ही वनो के महत्व को समझा गया। इसीलिए आज भी हम विभिन्न वृक्षों की पूजा करते है। बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हम निरंतर वनों का शोषण कर रहे हैं।

वनस्पति जात : किसी विशेष प्रदेश या काल के पादपों जिनकी जाति के अनुसार सूची बनाई जाती है तथा एक वर्ग के रूप में विचार किया जाता है।

वनस्पति : वृक्ष, छोटे पौधे, झाडियां, घास, सूक्ष्म काई और लाईकेन आदि पादपों के समूह जो एक दूसरे के साहचार्य में किसी विशेष पर्यावरण या पारिस्थितिक तंत्र में रहती है।

वन : वह बड़ा भू–भाग जो वृक्षों और झाड़ियों से ढका रहता है।

भारत में वनों के प्रकार

भौगोलिक आधार

(i) उष्ण कटिबंधीय सदाबहार एवं अर्द्ध सदाबहार वन

(ii) उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

(iii) उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वन

(iv) पर्वतीय वन

(v) वेलांचली व अनूप वन

प्रशासनिक आधार

- आरक्षित
- सुरक्षित
- अवर्गीकृत

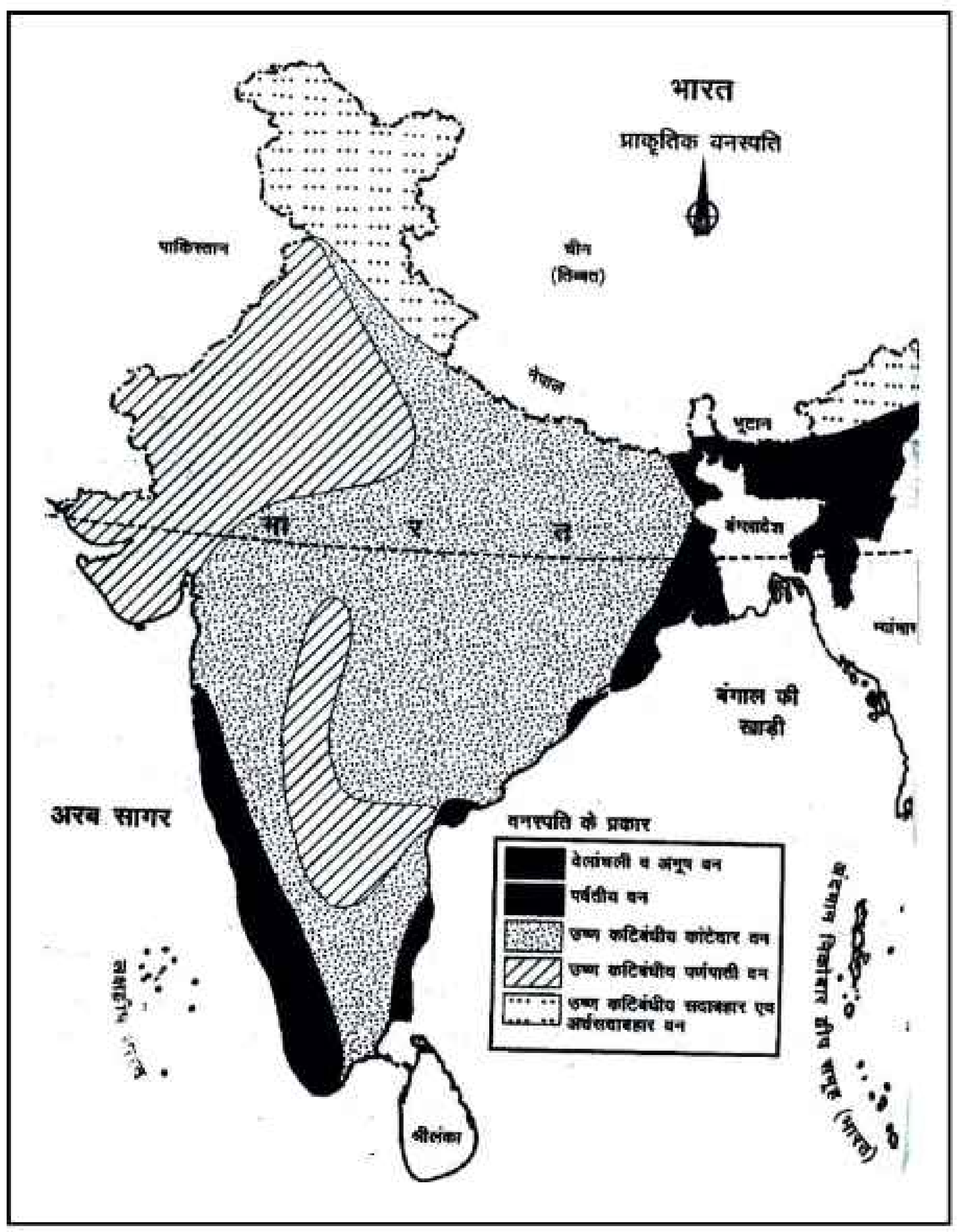

वनो की विविधता को प्रभावित करने वाले कारक

- मृदा में भिन्नता
- धरातलीय भिन्नता
- तापमान में भिन्नता
- वर्षा की मात्रा में भिन्नता
- आर्द्रता में भिन्नता

भारत में वनों के प्रकार

वन का प्रकार	वर्षा	क्षेत्र	मुख्य वृक्ष	प्रमुख विशेषताएँ
(1) उष्ण कटिबंधीय सदाबहार एवं अर्द्ध–सदाबहार वन	200 सेमी. से अधिक औसत वार्षिक वर्षा	केरल असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, अंडमान निकोबार द्वीप समूह	महोगनी, तुन, रोजवुड, ऐनी और एबनी	• अलग–अलग समय में पत्तियां गिराने के कारण सदैव हरे–भरे रहते है। • ये वन घने होते है। • वृक्ष 35 से 50 मी. ऊंचे। • वृक्षों की लकड़ी सख्त होती है। • रबड़ एवं चाय बगानों के लिए इनको साफ किया गया।
(2) उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन	70 से 200 सेमी. औसत वार्षिक वर्षा	सहायाद्रि के पूर्वी ढाल, प्रायद्वीपीय उत्तरपूर्वी पठार, भाभर एवं तराई क्षेत्र तथा उत्तर पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्र के।	सागवान, साल, शीशम, हुर्रा, महुआ, आंवला, चंदन आदि।	• ग्रीष्म ऋतु से पहले वृक्ष वर्ष में एक बार पत्तियां गिरा देते हैं। • वृक्षों का आर्थिक महत्व अधिक • वृक्षों की सघनता के बीच–बीच घास भूमियां है।
(3) उष्णकटिबंधीय कांटेदार वन	औसत वार्षिक वर्षा 50 सेमी. से कम	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के अर्घ शुष्क क्षेत्र	बूल, बेर, खजूर, नीम, खेजड़ी पलास आदि	• शुष्क ऋतु से पहले पत्तियां गिरा देते है। • पत्ते विहीन वृक्ष घास के मैदान मे ठूंठ दिखाई पड़ते हैं।

वन का प्रकार	वर्षा	क्षेत्र	मुख्य वृक्ष	प्रमुख विशेषताएँ
(4) पर्वतीय वन	–	हिमालय पर्वत श्रृंखला,		• वृक्ष कांटेदार होते है।
(i) उत्तरी पर्वतीय वन	–	हिमालय गिरपाद	चीढ़, देवदार, चिनार, वालन, चेस्टनट, सिलवर फर, पाइप, बर्च	• ऊंचाई के साथ वृक्षों में अंतर
(ii) दक्षिण पर्वतीय वन	–	प्रायद्वीप के तीनों भाग पश्चिमी घाट, विंध्याचल, नीलगिरी पर्वत श्रृंखलाएं कर्नाटक केरल, तमिलनाडु	मगनोलिया, लैरेल, सिनकोना, बैटल	• वनों से प्राप्त लकड़ी हस्त शिल्प के लिए इस्तेमाल। • चरागाहों की प्रमुखता।
(5) वेलांचली या अनूप वन	–	• आर्द भूमि क्षेत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा नदी के डेल्टाई प्रदेश, अंडमान निकोबार और सुंदरवन डेल्टा	मैंग्रोव वनस्पति	• ये वन लगभग 6740 वर्ग कि.मी. में फैले है। • मैंग्रोव वन लवणीय दलदलीय ज्वारीय संकरी खाडी, पंख मैदान, ज्वारनदमुख के तटीय क्षेत्रों में उगते हैं।

भारत में वन आवरण :

> **वन क्षेत्र :** राजस्व विभाग के अनुसार अधिसूचित क्षेत्र है, चाहे वहां वृक्ष हो अथवा न हो।
>
> **वन आवरण :** प्राकृतिक वनस्पति का झुरमुट है, और वास्तविक रूप में वनों से ढ़का है।

- राजस्व विभाग से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार भारत मे 23.28 प्रतिशत भाग पर वन है।
- वायु चित्रों और उपग्रह से प्राप्त 2001 में वास्तविक वन आवरण केवल 20.55 प्रतिशत था। इनमें 12.6 प्रतिशत पर सघन वन 7.8 प्रतिशत पर विवृत वन थे।
- भारत में वनावरण तथा वन क्षेत्र की दृष्टि से राज्यवार भी असमानता है। अंडमाान और निकोबार मे 86.93 प्रतिशत क्षेत्र वन के अधीन जबकि लक्षद्वीप में शून्य है।
- देश के उत्तर और उत्तर-पश्चिम में स्थित राज्य-राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली आदि ऐसे है जहां 10 प्रतिशत से कम वन क्षेत्र है।
- तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में 10 से 20 प्रतिशत भाग पर वन पाए जाते है।
- उत्तर पूर्वी राज्यों में 30 प्रतिशत से अधिक भूमि पर वन है।

वन संरक्षण :

- वनों का जीव और पर्यावरण के साथ घनिष्ठ संबंध है।
- वन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक तथा आर्थिक लाभ पहुंचाते हैं।
- वनों के संरक्षण के लिए भारत सरकार ने 1952 में वन संरक्षण नीति लागू की जिसे 1988 में संशोधित किया गया। इस नीति के अनुसार सरकार सतत् पोषणीय वन प्रबंध पर बल देती है।
- इस नीति के प्रमुख उद्देश्य है-

  (i) देश में 33 प्रतिशत भाग पर वन लगाना।

  (ii) पर्यावरण संतुलन के लिए पारिस्थितिक असंतुलित क्षेत्र में वन लगाना।

  (iii) देश की प्राकृतिक धरोहर जैव विविधता तथा अनुवांशिक पूल का संरक्षण

  (iv) मृदा अपरदन, मरुस्थलीकरण को रोकनना, बाढ़ व सूखे पर नियंत्रण

  (v) निम्नीकृत भूमि पर सामाजिक वानिकी

  (vi) वनों की उत्पादकता में वृद्धि।

  (vii) वृक्ष लगाने को बढ़ावा देना।

सामाजिक वानिकी

इनका अर्थ है – पर्यावरणीय, सामाजिक व ग्रामीण विकास में सहायता के उद्देश्य से वनों का प्रबंधन और सुरक्षा तथा ऊसर भूमि पर वृक्ष रोपण

शहरी वानिकी	ग्रामीण वानिकी	फार्म वानिकी
शहर और उसके आस-पास निजी व सार्वजनिक भूमि जैसे हरित पट्टी, पार्क सड़क के साथ की जगह औद्योगिक व व्यापारिक जगहों पर वृक्ष लगाना तथा उनका प्रबंध करना	कृषि वानिकी को बढ़ाना। कृषि वानिकी का अर्थ है कृषि योग्य तथा बंजर भूमि पर पेड़ व फसलें एक साथ लगाना। इससे खाद्यान्न के साथ-साथ चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी और फलों का उत्पादन एक साथ हो सके।	इसके अंतर्गत किसान अपने खेतों में व्यापारिक महत्व वाले पेड़ लगाते है। वन विभाग इसके लिए छोटे और मध्यम किसानों को नि:शुल्क पौधे उपलब्ध करवाता है। इस योजना के अंतर्गत खेतों की मेड़े चारागाहों, घास स्थल, घर के पास पड़ी खाली जमीन, पशुओं के बाड़ों पर पेड़ लगवाये जाते है।

वन्य प्राणी :

- वन्य प्राणी एक प्राकृतिक धरोहर है।
- भारत वन्य प्राणी की दृष्टि से समृद्ध देश है।
- यहां विश्व के ज्ञात पौधों और प्राणियों की कुल किस्मों में से 4-5 प्रतिशत पाई जाती है।
- भारत में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र है। इसी कारण यहां अधिक जैव विविधता है।
- मानव क्रियाओं द्वारा जैन प्रजातियों की संख्या में कमी आई है। कुछ प्रजातियां तो लुप्त होने के कगार पर है।

वन्य प्राणियों की संख्या में कमी होने के कारण

- औद्योगिकी और तकनीकी विकास के कारण वनों का दोहन
- खेती, मानवीय बस्ती, सड़कों, खदानों आदि के लिए वनों को समाप्त किया जाना।
- चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी के लिए वनों का सफाया।
- पालतु पशुओं के लिए नए चरागाहों की खोज में वन्य जीव और उनके आवसों को नष्ट करना।
- शिकार के कारण।
- जंगलों में आग लगाना।

वन्य प्राणी संरक्षण :

- वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए वन्य प्राणी अधिनियम 1972 लाया गया। इसके मुख्य उद्देश्य थे – संकटग्रस्त प्रजातियों को सुरक्षा प्रदान करना। नेशनल पार्क, पशु विहार जैसे संरक्षित क्षेत्रों को कानूनी सहायता प्रदान करना।

- देश में 92 नेशनल पार्क और 492 वन्य प्राणी अभयारण्य है।
- यूनेस्को के मानव और जीवमंडल योजना (Man and Biosphere Programme) के अंतर्गत भारत सरकार ने प्रोजेक्ट टाईगर (1973), प्रोजेक्ट एलीफेंट (1992), इसके अतिरिक्त मगरमच्छ प्रजनन परियोजना, हगुंल परियोजना, हिमालय कस्तूरी मृग परियोजना भी चलाई जा रही है।

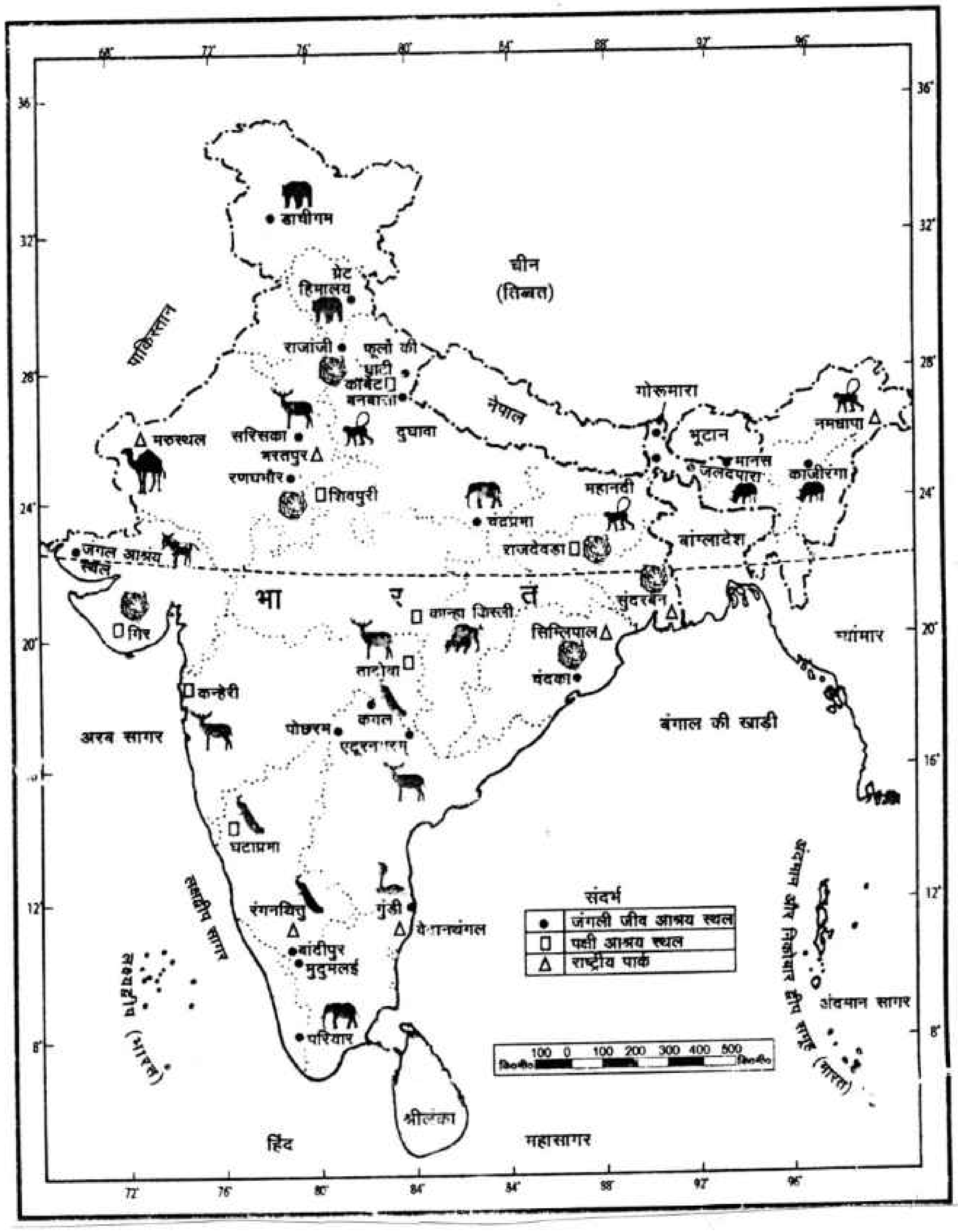

चित्र : राष्ट्रीय पार्क एवं पक्षी आश्रय स्थल

जैव मंडल निचय : (Bio-Sphere Reserve)

जैव मंडल निचय (आरक्षित क्षेत्र) यूनेस्को के मानव और जीवनमंडल योजना के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है।

जैव मंडल निचय के उद्देश्य →
- संस्थान : जीव विविधता और पारिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण
- विकास : पर्यावरण और विकास की मेल जोल
- व्यवस्था : अनुसंधान और देख-रेख के लिए अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क

जीव मंडल निचय की सूची

क्र.सं.	जीव मंडल निचय का नाम	कुल भौगोलिक क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)	स्थिति (प्रांत)
1.	*नीलगिरी	5,520	नगरहोल, बांदीपुर, मुदुमलाई (तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक)
2.	*नंदा देवी	2,236.74	चमोली, पिथौरागढ़ और अल्मोड़ा जिलों के भाग (उत्तरांचल),
3.	नोकरेक	820	गारो पहाड़ियों का हिस्सा (मेघालय)
4.	मानस	2,837	कोकराझार, बागाई गांव, (असम)
5.	*सुंदर वन	9,630	गंगा–ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र का डेल्टा
6.	*मन्नार की खाड़ी	10,500	भारत और श्रीलंका के बीच स्थित मन्नार की खाड़ी का भारतीय हिस्सा (तमिलनाडु)
7.	ग्रेट निकोबार	885	अंडमान–निकोबार के सुदूर दक्षिणी द्वीप
8.	सिमिलीपाल	4,374	मयूरभंज जिले के भाग (ओडिसा)
9.	डिब्रू–साईकोवा	765	डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया (असम)
10.	दिहांग–देबांग	5,111.5	अरुणाचल प्रदेश में सियांग और देवांग
11.	कंचनजुंगा	2,619.92	उत्तर और पश्चिम सिक्किम के भाग
12.	पंचमढ़ी	4,926.28	बेतूल, होशंगाबाद और छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश)
13.	अगस्त्यमलाई	1,701	केरल में अगस्तथीमलाई पहाड़ियां
14.	अचनकमर–अमरकटंक	3,835.51	मध्य प्रदेश में अनुपुर और दिन दोरी जिलों के भाग और छत्तीसगढ़ में बिलामपुर जिले का भाग

* यूनेस्को (UNESCO) द्वारा मान्यता प्राप्त जीव मंडल निचयों का विश्व नेटवर्क

स्त्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 2004–05, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार

अध्याय - 5

मृदा

लगभग समस्त जीवधारियों के लिए मृदा एक आवश्यक संसाधन है। मृदा के बिना घास का एक तिनका भी नहीं उग सकता। मृदा धरातल की ऊपरी परत है जिसका निर्माण शैलों के टूटने-फूटने तथा वनस्पति के सडे-गले अंशों के मिश्रण से जलवायविक तथा जैविक क्रियाओं द्वारा हुआ है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि मृदा का उपयोग मानव सभ्यता का महत्वपूर्ण आधार है। मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मृदों पर निर्भर करता है। मृदा का निर्माण हजारो वर्षों में अपक्षय और क्रमण के विभिन्न कारकों द्वारा जनक सामग्री पर कार्य करके मृदा की पतली परत का निर्माण होता हे।

मृदा निर्माण :

मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

उच्चावच | जनक सामग्री | जलवायु | वनस्पति तथा अन्य जीव

> जनक सामग्री **:** मूल शैलों में अनाच्छादन (अपक्षय व अपरदन) के प्रभाव से विखंडित तथा स्थानांतरित पदार्थ।

मृदा निर्माण एवं मृदा संस्तर : मृदा संस्तर सबसे उपर होता है जहां पौधों की वृद्धि के लिए अनिवार्य जैव पदार्थ खनिज पदार्थ पौषक तत्वों तथा जल का संयोग होता है। इस संस्तर को 'क' संस्तर के नाम से जानते है।

- संस्तर 'ख' संक्रमण संस्तर कहलाता है। यहां संस्तर 'क' तथा संस्तर 'ग' में संक्रमण होता है।
- संस्तर 'ग' की रचना ढ़ीली जनक सामग्री से होती है। यह मृदा निर्माण की प्रथम अवस्था होती है। ऊपर की दोनों परतों का निर्माण संस्तर 'ग' से ही होता है।
- परतों की इस व्यवस्था को मृदा परिच्छेदिका कहा जाता है।

मृदा का वर्गीकरण

- प्राचीन भारत में
  - उर्वर मृदा
  - ऊसर मृदा
- सामान्य विशेषता तथा बाह्य लक्षण के आधार पर
  - गठन के आधार पर
    - बलुई
    - मृण्मय
    - पांशु
    - दोमट
  - रंग के आधार पर
    - लाल
    - पीली
    - काली आदि
- उत्पत्ति, रंग संयोजन तथा अवस्थिति के आधार पर
  - (i) जलोढ़ मृदाएं
  - (ii) काली मृदाएं
  - (iii) लाल और पीली मृदाएं
  - (iv) लैटेराइट मृदाएं
  - (v) शुष्क मृदाएं
  - (vi) लवण मृदाएं
  - (vii) पीटमय मृदाएं
  - (viii) वन मृदाएं

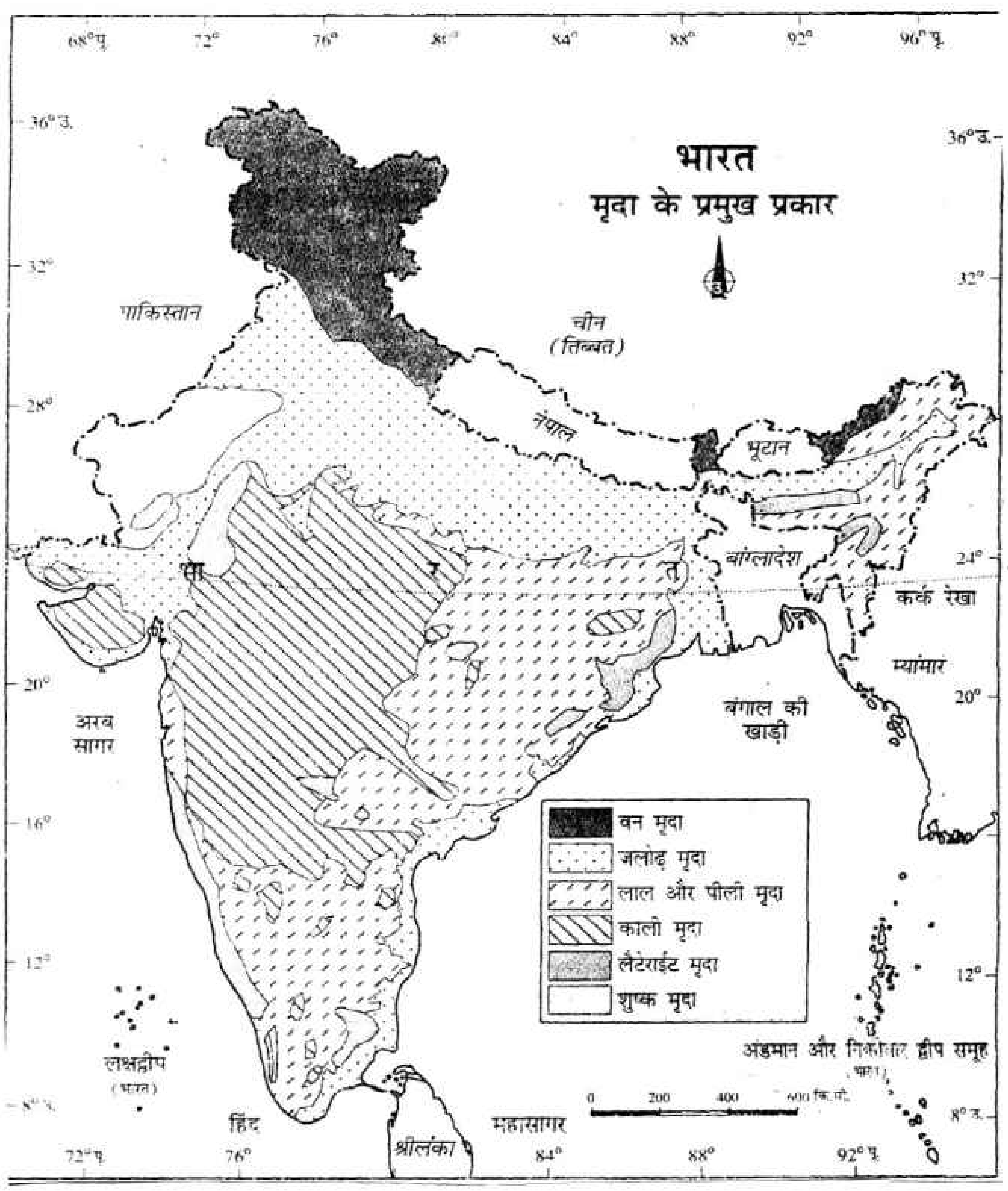

भारत में मृदा के प्रमुख प्रकार

मृदा का नाम	निर्माण/लक्षण	क्षेत्र	प्रमुख विशेषताएं
1. जलोढ़ मृदाए	इनका निर्माण बाढ़ के समय में बहाकर लाई गई मिट्टी (जलोढ़क) के जमाव से होता है। • इनमें पोटाश की मात्रा अधिक और फॉस्फोरस की मात्रा कम पाई जाती है।	• गंगा, सतलुज और ब्रह्मपुत्र के मैदान • डेल्टाई प्रदेश • दक्षिण भारत में महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि के डेल्टाई प्रदेश	• ये अधिक उपजाऊ है। • नई जलोढ़ को खादर तथा पुरानी जलोढ़ को बांगर कहते है।
2. काली मृदाए	इनका निर्माण ज्वालामुखी लावा से हुआ है। • नाइट्रोजन फॉस्फोरस तथा ह्यूमस की कमी होती है।	महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक आदि राज्यों (मालवा पठार तथा दक्षिण पठार के लावा प्रदेश) में।	• ये काले रंग की होती है। • पानी पड़ने पर चिपचिपी तथ सूखने पर चौड़ी–चोड़ी दरारें पड़ जाती है। • लौह अंश और ह्यूमस की मात्रा अधिक होने के कारण इनका रंग काला है। • नमी अधिक होती है। • बिना सिंचाई के खेती की जा सकती है।
3. लैटेराइट मृदाए	लैटेराइट मृदाएं उच्च तापमान और भारी वर्षा क्षेत्रों मे विकसित होती है। • इन मृदाओं में जैव पदार्थ, नाईट्रोजन फॉस्फेट और कैल्सियम की कमी होती है।	• कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और असम के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है।	• काजू जैसे वृक्ष वाली फसलों के लिए उपयुक्त। • इनका उपयोग भवनों के लिए ईंट बनानें लिए किया जाता है। • कृषि के लिए कम उपाजाऊ।

मृदा का नाम	निर्माण/लक्षण	क्षेत्र	प्रमुख विशेषताएं
4. शुष्क मृदाए	• सामान्यत: ये रचना से बलुई और प्रकृति से लवणीय होती है। • मरुस्थलों में चट्टाने दिन में तेज गर्मी और रात में ठंड से टूटकर रेत कणों में बदल जाती है। • रेत अधिक ह्यूमस कम या नहीं के बराबर होता है।	पंजाब और हरियाणा के दक्षिण भाग तथा राजस्थान	• अनुपजाऊ होती है। • राजस्थान में नहर के सिंचाई वाले क्षेत्र में महत्व अधिक है।
5. लवण मृदाए	• निर्माण खारा जल अपवाह क्षेत्रो में होता है। • लवणों और क्षरों की मात्रा अधिक	पश्चिमी गुजरात, पूर्वी तट के डेल्टाई क्षेत्रों पश्चिम बंगाल के सुंदरवन क्षेत्र	• ये अनुपजाऊ मृदा हैं। • डेल्टाई प्रदेश में समुद्री जल के भर जाने से होती है। लवण मृदाओं के विकास को बढ़ावा मिलता है।
6. पीटमय मृदाए	इनका निर्माण उच्च आर्द्रता से युक्त उन क्षेत्रों में होता है जहां वनस्पति की वृद्धि अच्छी हो इससे मृदा को ह्यूमस तथा पर्याप्त मात्रा में जैव तत्व प्राप्त होते हैं।	बिहार के उत्तरी भाग, पश्चिम बंगाल के तटीय क्षेत्रों, ओडिसा और तमिलनाडु में पाई जाती है। • उत्तराखंड के दक्षिणी भाग में भी ये मृदाएं मिलती है।	ये मृदाएं गाढ़े काले रंग की होती है। इस प्रकार की मृदा मे वनस्पति तेजी से बढ़ती है।
7. वन मृदाए	पर्वतीय ढालों पर कंकरीली, और पथरीली, घाटियों में बारीक कणों वाली होती है। हिमाच्छादन के कारण अम्लीय तथा कम ह्यूमस वाली होती है।	• हिमालय पर्वत श्रेणियों, पूर्वाचल, सह्याद्री, पूर्वी घाट और प्रायद्वीप के ऊंचे भागों में पाई जाती है।	• पर्वतीय ढालों की अपेक्षा, घाटियों में बारीक कण होने से अपेक्षकृत ऊपजाऊ होती है। • चाय, कॉफी बागानों, फल या सब्जी आदि अधिक मात्रों में उगाई जाती है।

मृदा अपरदन :

मृदा के आवरण का विनाश मृदा अपरदन कहलाता है। दूसरे शब्दो में जब बहता हुआ जल, पवन हिमानी आदि शक्तियां मृदा के आवरण का विनाश करती हैं तो उसे मृदा अपरदन कहते हैं।

मृदा अपरदन के प्रकार

- अवनलिका अपरदन तेज बहता हुआ जल नदियां भूमि में नालियां बना देती हैं और कटी हुई मृदा को अपने साथ बहा ले जाती है।
- परतदार अपरदन
  जब वर्षा का जल या पवन मृदा की ऊपरी परत को बहाकर या उड़ाकर ले जाता है। इस में मृदा की उपजाऊ ऊपरी परत सदा के लिए नष्ट हो जाती है।

मृदा अपरदन के कारण

- प्राकृतिक वनस्पति का नाश
- अत्यधिक चराई
- कृषि का गलत तरीका

मृदा संरक्षण के उपाय

- वृक्षारोपण
- समोच्च रेखाओं के अनुसार मेड़बंदी
- पशुचारण पर नियंत्रण
- कृषि के सही तरीके

मानचित्र कार्य –

1. भारत के मानचित्र में जलोढ़ मिट्टी काली मिट्टी के क्षेत्र को दर्शाइए और ये भी पता कीजिए कि इन क्षेत्रों में कौन–कौन सी फसल उगाई जाती है।

अध्याय - 6

प्राकृतिक संकट तथा आपदाएं

किसी भी आपदा के प्रति जागरूकता और उसकी जानकारी ही बचाव है।

संसार के सबसे अधिक प्राकृतिक आपदा वाले देशों में चीन के बाद भारत का स्थान है। यहां प्रतिवर्ष छः करोड़ से भी अधिक लोगों को प्राकृतिक आपदाओं की मार सहनी पड़ती है और अरबो रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।

प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है। उसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं। प्रकृति के अनमोल उपहारों का तो कहना ही क्या। पवनों का चलना, आंधी-तूफान का आना, वर्षा का होना, गर्मी-सर्दी का पड़ना, ये सभी प्राकृतिक प्रक्रियाएं हैं। जरा सोचिए कि क्या इनके बिना हमारा जीवन सम्भव है? कदापि नहीं। कभी-कभी ये प्रक्रियाएं जब अपने चरम पर होती हैं, तो बड़े दु:ख का कारण बन जाती हैं। इनका दुष्प्रभाव असहनीय बन जाता है तथा जन-धन की बहुत हानि होती है। प्राकृतिक घटनाओं से जब जन-धन की भारी मात्रा में हानि होती है, तब वही घटनाएं प्राकृतिक आपदाएं कहलाती हैं।

विगत् दस वर्षों में प्राकृतिक आपदाओं की संख्या बढ़ी है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के साथ-साथ तेजी से बढ़ते नगरीकरण ने प्राकृतिक घटनाओं को आपदा में परिवर्तित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को रोका तो नहीं जा सकता लेकिन उनके दुष्प्रभाव को अवश्य कम किया जा सकता है; उनके प्रभाव को सहन करने की क्षमता विकसित की जा सकती है। यह सब आपकी सोच, इच्छाशक्ति, आपके संकल्प और आपकी कार्यशैली पर निर्भर है।

इस पाठ में कुछ प्रमुख प्राकृतिक आपदाओं के बारे में वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है :

• भूकम्प • सूनामी • चक्रवात • भूस्खलन • बाढ़ • सूखा

खतरे या संकट (Hazards)

''खतरे या संकट वे खतरनाक प्राकृतिक और मानवकृत घटनाएं हैं जिनसे मनुष्य को चोट, जीवन की क्षति, जीविकोपार्जन के साधनों का नाश या पर्यावरण का क्षरण हो सकता है।''

विश्व बैंक ने आपदा की परिभाषा इस प्रकार की है- ''आपदा एक अल्पकालिक घटित होने वाली असामान्य घटना है, जो देश की अर्थव्यवस्था में गंभीर गतिरोध पैदा करती है।''

प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

वायुमण्डलीय	भौमिक	जलीय	जैविक
बर्फानी तूफान	भूकम्प	बाढ़	पौधे व जानवर उपनिवेशक के रूप में (टिड्डीयां इत्यादि)
तड़ितझंझा	ज्वालामुखी	ज्वार	कीट ग्रसन फफूंद
तड़ित	भू-स्खलन	महासागरीय धराएं	बैक्टीरिया
टॉरनेड़ो	हिमस्खलन	तूफान	वायरल संक्रमण
उष्ण कटिबधीय चक्रवात	अवतलन	सुनामी	बर्ड फ्लू, डेंगू इत्यादि।
सूखा	मृदा अपरदन		
पाला, लू, शीतलहर			

1948 से अबतक की प्रमुख प्राकृतिक आपदाएं

वर्ष	स्थान	प्रकार	जनहानि (मृत्यु)
1948	सोवियत संघ (अब रूस)	भूकम्प	110,000
1949	चीन	बाढ़	57,000
1954	चीन	बाढ़	30,000
1965	पूवी पाकिस्तान (अब बंगलादेश)	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	36,000
1968	ईरान	चक्रवात	30,000
1970	पेरू	भूकम्प	66794
1970	पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश)	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	500,000
1971	भारत	चक्रवात	30,000
1976	चीन	भूकम्प	70,000
1990	ईरान	भूकम्प	50,000
2001	भारत	भूकम्प	25,000
2004	इंड़ोनेशिया, श्रीलंका, भारत आदि	सुनामी	50,000
2005	पाकिस्तान, भारत	भूकम्प	70,000
2011	जापान	सुनामी	15842

1. भूकम्प (Earthquake)

26 जनवरी 2001 के गुजरात राज्य के भुज में आए भूकम्प की विनाशलीला ने गणतंत्र दिवस की परेड का रंग ही उड़ा दिया। यह भारत में भूकम्प को अब तक की भीषणतम आपदा है। इसमें 25000 से अधिक लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। लगभग साढ़े तीन लाख मकान पूर्ण रूप से ध्वस्त हो गए तथा लगभग 8 लाख मकान क्षतिग्रस्त हुए। इससे भी अधिक तीव्रता का भूकम्प मुजफ्फराबाद (पाक अधिकृत कश्मीर) में आया। इससे देश का उत्तर-पश्चिमी भाग कांप उठा। दिल्ली दहल उठी। इस भूकम्प से पाक अधिकृत कश्मीर में 83 हजार से भी अधिक लोगों की मौत हो गयी। जम्मू-कश्मीर राज्य में लगभग 10,000 से अधिक लोग काल कलवित हो गए। सीमा के जागरूक अनेक प्रहरी भी अपनी जान नहीं बचा सकें।

भूकंप से कुछ इमारतें गिर गई

कश्मीर में भूकंप का असर

भूकम्प एक ऐसी प्राकृतिक घटना है जो बिना किसी सूचना के कहीं भी, कभी भी घट सकती है और पल भर में क्या कुछ कर दे, कुछ नहीं कहा जा सकता। यह पृथ्वी पर घटित होने वाली प्रकृति की एक सामान्य घटना है, परन्तु परिणाम बड़े ही भयानक होते हैं।

भूकम्प के कारण

- भूगर्भिक प्लेटों का गतिशील होना
- ज्वालामुखी विस्फोट होना
- भ्रंश आदि

आइए! भूकम्प की उत्पति कैसे होती है इसे जानने का प्रयास करें-

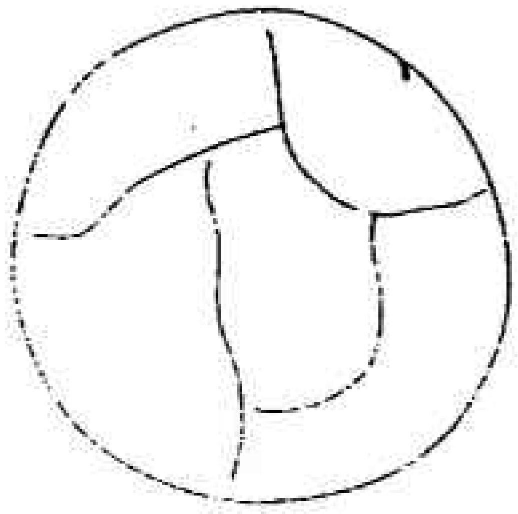

चित्र : पृथ्वी की सतह कई प्लेटों से बनी है

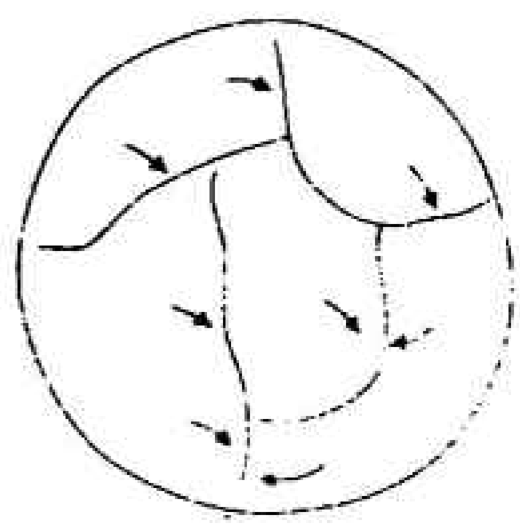

चित्र : ये प्लेटे गतिशील हैं।

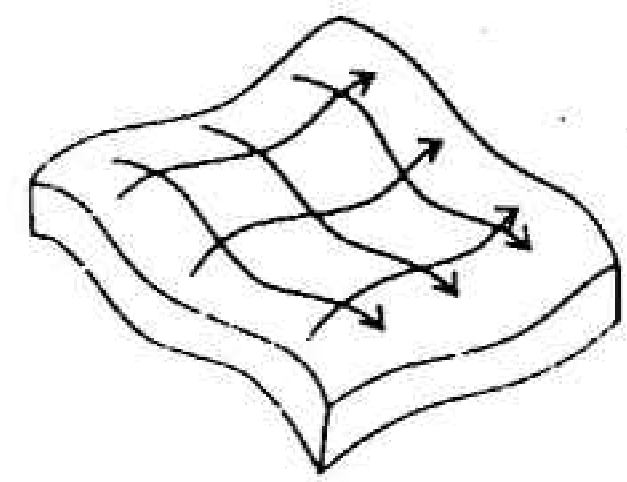

चित्र : प्लेटों की गतिशीलता से ऊर्जा संचित होती है और भूकंप आते हैं।

भूकम्प की शक्ति 3 तरह की तरंगों मे निकलती है। इनमें पहली या P तरंगे सबसे पहले और दूसरी या S तरंगे उसके बाद महसूस की जाती हैं। तीसरी तरह की तरंगे सतही तरंगें L होती हैं। सतही तरंगें भी दो तरह की होती हैं- पहली तरंगें ऊपर-नीचे घूमती हुई आगे बढ़ती हैं और दूसरी तरंगें ऊपर-नीचे धक्का देती हुई चलती हैं। इन्हीं दोनों तरंगों से इमारतों को सबसे ज्यादा नुकसान होता है।

भूकम्प का अर्थ पृथ्वी का भूगर्भिक हलचलों के कारण अचानक हिलना है। 'प्लेट विस्थापन सिद्धांत' के अनुसार पृथ्वी भारी-भरकम प्लेटों से बनी हैं जो हर साल कुछ ही सेंटीमीटर खिसकती हैं। जब कभी भी ये प्लेटें आपस में टकराती हैं तो टकराहट के फलस्वरूप हुई उथल-पुथल से ऊर्जा का विशाल भण्डार इन परतों में कैद हो जाता है। इससे घनीभूत ऊर्जा भण्डार एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है। यह जमा हुई ऊर्जा कंपन तरंगों के रूप में जिस स्थान से पृथ्वी पर बाहर निकलती हैं वही स्थान भूकम्प का केन्द्र अथवा 'एपीसेंटर' कहलाता है। एपीसेंटर से जो ऊर्जा निकलती है वह कई गुना परमाणु बम से अधिक शक्तिशाली होती है। अगर यह ऊर्जा ज्वालामुखी विस्फोटों आदि से नहीं निकल पाती तो वह धरती पर भूकम्प उत्पन्न करती है।

भारत में भूकंप का क्षेत्र

भारतीय मानक संस्थान ने वर्ष 1976 में संशोधित मेरकाली पैमाने (Merealli is Magnitude Scale) पर आधारित भूकम्पों की तीव्रता और भूकम्प क्षेत्रों को दर्शाते हुए भारत का एक मानचित्र प्रकाशित किया है जिनमे निम्नलिखित भूकम्पीय क्षेत्रों को दर्शाया गया है-

संशोधित मेरकाली पैमाने के आधार पर

क्षेत्र	विशेषता	भूकम्प तीव्रता
I	ज्ञात नहीं	–
II	मंद	3.5–4.2
III	हल्का	
IV	सामान्य	43.–4.8
V	थोड़ा शक्तिशाली	
VI	शक्तिशाली	4.9–5.4
VII	अधिक शक्तिशाली	
VIII	विनाशकारी	6.2–6.9
IX	विनिष्टकारी	
X	विध्वंसकारी	7.0–7.3
XI	अत्यधिक विध्वंसकारी	7.4–8.1
XII	प्रलयकारी	8.1 से अधिक

क्रियाकलाप : नीचे दिए गए मानचित्र द्वारा ज्ञात कीजिए कि दिल्ली किस भूकम्प क्षेत्र में आता है यदि यहां कभी भूकम्प आता है तो इसकी तीव्रता कितनी हो सकती है?

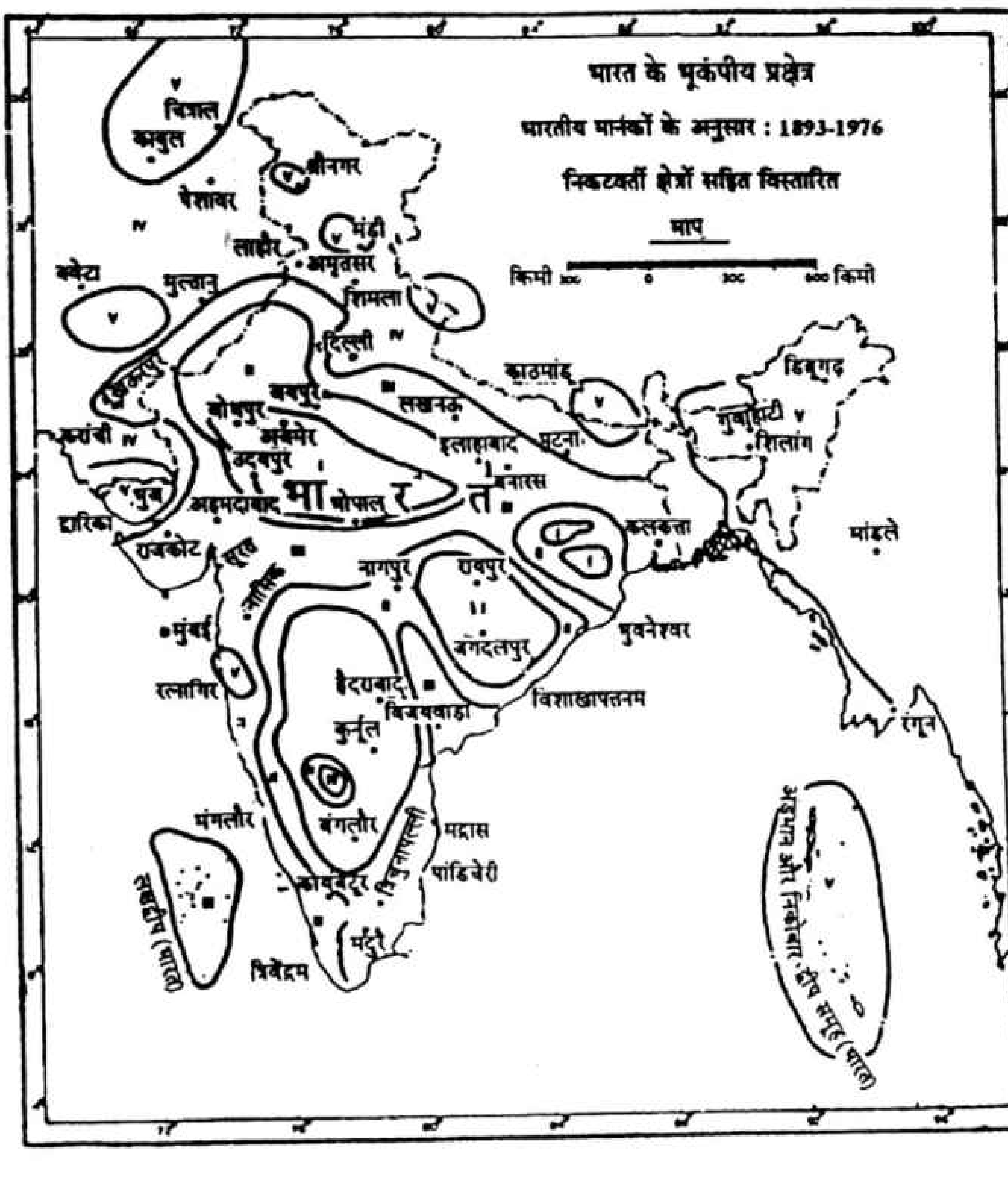

भारत के भूकम्पीय क्षेत्र

भूकम्प की तिथियों और तीव्रता		
तिथियां/वर्ष	क्षेत्र	तीव्रता
21 अगस्त 1988	भारत–नेपाल सीमा	6.5
20 अक्टूबर 1991	उत्तरकाशी	6.6
30 सितम्बर 1993	लातूर	6.3
22 मई 1997	जबलपुर	6.0
29 मार्च 1999	चमोली	6.8
26 जनवरी 2001	भुज	7.9
8 अक्टूबर 2003 (पाक अधिकृत कश्मीर)	मुज़फ्फराबाद	7.5

जम्मू के निकट भूकंप से धरती का फटना।

क्रियाकलाप

भूकम्प के आने से पूर्व बचाव के लिए क्या-क्या तैयारियां करेंगें?

दिल्ली में भूकम्प का प्रभाव

बीते कुछ समय में दिल्ली ने भूकम्प के अनेक छोटे-छोटे झटके अनुभव किए हैं। दिल्ली ने पहले भी भूकंप से होने वाली हानि को झेला है।

1. खुर्जा भूकम्प (एम 6.7) 10 अक्टूबर 1956, जिसमें बुलन्दशहर के 23 लोग मारे गए थे और दिल्ली में कुछ लोग घायल हुए थे।
2. दिल्ली के निकट 27 अगस्त 1960 का भूकम्प, जिसमें दिल्ली में 50 लोग घायल हुए थे।
3. 15 अगस्त 1966 को मुरादाबाद के निकट भूकम्प, जिसने दिल्ली के 14 लोगों को मार डाला।
4. 28 जुलाई 1994 को आए भूकम्प (एम 4.0) के दौरान दिल्ली की जामा मस्जिद की एक मीनार गिर गयी थी।
6. 8 अक्टूबर 2005 को दिल्ली से हजारो कि.मी. दूर पाक अधिकृत कश्मीर मे 7.5 की तीव्रता का भूकम्प आया। उससे दिल्ली की कई इमारतों में दरारें आईं जिनमें दिल्ली सचिवालय भी शामिल है। एक इमारत से गिरने वाली ईंट ने एक मजदूर की जान ले ली।

सुनामी (Tsunami)

सुनमी लहरों से विनाशलीला भारत में सबसे अधिक उस समय महसूस की गई जब 26 दिसम्बर 2004 को दक्षिण-पूर्व एशिया के तटवर्ती देशों में कहर बरपाया और इन भयानक लहरों से लगभग 283000 लोगों की जानें चली गईं और लाखों लोग घायल एवं बेघर हो गए। अरबों की सम्पत्ति नष्ट हो गई।

क्या हैं सूनामी लहरें?

- सूनामी (Tsunami) जापानी शब्द है, जिसका अर्थ है भयानक समुद्री लहरें।
- पृथ्वी की प्लेटो के टकराने से जिस समय समुद्र तलहटी में भूकम्प आते या ज्वालामुखी फटते हैं और उनसे उत्पन्न ऊर्जा के कारण इन तरंगों का जन्म होता है।
- ये लहरें आगे बढ़कर तटीय इलाकें में भारी तबाही मचाती हैं।
- सुनामी लहरें 10 से 30 मीटर तक ऊँची होती हैं।
- जापान, हवाई, ऑरिगन, कैलिफोर्निया और वॉशिगंटन को कई बार चपेट में ले चुकी है।

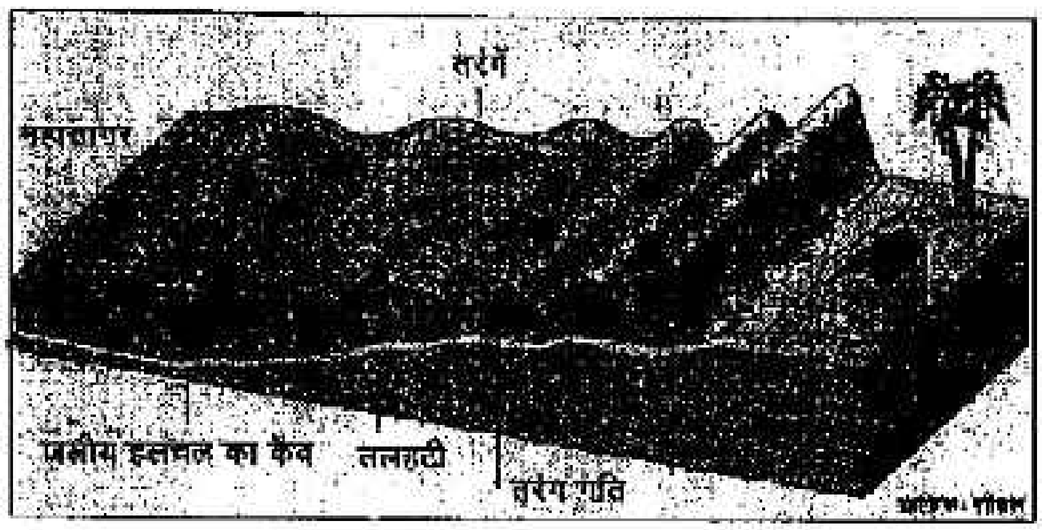

सुनामी की उत्पत्ति

सुनामी के कारण

- समुद्री भूकम्प
- समुद्र में ज्वालामुखी विस्फोट
- समुद्र में उल्कापात
- समुद्र के भीतर चट्टानों का टूटना

सुनामी की विशेषताएँ

भूकंप से समुद्र में ऐसे फैली लहरें

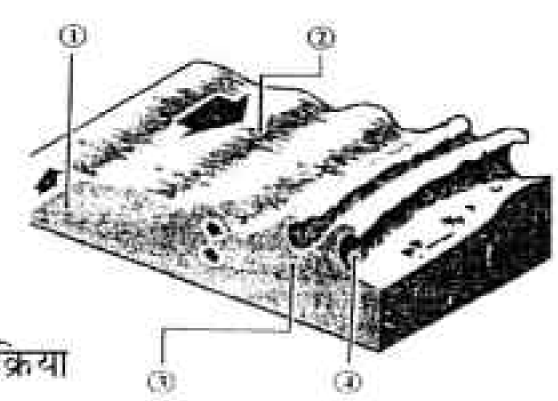

सुनामी की प्रक्रिया

1. समुद्र में हलचल पैदा होने से पानी ऊपर की ओर उठता है और लहरें उत्पन्न हो जाती है।
2. गहरे समुद्र में लहरों की रफ्तार बहुत तेज होती है और वे 500 कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ने लगती हैं।
3. जैसे ही ये तट के पास पहुंचती हैं इनकी रफ्तार 45 कि. मी. प्रति घंटा हो जाती है और तट से टकराकर इनमें जबदरस्त उछाल पैदा हो जाता है।
4. लहरें तटीय क्षेत्र के अन्दर घुस जाती हैं और रास्ते में आने वाली हर चीज को तहस-नहस कर देती हैं।

सुनामी की विशेषताओं को जानने से आपको पता चलेगा कि सूनामी लहरे कितनी भयानक होती हैं:

1. ये सामान्य लहरों से भिन्न होती हैं।

2. सूनामी लहरो की गति 500 से 700 किमी. प्रति घंटा तक हो सकती है।

3. कभी सूनामी के कारण समुद्र का पानी तट से दूर तक चला जाता है और समुद्र तल नजर आने लगता है। इसे सूनामी की चेतावनी माना जाता है।

4. सूनामी लहरों की लम्बाई 100 किमी. तक हो सकती है।

5. सूनामी लहरें 10 से 30 मीटर तक ऊँची हो सकती हैं।

6. ये लहरें एक श्रृंखला के रूप में आती हैं जिनमें अंतराल कुछ मिनटों से लेकर घंटों तक का हो सकता है।

7. तट पर सुनामी लहरों में पानी की विशालकाय दीवार खड़ी हो जाती है।

8. सुनामी लहरें कभी भी आ सकती हैं।

भारत सरकार ने वर्ष 2005 को आपदा जागरूकता वर्ष घोषित किया है।

सूनामी को पता लगाने वाली तकनीक

1. उपग्रह प्रौद्योगिकी

2. तटीय गेज

3. सूनामी सर्तर्कता यंत्र

4. सूनामी मीटर

5. डीप ओशन एसेसमेंट एंड रिपोर्टिंग ऑफ सुनामी

क्रियाकलाप

आप यदि समुद्री तटों पर खड़े हैं और सूनामी आने वाली है, तो आप तत्काल क्या करेंगे और उस क्षेत्र के लोगों को कैसे बचने को कहेंगे?

सुनामी लहरों का प्रभाव

1. ये लहरें हलचल के केन्द्र से आगे बढ़ते हुए, एक-दो घंटे का सफर तय करके तटवर्ती इलाकों में हमला बोलती है।

2. सुनामी लहरें इतनी तेज गति से आती है कि इनके तट में पहुंचाने तक आसपास के घरों और इमारतों को खाली

करना नामुमकिन होता है। अपने रास्ते में आने वाली हर वस्तु को मिनटों में तहस–नहस कर देती है।

3. तट से टकराने के बाद इनके रास्ते में जो भी आता है उसे निगल लेती है।

4. इन लहरों का पानी नदियों के पानी को खारा कर देता है।

5. इनके कारण बिजली, दूरसंचार और यातायात का पूरा नेटवर्क ध्वस्त हो जाता हैं।

सुनामी के कारण समुद्री तटों के पास के इलाकों में जो जानें गई हैं, उससे हमें यह सबक लेना चाहिए कि हमारा जीवन पर्यावरण पर निर्भर है। हम आत्मनिर्भर जरूर हैं लेकिन प्रकृति द्वारा बनाई गई व्यवस्था में हम एक दूसरे पर निर्भर भी करते हैं।

वैज्ञानिकों ने बताया है कि भूकम्प सागर तल से 40 किमी. नीचे उस जगह पैदा हुआ जहां भारतीय भूगर्भीय प्लेट बर्मी प्लेट से टकराती है। इस बार की टक्कर मे बर्मी प्लेट ने भारतीय प्लेट को नीचे की ओर धकेला और दोनों प्लेटों की त्वरित गति ने भूकम्प और सुनामी को जन्म दिया।

थाईलैंड के मोर्गन समुद्री जिप्सी मछुआरों ने इसके लिए अपने यहां प्रचलित लोक कथाओं में अंतर्निहित ज्ञान का सहारा लिया और वे साफ–साफ बच गए। उन लोगों ने पूर्वजों के द्वारा सुनाई लोक कथाओं में यह सुन रखा था कि समुद्र का पानी एकाएक काफी गहराई तक घट जाए तो इसका मतलब कि उससे ज्यादा प्रचंड वेग से वह वापस आने वाला है। समुद्र का पानी तेजी से पीछे की ओर हटता देख जिप्सी मछुआरों ने किसी अनहोनी की आशंका से गांव छोड़कर एक छोटी पहाड़ी पर स्थित मंदिर में शरण ले ली और सभी 181 मछुआरे सकुशल बच गए, जबकि इस क्षेत्र के कई गांव पूरी तरह तबाह हो गए। अंडमान निकोबार की असभ्य समझी जाने वाली जावा, ओंगी, शैम्पेन, सेंटेनली और ग्रेट अंडमानी जैसी दुर्लभ जनजातियां इस हादसे में पूरी तरह सुरक्षित बच गईं। ये तट से दूर जंगल में सुरक्षित स्थानों पर चले गए थे।

26 दिसम्बर 2004 की सूनामी लहरों का असर

- समुद्री भूकम्प के कारण और तीव्रता स्केल 9.2।
- दक्षिणी पूर्व एशिया के 12 देश प्रभाावित।
- इण्डोनेशिया, श्रीलंका, थाईलैड मुख्य रूप से प्रभावित।
- भूकम्प का एपीसेंटर 6.5 किमी. नीचे।
- लगभग 2.83 लाख लोगों की जाने गई जिनमें लगभग 20000 मौतें भारत के तटीय क्षेत्रों में हुईं।
- प्रभावित क्षेत्र की लम्बाई लगभग 7000 किमी।
- अंडमान निकोबार द्वीप समूह का भौगोलिक स्वरूप बिगड़ गया।
- अरबों की सम्पत्ति का नुकसान।

भारतीय भूकम्प विशेषज्ञों के मुताबिक मलेशिया के सुमात्रा प्रायद्वीप में आए प्रलयकारी भूकम्प में इस कदर ऊर्जा निकली कि दो हजार किलोमीटर दूर स्थित भारतीय शहरों की भी जमीन हिल गई। भूकम्प के बाद निकली ऊर्जा से उठी सुनामी लहरें वैसे तो दुनिया के कई देशों पर हमला बोल चुकी हैं लेकिन हिन्द महासागर के जरिए भारत के दक्षिण-पूर्वी तटवर्ती शहरों में इन लहरों का कहर पहली बार टूटा है।

सुनामी लहरों की मार खाकर नष्ट हो गया चैन्नई के समुद्री तट पर बेड़ा!

एक अध्ययन जो जान बचाए

एण्ड्यू कार्ने भूगोल के आदर्श अध्यापक हैं। वह इंग्लैंड के सरे प्रान्त के ऑक्सफोर्ड के डेन्स हिल स्कूल में कार्यरत है। दिसम्बर 2004 के पहले सप्ताह में उन्होंने 10-11 आयु वर्ष के कक्षा VI के विद्यार्थियों को विवर्तनिक प्लेटों तथा सागरों के नीचे उत्पन्न होने वाले भूकम्पों के सम्बन्ध में विस्तृत और रोचक जानकारी दी थी। विषय-वस्तु को रोचक और सरल बनाने के लिए उन्होंने 1946 में हवाई द्वीप में आई सूनामी लहरो क स्वरूप और उसके प्रभाव को स्लाइड्स की मदद से चित्रित किया था।

10 वर्षीय टैली स्मिथ इसी कक्षा की एक छात्रा थी। संयोग से वह अपने परिवार के साथ क्रिसमस के अवसर पर अपने माँ-बाप और छोटी बहन के साथ थाईलैण्ड गई हुई थी। उनके पिता कोलिन स्मिथ तथा माता पेली स्मिथ हैं। स्मिथ परिवार ने दक्षिणी थाईलैण्ड के पुरवेत नगर में रहकर त्यौहार मानने का निश्चय किया। बड़ी हंसी-खुशी के साथ स्मिथ परिवार दुखेत नगर की मैखाओ पुलिन (बीच) पर क्रिसमस के उत्सव का आनंद उठा रहा था। श्रीमती स्मिथ ने देखा कि सागर का किनारा निरंतर सिकुड़ता जा रहा है। यह देख वह बड़ी विस्मित हो रही थी। तथी टैली स्मिथ ने इस नजारे को देखा तो वह एकदम घबरा उठी। वह बड़ी ज़ोर से चीखी-चिल्लाई और भागो-भागो की रट लगाई। घबराहट में वह कुछ अधिक तो बोल न सकी परन्तु उसने अपने माँ-बाप को पुलिन (तट) छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। वहां उपस्थित अन्य कई लोगों ने भी स्मिथ परिवार के साथ अनहोनी की सम्भावना समझ पुलिन को छोड़ दिया। थोड़ी देर में ही देखते-देखते लगा कि सागर का सारा जल खाड़ी में उमड़ पड़ा। इस अप्रिय घटना से स्मिथ का परिवार बच गया, कई और लोग भी बच गए।

टैली स्मिथ ने लौटकर अपनी कक्षा में यह वृतांत सुनाया तो सबको सुखद आश्चर्य हुआ क्योंकि तब तक सुनामी की विनाश लीला की सर्वत्र खबर पहुंच चुकी थी। जब टैली स्मिथ की इस घटना का वृतान्त समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ तो दुनि भर से ई-मेल द्वारा कार्ने महोदय को बधाई पत्रों का आने का तांता लग गया। यह है एक आदर्श अध्यापक की शैली और छात्रा की सूझ-बूझ। हम सबको इससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

3. चक्रवात (Cyclone)

चक्रवात निम्न वायुदाब के केन्द्र होते हैं इनमें निम्न वायुदाब केन्द्र से बाहर की ओर वायुदाब बढ़ता जाता है। धरातल पर कुछ क्षेत्रों में ऐसी वायुमण्डलीय दशाएं पैदा हो जाती है कि निम्न वायुदाब विकसित हो जाता है इसके चारों ओर उच्च वायुदाब बन जाता है, जिससे तीव्र गति से पवनें उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर चलने लगती है। वायुदाब की इस प्रकार की अवस्था को चक्रवात कहते हैं। श्रीलंका, मालदीव, भारत का पूर्वी एवं पश्चिमी तटीय क्षेत्र, बांग्लादेश में चक्रवातों का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। भारत में प्रत्येक वर्ष शरदकालीन चक्रवात आते हैं। 1999 में उड़ीसा के चक्रवात को आज भी लोग सदमे के साथ याद करते हैं।

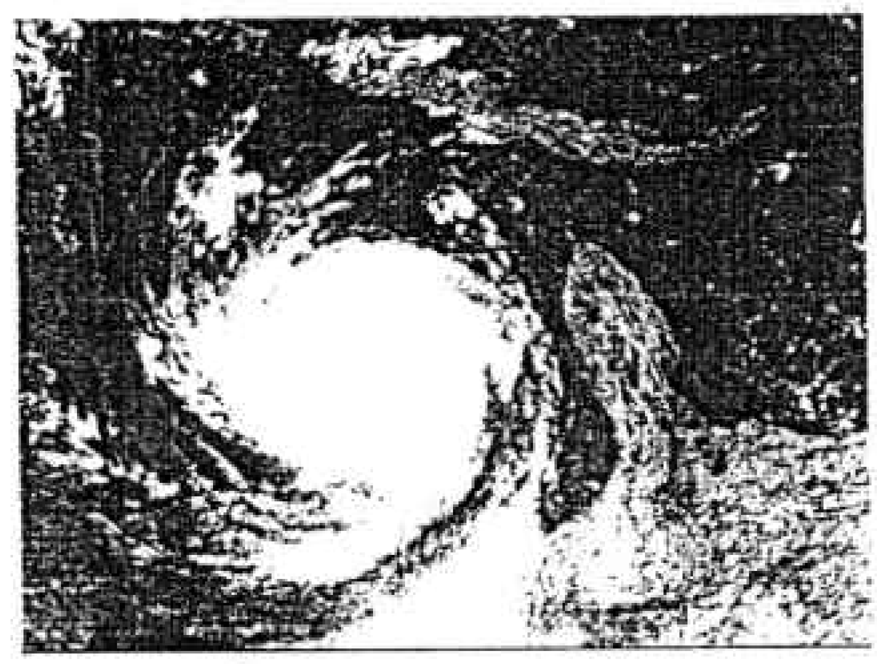

चक्रवात

चक्रवात उत्पत्ति के कारण

आइये, चक्रवात उत्पत्ति के कारणों को समझने का प्रयास करें-

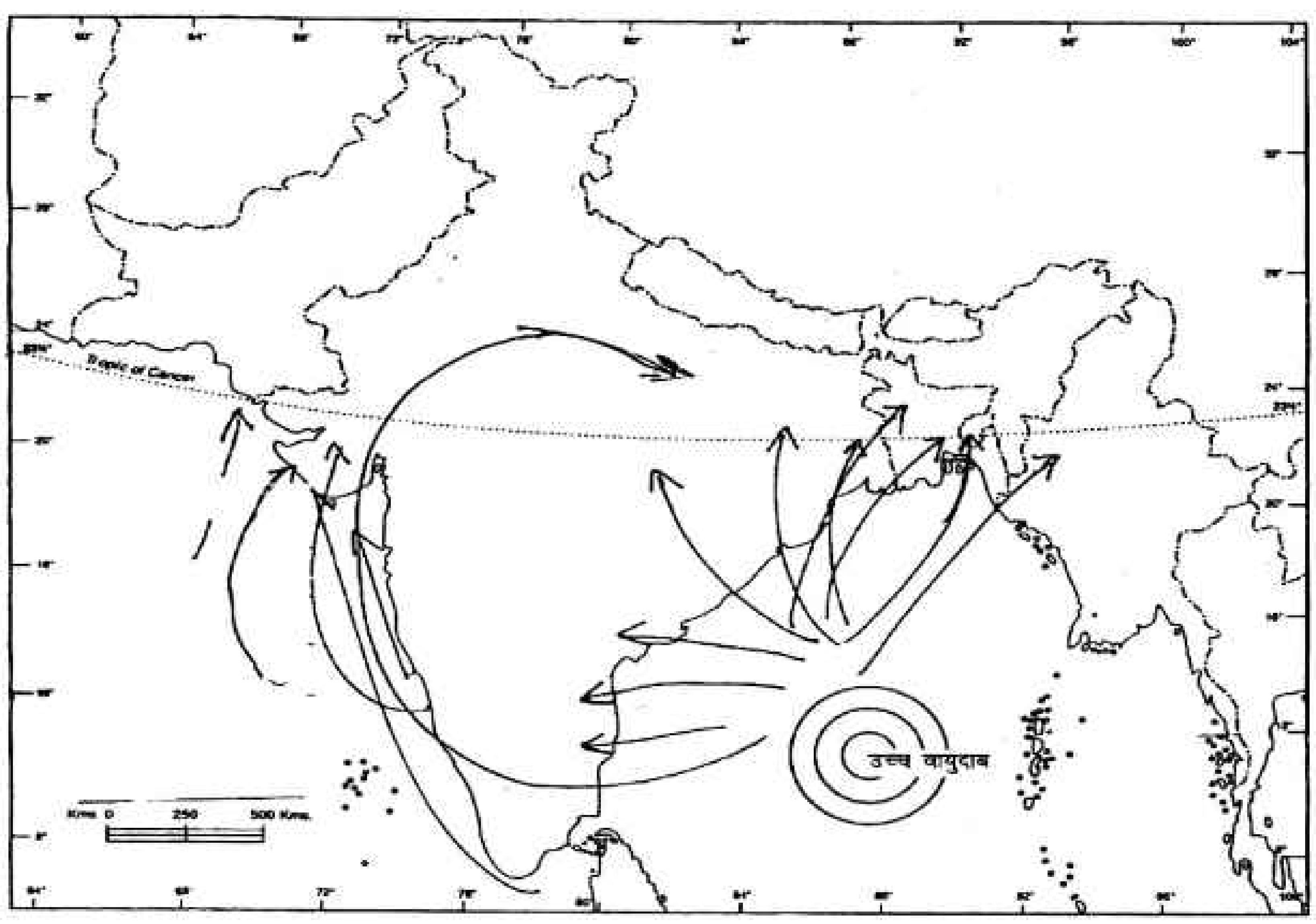

हिन्द महासागर में चक्रवात का पथ

- केन्द्र में निम्न वायुदाब क्षेत्र होना अनिवार्य है जबकि बाहर की ओर उच्च वायुदाब।
- विस्तृत समुद्री क्षेत्र भी होना चाहिए।
- कोरियोलिस बल (Coriolis force) होना चाहिए जिसके कारण पवनों में चक्र बनते हैं।
- चक्रवात की उत्पत्ति का मुख्य क्षेत्र 5° से 20° अक्षांशों के मध्य है।

क्रियाकलाप

यदि दिल्ली में तेज तूफान आए और जान-माल का नुकसान हो जाए तो आप किन-किन चीजों से राहत एवं बचाव कार्य में हांथ बटाएंगे? राहत एवं बचाव कार्य की सूची तैयार करें।

इसके कई नाम-	**प्रभाव क्षेत्र**
टाइफून	चीन सागर
विली विलीज	आस्ट्रेलिया
टारनेडो	मैक्सिको, मध्य उत्तरी अमेरिका
हरीकेन	मध्य अमेरिका
चक्रवात	दक्षिणी-पूर्वी एशिया के उष्ण क्षेत्र।

चक्रवात के दुष्प्रभाव

क्या आप चक्रवात के दुष्प्रभाव को जानते हैं -

- धन-जन की अपार क्षति होती है।
- संचार प्रणाली ठप्प हो जाती है।
- यातायात व्यवस्था चरमरा जाती है।
- भीषण बाढ़ आती है।
- तटीय क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

चक्रवात से तहस-नहस

29 अक्टूबर 1999 को लगभग 260 कि.मी. प्रति घंटा की गति से आए सुपर चक्रवात ने ओडिसा के तट को देखते ही देखते दूर-दूर जलमग्न करते हुए वीरान कर दिया। पेड़-पौधे नष्ट हो गए, लगभग 10,000 व्यक्ति मारे गए, लाखों बेघर हो गए। नंदन-कानन प्राणिउद्यान का बुरा हाल हो गया। अरबों रुपये की सम्पत्ति नष्ट हो गई। इस चक्रवात ने ओडिसा का विकास बहुत पीछे कर दिया।

4. भूस्खलन (Landslide)

भूस्खलन का तात्पर्य है चट्टानों का खिसकना। पर्वतीय ढालों से चट्टानों का बड़ी मात्रा में खिसकर नीचे आना ही भूस्खलन कहलाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में यह प्रक्रिया सामान्य है। यदि आप कभी पर्वतीय क्षेत्र की यात्रा करें तो यह घटना सामान्य रूप से देखने को मिलेगी। आपको सलाह दी जाती है कि बरसात के समय पर्वतीय क्षेत्रों में जाने से बचें।

> अगत 1998 में कैलाश–मानसरोवर यात्रा के दौरान धारन्सूला (पिथौरागढ़) से लगभग 60 किमी. लाभारी नामक स्थान पर भारी भूस्खलन से काली नदी का प्रवाह रुक गया। इससे आसपास का क्षेत्र जलमग्न हो गया। लगभग 60 यात्रियों की जानों चली गई।

वर्ष 2004 में कोंकण रेल दुर्घटना भूस्खलन का परिणाम थी। इस दुर्घटना में कई लोगों की मौत हो गई थी। रेल के डिब्बे नदी में जा गिरे थे। भूस्खलन की रोकथाम के लिए पहाड़ी ढालों पर तारों का मजबूत जाल बनाया गया है।

भूस्खलन के कारण

- भूकम्प के झटकों का लगाना।
- वनों की अंधाधुंध कटाई।
- अवैध निर्माण करने से।
- खनन कार्य करने से।
- सड़क निर्माण के कारण।
- तेज वर्षा होने से।

भूस्खलन के दुष्प्रभाव

- पर्यावरण का असंतुलित होना।
- मार्ग अवरुद्ध होना।
- नदियों का प्रवाह रुक जाना।
- बाढ़ आना।
- धन–जन का नुकसान होना।

> **क्रियाकलाप**
>
> यदि आप पर्वतीय क्षेत्र के भ्रमण पर हैं, रास्ते में बड़ा भूस्खलन हो जाता है, तो किस प्रकार आप अपनी सुरक्षा करेंगे।

5. बाढ़ (Flood)

भूस्खलन

बाढ़ एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसमें अधिक वर्षा से विस्तृत क्षेत्र जलमग्न हो जाता है और सामान्य जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। वर्षा के प्रारंभ होते ही लोगों की चिंताएं बढ़ने लगती हैं। उन्हे भय बना रहता है कि कहीं अधिक वर्षा या तटबंध टूटने से पूरा क्षेत्र जलमग्न न हो जाएं। संसार में बांग्लादेश के बाद भारत सबसे अधिक इस आपदा से प्रभावित रहता है। भारत के कई क्षेत्र ऐसे हैं जो प्रत्येक वर्ष बाढ़ जैसी आपदा को झेलते हैं। देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 12% भाग बाढ़ से प्रभावित होते रहता है।

मुंबई शहर में बाढ़ का असर

26 जुलाई, 2005 में मुंबई में इतनी वर्षा हुई कि पूरे मुम्बईवासी कई दिनों तक परेशान रहे, कितनों के घर गिर गए लोग रास्ते में फंस गए ऑफिस में रात बितानी पड़ी भूस्खलन से कई लोग मारे गए स्कूल-कॉलेज कई दिनों तक बंद रहे। सड़क-रेल यातायात बंद हो गया हवाई जहाज का आनाजाना रूक गया संचार व्यवस्था ठप्प हो गई। कई संक्रमित बीमारियां फैलने लगीं। कुल मिलाकर ऐसी बाढ़ ने आपदा का रूप धारण कर लिया। मुम्बईवासी इस बाढ़ को हमेशा हादसे के रूप में याद रखेगे।

बाढ़ से पहले केदारनाथ घाटी

उत्तराखण्ड हिमालय में जून 2013 की मूसलाधार वर्षा के परिणाम स्वरूप भारी विनाश हुआ। गंगा की ऊपरी सहायक नदियों मन्दाकिनी, अलकनन्दा और भागीरथी में आई भयंकर बाढ़ ने भारत के इस पर्वतीय राज्य को झकझोर दिया। नदी घाटियों में बने अनेक मकान बह गए तथा हजारों की संख्या मे तीर्थयात्री व स्थानीय लोग भयंकर बाढ़ की चपेट में आकर कालकलवित हो गए। अनेक पशु नदियों के सैलाब मे दबकर मर गए तथा सड़ी हुई लाशों की बदबू से पूरे क्षेत्र मे प्रदूषण का खतरा बढ़ गया। पेयजल दूषित हो गया तथा अनेक स्थानों पर बिजली आपूर्ति ठप्प हो गयी। जरा सोचिए, मानव निर्मित कारक इस प्रकार की तबाही के लिए किस हद तक जिम्मेदार होते हैं।

बाढ़ के बाद केदारनाथ घाटी

बाढ़ आने के कारण

- अति वर्षा होना।
- चक्रवातों के आने से।
- भूस्खलन के कारण नदियों के मार्ग अवरूद्ध होने से।
- अपवाह तंत्र के साथ छेड़छाड़।
- वनों का विनाश करने से।
- सुनामी लहरों से।
- हिम पिघलने से।

बाढ़ के प्रभाव

1. भारत में बाढ़ से प्रत्येक वर्ष 12 लाख से अधिक घर नष्ट हो जाते हैं।
2. प्रतिवर्ष बाढ़ से औसतन 768 करोड़ रुपये की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।
3. बाढ़ की लगभग 5 करोड़ से भी अधिक लोग प्रभावित होते हैं जिनमें लगभग 1500 व्यक्तियों की जान चली जाती है।
4. लगभग एक करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र की फसलें नष्ट हो जाती हैं।
5. बाढ़ से यातायात एवं संचार व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है।
6. बाढ़ से नुकसान ही नहीं होते बल्कि कृषि के लिए फायदे भी होते हैं। जैसे बाढ़ के बाद उपजाऊ मिट्टी का आवरण बिछ जाता है और उस वर्ष कृषि फसल अच्छी होती है।

सबसे ज्यादा बाढ़ प्रभावित क्षेत्र गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान है। अब तो राजस्थान, गुजरात राज्यो में भी बाढ़ आ जाती है। चक्रवातों से बाढ़ आना तटीय क्षेत्रों के लिए आम बात है। दिल्ली भी बाढ़ से अछूती नहीं है।

दिल्ली में बाढ़ मुख्यत: मानसून की वर्षा के कारण आती है। दिल्ली नगर भूतकाल में चार भयंकर बाढ़ों का (1977/78/88/95) का अनुभव कर चुका है, जिनसे न केवल बहुत बड़ी जनसंख्या को प्रभावित किया, बल्कि जिसके कारण फसलों एवं आधारभूत ढाँचों को हुई क्षति लगभग एक अरब रुपए के बराबर थी।

क्रियाकलाप

यदि आपके क्षेत्र में बाढ़ आती है तो प्रभावित लोगों के लिए यथासंभव मदद करें जैसे; पैसे, पुराने कपड़े, खाद्य सामग्री, दवाईयां आदि।

6. सूखा (Drought)

जिस तरह बाढ़ से काफी नुकसान सहना पढ़ता है ठीक उसी तरह सूखा से भी। भारत जैसे विशाल देश में हर वर्ष किसी न किसी क्षेत्र में सूखा जैसी आपदा घटित होती हैं। पानी का संकट, सिंचाई के लिए जल का अभाव, उद्योगों और नगरीय क्षेत्रों में आवश्यकता से कम जल की उपलब्धता आदि सूखे की सूचक हैं। मिट्टी में नमी की कमी होने लगती है, तालाब, झील सूख जाते हैं, उनमें बड़ी–बड़ी दरार बन जाती हैं, फसलें बर्बाद हो जाती हैं। चारो और पानी के अभाव में पशु मारे जाते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि सूखा पानी की कमी का कारण है, तो अकाल पड़ना इसका परिणाम। मौसम वैज्ञानिकों ने सूखे की परिभाषा इस प्रकार की है : काफी लम्बे समय तक किसी विस्तृत प्रदेश में वर्षण की कमी ही सूखा है। राजस्थान तो सूखे के लिए ही जाना जाता है। दिल्ली मे भी सामान्य से कम वर्षा प्राय: होती है। गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्तरिक दक्षिण पठार आदि सूखे से ग्रसित रहते हैं।

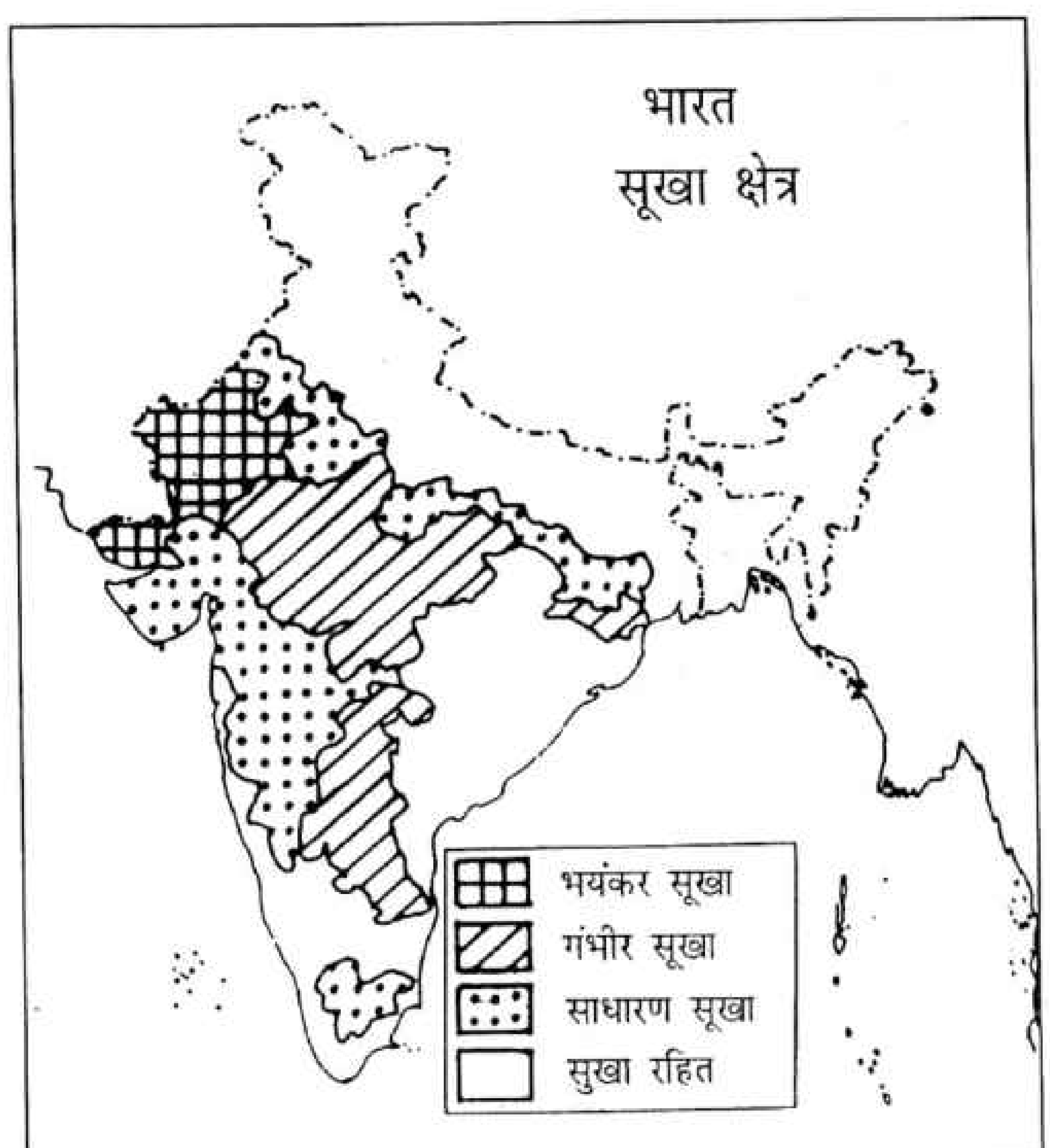

सूखा क्षेत्र

सूखे के कारण

- वर्षा की कमी
- अपर्याप्त मानसून
- भूमिगत तथा सतही जल का अतिशोषण
- जलस्तर का घटना

सूखे के प्रकार

प्रकार	विशेषताएं
• मौसम विज्ञानी सूखा	वर्षा औसत से कम
• जल विज्ञान सूखा	जल स्तर में कमी
• कृषीय सूखा	मिट्टी में नमी की कमी
• पारिस्थितिक सूखा	पर्यावरण बिगड़ना

सूखे के प्रभाव

1. भारत का लगभग 19% भू-भाग सूखे से प्रभावित रहता है।
2. देश की लगभग 12% जनसंख्या सूखे का सामना करती है।
3. लोग व जानवर भोजन, पानी, चारा और रोजगार की तलाश में घर छोड़कर निकल पड़ते हैं।
4. अरबों रुपये की फसलें बर्बाद हो जाती हैं।
5. स्वास्थ्य और कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
6. आर्थिक विकास में बाधा बन जाती है।

दिल्ली में आवश्यकता से अधिक सतही और भूमिगत जल की निकासी, पानी का दुरुपयोग, पानी का असमान वितरण आदि से जल-संकट पैदा हो जाता हैं। अत: जल के उपयोग को नियोजित करना आवश्यक है।

अत: हम कह सकते हैं कि घटित होने वाली सभी प्राकृतिक आपदाएं बड़ी ही भयंकर एवं अपार धन-जन की हानि पहुँचाने वाली होती हैं। यदि किसी क्षेत्र मे कोई बड़ी प्राकृतिक आपदा घटित होती है तो उस क्षेत्र का विकास बहुत पीछे चला जाता है। इस प्रकार सुरक्षित रहने के लिए जागरूक बनें और दूसरों को भी जागरूक बनाएं।

सूखा

क्रियाकलाप

विभिन्न आपदाओं से जुड़ी प्रेरणादायक घटनाओं का विवरण अपनी कक्षा में सुनाइए।

आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

आपदा प्रबंधन के संदर्भ में किसी भी क्षेत्र विशेष के रहने वाले सभी नागरिकों के समुह को समुदाय कहा जाता हैं। आपदा चाहे प्राकृतिक हो या मानवीय उससे पूरा समुदाय ही प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। इसलिए किसी भी आपदा के दुष्प्रभाव को कम करना एवं आपदाओं से निपटने के लिए योजनाबद्ध तरीके से तैयारी करना ही आपदा प्रबंधन कहलाता है। प्राकृतिक आपदाओं पर नियन्त्रण मानव के वश में तो नहीं है परन्तु इनसे बचाव की तैयारी करना ही मानव के लिए बेहतर उपाय है। अत: आपदा का निवारण निम्नलिखित तीन स्तरो पर किया जाता है।

1. आपदा से पूर्व प्रबन्धन

(i) आपदा संभावित क्षेत्र का मानचित्रण।

(ii) आपदा के विषय में आंकड़े और सूचनाएं एकत्र करना।

(iii) स्थानीय लोगों को जागरूक करना।

(iv) संभावित क्षेत्रों के आपदा योजना तैयार करना।

(v) सुदृढ़ संचार व्यवस्था तैयार करना।

(vi) आपदा का मोक अभ्यास (Mock Drill) और प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

2. आपदा के समय प्रबंधन

(i) युद्ध स्तर पर राहत एवं बचाव कार्य।

(ii) आपातकालीन नियन्त्रण कक्ष स्थापित करना।

(iii) आपदाग्रस्त लोगों का पुर्नस्थापन करना।

(iv) चिकित्सा शिखिर लगाना तथा आपदा पीड़ितो के लिए भोजन सामग्री की व्यवस्था करना।

(v) राहत कार्यों में सामुदायिक सगठनो को सम्मिलित करना।

(vi) बचाव दलों को राहत कार्यों के लिए उपकरणों से लैस करना।

3. आपदा के पश्चात प्रबंधन

(i) प्रभावित लोगों का हर सम्भव सहायता प्रदान करना।

(ii) पुर्नवास करना तथा सहायता कोष की स्थापना करना।

(iii) आपदा प्रभावित लोगों के रोजगार की योजना तैयार करना।

(iv) भविष्य के आपदाओं से निपटने के लिए क्षमता निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना।

अतः भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश के आपदाओं की बारम्बारता को ध्यान में रखते हुए आपदा प्रबन्धन का विशेष महत्व है। इसके लिए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन संस्थान की स्थापना करना इस दिशा मे एक सकारात्मक कदम है।

क्रियाकलाप –

1. पिछले पाँच सालों में भारत में घटित प्राकृतिक आपदा से सम्बन्धित निम्नलिखित जानकारी एकत्रित कीजिए –

क्रम.	प्राकृतिक आपदाऐं	वर्ष	कारण	प्रभावित क्षेत्र	नुकसान
1.	भूकम्प				
2.	चक्रवात				
3.	बाढ़				
4.	सूखा				
5.	भूस्खलन				

2. विद्यार्थियों को आपदा प्रबंधन संस्थान में ले जाकर आपदा से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित कीजिए।

3. सूखा एवं बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के मानचित्र में अंकित कराइए।